माघ कृत शिशुपालवध में वर्णित समाज व संस्कृति
Social and Cultural Life as Depicted in the Śiśupālavadha of Māgha

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोध छात्र
अजय प्रकाश खरे
सहायक प्राध्यापक
प्राचीन इतिहास
शासकीय जलद त्रिमूर्ति महाविद्यालय
नौगौद (सतना) म०प्र०

शोध निर्देशक
प्रो० जी०सी० पाण्डे
भू०पू० विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
भू०पू० कुलपति, राजस्थान एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय
अध्यक्ष, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
अध्यक्ष, केन्द्रीय तिब्बती उच्च अध्ययन संस्थान, सारनाथ
अध्यक्ष, इलाहाबाद संग्रहालय समिति, इलाहाबाद

2000 ई०

विषय-सूची

भूमिका

भारत एक प्राचीन देश है जिसकी हजारों साल पुरानी सभ्यता व संस्कृति है। इन हजारों वर्षों के इतिहास का प्रतिबिम्ब साहित्य में देखा जा सकता है। सृजन और परिवेश न सिर्फ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं अपितु कुछ हद तक निर्धारित भी करते हैं। अत: राष्ट्र के साहित्य को सामाजिक सांस्कृतिक प्रवाह से हटकर देखना उचित दृष्टिकोण नहीं है, क्योंकि इस दृष्टि से आप कृति का साहित्यिक मूल्यांकन भले ही कर ले परन्तु उस कृति के युगीन प्रेरक तत्वों का अंकन न हो पावेगा। देश का इतिहास अतीत से भविष्य की ओर बढ़ता है जिसमें कुछ स्वर्णिम पल होते हैं तो कहीं अन्धकार की काली रात भी होती है। संस्कृत साहित्य में इन दोनों तरह के अतीत का चित्रण हुआ है। जहाँ कालिदास व अश्वघोष की कृतियों में स्पंदनशील भारतीय समाज के दर्शन होते हैं, वहीं परवर्ती साहित्यकारों की कृतियों में विलासी सामन्ती जीवन प्रतिबिम्बित होता है।

भारत के सामाजिक व सांस्कृतिक इतिहास लेखन में संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक स्रोत के रुप में उचित मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है। पश्चिमी इतिहासकारों तथा पश्चिमी भौतिकवादी ऐतिहासिक दर्शन की अवधारणाओं से प्रेरित भारतीय इतिहासकारों की दृष्टि में आख्यायिका व कथा साहित्य का स्थान सिर्फ साहित्य के इतिहास तक ही सीमित है।

सामान्यत: इतिहास विधा का एक तथ्यात्मक पक्ष होता है और एक व्याख्यात्मक पक्ष। तथ्यात्मक पक्ष परम्परा तथा साक्ष्यों को काट छाँट कर उनका वैज्ञानिक स्वरुप प्रस्तुत करता है, परन्तु इतिहास का व्याख्यात्मक पक्ष युग सापेक्ष होने के कारण विषयगत होता है। साहित्य भी अपने विशिष्ट युग की कल्पना प्रवण प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करता है। अतीत के ज्ञान के लिए उस युग का यथार्थ तो आवश्यक है ही उस युग की कल्पना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह यथार्थ को समझने की दृष्टि को एक नया आयाम

देती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इसी दृष्टि से किया गया कार्य है, जिसका उद्देश्य माघ कृत शिशुपालवध में वर्णित सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन का अनुशीलन है। संस्कृत साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का क्रमबद्ध रुप में सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन परम्परा का विधिवत श्री गणेश करने का श्रेय प्रख्यात इतिहास कलाविद् प्रो० वासुदेव शरण अग्रवाल को है। 'कादम्बरी—एक सांस्कृतिक अध्ययन' तथा 'हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन' के द्वारा उन्होंने संस्कृत साहित्य के महत्व को सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास लेखन में रेखांकित किया गया है। प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने भी अपने ग्रन्थ 'शंकराचार्य विचार और संदर्भ' में आख्यायिका साहित्य के ऐतिहासिक महत्व को प्रतिपादित किया है।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि माघ का विशिष्ट स्थान है। कालिदास के पश्चात् विकसित अलंकृत शैली के रचनाकारों में आपका नाम अत्यधिक सम्मान के साथ लिया जाता है। माघ द्वारा रचित शिशुपालवध महाकाव्य संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध वृहत्त्रयी (किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीयचरित) में एक है। माघ का युग हर्षोत्तर कालीन युग है, यह ७वीं शती का उत्तरार्द्ध है। यह एक तरह का संक्रमण काल है जब भारतीय इतिहास व साहित्य की 'क्लासिकी' परम्परा का युग समाप्त हो रहा है और सामन्ती परम्परा अंकुरित बीज के रुप में तो विद्यमान है परन्तु उसका ठीक से प्रस्फुटन व पल्लवन नहीं हुआ है। युग की प्रेरक प्रवृत्तियाँ पतनोत्मुख ही सही परन्तु 'क्लासिकी' ही है। राजनीतिक रुप से देश छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था जो आपस में संघर्षरत थे। देश में एक प्रकार की आराजकता व अशान्ति व्याप्त थी। ब्राह्मण, बौद्ध व जैन धर्म प्रमुख रुप से लोकप्रिय थे। ब्राह्मण धर्म, जिसकी लोकप्रियता गुप्त काल के समय से ही तेजी से बढ़ रही थी, इस समय और भी लोकप्रिय हो गया था। बौद्ध धर्म का हर्ष आदि नरेशों का राज्याश्रय मिलने से जनता में प्रचलन तो था परन्तु इसको अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ रही थी। इसको सबसे कठिन चुनौती शंकर के नेतृत्व में ब्राह्मण धर्म से ही मिल रही थी। जैन धर्म, ब्राह्मण व बौद्ध धर्म की तुलना में कम लोकप्रिय था परन्तु गुजरात, राजस्थान के व्यापारी वर्ग इसका कट्टरता से पालन करते रहे। इतना सब होने पर भी धार्मिक समभाव था जिसकी पुष्टि बाण द्वारा हर्षचरित में दिवाकर मित्र के आश्रम वर्णन से होती है जहाँ अनेकों सम्प्रदाय के लोग एक साथ रहा करते थे। सामाजिक जीवन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त अन्य जातियों का उल्लेख

मिलता है जिनका प्रमुख कारण व्यवसायों का शनैः शनैः जातियों में परिवर्तित हो जाना है। बाल विवाह, सती प्रथा, बहु विवाह आदि परम्पराओं के कारण नारी की स्थिति शोचनीय थी। इस युग के साहित्य व कला में नारी का सर्वाधिक श्रृंगारिक चित्रण हुआ है। परन्तु इस विखण्डन व अव्यवस्था के युग में भी कन्नौज, वलभी, वालापी, कांची, भीनमाल आदि नगरों में साहित्यकारों व कलाकारों को राज्याश्रय प्राप्त होता था। बाण, भारवि, माघ, वाक्पति, मयूर भवभूति, शंकर, कुमारिल आदि विभूतियों का आविर्भाव इसी युग में हुआ है जिन्होंने मौलिक लेखन से अपने व परवर्ती युग को प्रभावित किया।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध के अन्त में कवि वंश वर्णन में पाँच श्लोकों द्वारा अपना जीवन परिचय दिया है। इस वंश वर्णन से ज्ञात होता है कि महाकवि माघ के पितामह का नाम सुप्रभदेव था, जो वर्मलात नामक राजा के महामंत्री थे। इसी सुप्रभदेव के दत्तक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो अत्यन्त गुणवान, उदार एवं धर्मनिष्ठ था। इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ थे, जिन्होंने शिशुपालवध नामक महाकाव्य की रचना की है। राजस्थान के वसन्तगढ़ नामक स्थान पर वर्मलात राजा का विक्रम संवत् ६८२ का एक शिलालेख मिला है। माघ के पितामह इन्हीं वर्मलात राजा के महामात्य थे। इस आधार पर सुप्रभदेव का समय ६२५ ई० के आस-पास माना जा सकता है। चूँकि माघ इन्हीं सुप्रभदेव के पौत्र थे, अतः महाकवि माघ का समय ५०-६० वर्ष बाद सातवीं शती का उत्तरार्द्ध मानना उचित प्रतीत होता है।

माघ ने महाभारत में वर्णित शिशुपालवध की छोटी सी कथा को आधार बनाकर, अपनी प्रतिभा के बल पर २० सर्गीय (१६५० श्लोक) महाकाव्य की रचना की है। यद्यपि कथा का आधार महाभारती कथा है परन्तु अनेक स्थलों पर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए आवश्यक परिवर्तन भी किये हैं। शिशुपालवध के अध्ययन से पता चलता है कि महाकवि माघ केवल एक कवि ही नहीं अपितु महान विद्वान भी थे। दर्शन, वेद, राजनीति, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, अलंकरण शास्त्र, काम शास्त्र, आयुर्वेद, संगीत शास्त्र, पशु विद्या, युद्ध विद्या आदि अनेक शास्त्रों एवं कलाओं के वे मर्मज्ञ थे। शिशुपालवध के रचयिता की पैनी दृष्टि व लेखनी से तत्कालीन इतिहास व संस्कृति के दर्शन महाकाव्य में होते है।

अच्छा साहित्यकार न सिर्फ सृष्टा होता है अपितु उससे पहले वह दृष्टा होता है। अपनी कृति के द्वारा वह न सिर्फ अच्छी रचना की सृष्टि करता है अपितु वह अपनी पैनी दृष्टि से युगीन प्रवृत्तियों को ठीक से पहचानता है, उनकों समझता है, उनमें आ रहे परिवर्तनों को ढूँढ़ निकालता है। कवि को युगीन

सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिवेश में ही अपनी प्रतिभा के द्वारा काव्य रचना करनी होती है। चूँकि गुप्तोत्तर युगीन सामाजिक जीवन कृत्रिम, सामन्ती व विलासमय है, अत: साहित्य सृजन भी कृत्रिम व अलंकृत है।

माघ का युग हर्ष, पुलकेशिन द्वितीय, शशांक एवं महेन्द्र वर्मन प्रथम जैसे प्रतापी एवं कला मर्मज्ञ सम्राटों का युग है। प्रस्तुत शोध हेतु ऐतिहासिक साक्ष्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। शिशुपालवध के अतिरिक्त बाण कृत हर्षचरित व कादम्बरी, हर्ष रचित नागानन्द, रत्नावली, प्रियदर्शिका, भारवि कृत किरातार्जुनीय, भट्टि कृत रावण वध आदि अन्य अनेक समकालीन साहित्यिक साक्ष्यों को युआन च्वॉग तथा इत्सिंग के यात्रा विवरणों व अन्य साक्ष्यों के आलोक में समझने का प्रयास किया गया है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों की गति अत्यन्त धीमी होती है, अत: ७वीं शती के समाज को समझने के लिए गुप्त काल से १०वी शती तक की अवधि को एक युग के रुप में मानना उचित होगा। अत: ७वी शती को दृष्टि में रखकर छठी से लेकर दसवीं शती तक के साक्ष्यों का उपयोग किया गया है।

इस युग के प्रचुर मात्रा में पुरातात्विक साक्ष्य भी उपलब्ध है। कन्नौज, अहिच्छत्रा, नालन्दा आदि पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त अवशेष, हर्ष, पुलकेशिन के प्रसिद्ध अभिलेख तथा गुजरात व राजस्थान से बहुतायत में प्राप्त दान पत्रों से इस युग के इतिहास को समझने व उद्घाटित करने में मदद मिलती है।

इस प्राथमिक स्रोतों के अतिरिक्त द्वितीयक स्रोतों के रुप में भी प्रचुर साहित्य उपलब्ध है जिसका उल्लेख शोध प्रबन्ध में यथा स्थान पर किया गया है। इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में शिशुपालवध के दो हिन्दी अनुवादों की सहायता ली गयी है। प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित श्री राम प्रताप त्रिपाठी द्वारा किया गया अनुवाद है, और दूसरा चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी द्वारा प्रकाशित श्रीपण्डित हर गोविन्द शास्त्री द्वारा किया गया अनुवाद है। इन दोनों ग्रन्थों ने शोधार्थी के नगण्य संस्कृत ज्ञान को शिशुपालवध को समझने में बाधक नहीं बनने दिया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विषयवार अध्ययन हेतु वर्गीकृत है।

प्रथम अध्याय में महाकवि माघ का काल निर्धारण, व उनके युग को समझने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में शिशुपालवध की कथावस्तु, संस्करण, टीकाएं, महाकवि माघ की विद्वत्ता आदि का वर्णन है। शिशुपालवध को महाकाव्य की कसौटी पर भी जाँचा परखा गया है। इसी अध्याय में माघ की आधुनिक साहित्यिक आलोचना व उनके काव्य से सम्बन्धित उक्तियों का विश्लेषण किया गया है।

तृतीय अध्याय में माघ युगीन सामाजिक जीवन का वर्णन है। वर्ण व जाति व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, व्यवसायिक वर्गों का जाति के रुप में उदय, नारी का समाज में स्थान आदि विषयों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। इसी अध्याय में खान-पान, वस्त्र, आभूषण आदि का भी वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय में माघ युगीन अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन किया गया है। कृषि, उद्योग, व्यापार व वाणिज्य, मुद्रा व्यवस्था आदि विषयों को समझने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय में कमजोर होती हुई केन्द्रीय सत्ता तथा सामन्तों की बढ़ती शक्ति के आलोक में तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का आकलन किया गया है। ७वीं शती की सामन्त व्यवस्था, प्रशासनिक संरचना, सैन्य प्रणाली, शूरवीरता तथा गुप्तचर व्यवस्था आदि विषयों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

षष्ठं अध्याय में तात्कालीन धार्मिक स्थिति का मूल्यांकन किया गया है।

सप्तम अध्याय में माघ युगीन शिक्षा व्यवस्था, प्राथमिक व उच्च का अध्ययन किया गया है। उच्च शिक्षा केन्द्रों के रुप में नालन्दा, वल्लभी व कांची के योगदान तथा साहित्य सृजन हेतु मर्मज्ञ राजाओं द्वारा प्रतिभावान साहित्यकारों कलाकारों को उपलब्ध कराया गया राज्याश्रय तथा उनके द्वारा रचित उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ इस अध्याय के अध्ययन की अन्य विषय वस्तु है। गुप्त कला के विस्तार व नवीन कला के पद्धति के बीजांकुर के रुप में इस युग की कला का मूल्यांकन किया गया है।

अष्टम् अध्याय में माघ युगीन सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का पूर्ण चित्र उपसंहार के रुप में प्रस्तुत है।

आभार :— प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विषय चयन से लेकर उसे पूर्ण करने तक का कार्य मेरे परम पूज्य गुरु प्रो० गोविन्द चन्द्र पाण्डे जी के आर्शीवाद से ही सम्भव हुआ है। उनके श्री चरणों में बैठकर ही "गुरु गोविन्द दोऊ खड़े........" का मर्म समझ सका। मैं उनको किसी प्रकार की कृतज्ञता ज्ञापित करके न

ही उनके आर्शीवाद का मूल्यांकन करुँगा और न ही मेरे मन में उनके ऋण से उऋण होने की इच्छा है। अत: मैं उनके श्री चरणों में नमन करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनको दीर्घायु प्रदान करे। गुरु भार्या श्रीमती सुधा पाण्डे इस शोध को पूर्ण करने की प्रमुख प्रेरक शक्ति रही है, उनका आर्शीवाद मुझे भरपूर मिला है। उनके वात्सल्यपूर्ण स्नेह को मैं आजीवन भुला न सकूँगा। मैं उनके चरणों में भी नमन करता हूँ।

मैं अपने पूर्व विभागाध्यक्षों प्रो० बी० एन० एस० यादव, प्रो० यू० एन० राय, प्रो० एस० एन० राय, प्रो० शिवेष भट्टाचार्य जी का ऋणी हूँ, जिन्होंने अपनी विद्वता से मुझे आलोकित किया। यह शोध प्रबन्ध वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो० वी० डी० मिश्रा जी के आर्शीवाद व मार्गदर्शन के अभाव में सम्भव नहीं था। उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

मैं प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्राध्यापक गण प्रो० ओम प्रकाश यादव, डॉ० जे० एन० पाण्डे, डॉ० जे० एन० पाल, डॉ० एच० एन० दुबे को भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। डॉ० आर० पी० त्रिपाठी की पुस्तक "स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो-इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया" से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सहायता ली गयी है। मैं उनका विशेष रुप से ऋणी हूँ और उन्हें आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं शा० महा० नागौद के वर्तमान प्राचार्य डॉ० सी० के० पाठक द्वारा समय-समय पर डी० फिल० पूर्ण करने हेतु दिये गये सुझावों व सहायता के लिए आभारी हूँ जब भी आवश्यकता हुयी उन्होंने उदारतापूर्वक अवकाश प्रदान किया। मैं अग्रज डॉ० हर्षवर्धन एवं भाभी जी डॉ० कल्पना श्रीवास्तव, प्रिय सहयोगी मित्र श्री विजय सिंह, श्री अरविन्द श्रीवास्तव व श्री अमिताभ पाण्डेय को समय-समय पर दिये गये प्रोत्साहन व मदद के लिए धन्यवाद देता हूँ।

राजनीति शास्त्र विभाग के श्री दिवाकर कौशिक, इलाहाबाद संग्रहालय के डॉ० प्रभाकर पाण्डेय, डॉ० डी० के० केसरवानी, हरिवंश तिवारी धीरेश जोशी तथा प्रदीप श्रीवास्तव ने समय-समय पर मेरी विभिन्न रुपों में सहायता की है। मैं उनको कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मेरे परमपूज्य पापा एवं स्वर्गीय माँ की मुझे जीवन में सफल होते देखने की इच्छा का आभास मुझे
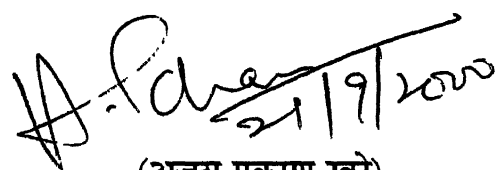
हमेशा अच्छा कार्य करने की प्रेरण देता रहा है । मुझे अत्यन्त दुःख है कि मेरी माँ आज साक्षात आशीर्वाद देने को जीवित नहीं है, परन्तु यह भी सत्य है कि यह उनके आशीर्वाद का ही परिणाम है । मैं रोम रोम से ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ जिसने मुझे उनके पुत्र के रुप में जन्म देकर गौरव प्रदान किया है ।

परमपूज्य बड़े पापा पद्म भूषण प्रो० बी० बी० लाल आदरणीय जिया, चाचा जी व चाची जी को भी मैं नमन करता हूँ ।

मेरे मित्र डॉ० हर्ष, डॉ० अनुराधा, संजय सिंह, डॉ० पंकज कुमार, श्री टी० पी० सिंह, दीपेन्द्र सिंह, डॉ० नीरज कुमार और डॉ० सुनील सिन्हा दुनिया के निःसन्देह सर्वश्रेष्ठतम इंसान व मित्र है । इनका अगाध स्नेह व समर्थन म० प्र० के दूरस्थ एकान्त इलाकों में भी मुझे साहस व सुरक्षा की भावना से भर देता है । ऐसे मित्रों को धन्यवाद देना मात्र औपचारिकता ही होगी ।

मैं अपनी पत्नी अर्चना अनुज, सौरभ व पुत्र अर्जुन की मुझे डॉ० बनते देखने की इच्छा को पूर्ण करते हुए विशेष प्रसन्न हूँ ।

मैं राका प्रकाशन के प्रोपराइटर श्री राकेश तिवारी व उनके साथियों को सहयोग हेतु धन्यवाद देता हूँ ।

21/9/2000

(अजय प्रकाश खरे)
स० प्राध्यापक—प्राचीन इतिहास
शासकीय जलद त्रिमूर्ति महाविद्यालय
नागौद, जिला — सतना (म० प्र०)

महाकवि माघ का जीवन व युग

शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिता व्याकरण शास्त्र के महापण्डित महाकवि माघ के जीवन, तिथि, मूलनिवास एवं नाम को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं।माघ के जीवनवृत्त के बारे में 'शिशुपालवध' के अन्तिम वंश वर्णनात्मक श्लोकों से[१], भोज प्रबन्ध[२], प्रबन्ध चिन्तामणि[३], प्रभावक चरित[४], जन श्रुतियों तथा कतिपय अभिलेखीय[५] साक्ष्यों से प्रकाश पड़ता है।वंश वर्णनात्मक श्लोकों के अनुसार माघ का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पितामह श्री वर्मल या वर्मलात नामक राजा जो भीनमाल का शासक था, के महामंत्री थे। पितामह का नाम सुप्रभदेव था तथा वह परम धार्मिक निरासक्त दृष्टि वाले तथा रजोगुणो रहित थे। उन्हीं सुप्रभदेव के दन्तक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो उदार क्षमाशील, कोमल प्रकृति तथा धर्मनिष्ठ था। इन्हीं दत्तक के पुत्र महाकवि माघ थे, जिन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति स्वरुप 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है। इसके प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर 'श्री' शब्द का प्रयोग किया गया है, यही इस काव्य का मनोहर चिन्ह है। इस शिशुपालवध महाकाव्य को कवि के नाम के आधार पर माघ काव्य भी कहा जाता है। उन्नीसवें सर्ग के अन्त का चक्रबन्ध श्लोक[६] चक्र के तीसरे व छठे गोले में क्रमशः 'माघकाव्यमिदम्' तथा 'शिशुपालवध' पद दृष्टिगोचर होकर अतिरिक्त अर्थ को अभिव्यक्ति देते हैं कि प्रस्तुत काव्य को 'माघ काव्य' या 'शिशुपालवध' समझा जाय।

काल निर्धारण

महाकवि माघ के काल निर्धारण को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। विभिन्न विद्वानों के मतों को सार रुप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।[७]

१. बांग्ल भाषा में लिखित "संस्कृत कवियों का समय निरुपण" नामक पुस्तक जिसका हिन्दी रुपान्तर

श्री सरयू प्रसाद मिश्र ने किया है, में महाकवि माघ को भारवि से भी प्राचीन घोषित किया है।कवि भारवि को आभिलेखिक साक्ष्य के आधार पर छठी शताब्दी उत्तरार्द्ध का माना जाता है।

२. वियेना ओरियन्टल जर्नल के द्वितीय भाग के द्वितीय खण्ड में श्री याकोबी ने महाकवि माघ को छठी शताब्दी का बताया है।

३. डॉ० भोलाशंकर व्यास ने अपनी संस्कृत कवि दर्शन में माघ को श्रीमाली ब्राह्मण बताते हुये उन्हें राजस्थान के डूँगरपुर-बॉसवाड़ा का निवासी कहा है। उन्होंने माघ को सातवीं शती के उत्तरार्द्ध का माना है।

४. डॉ० कीथ, पं० बलदेव प्रसाद उपाध्याय, डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझ, पं० सीताराम जयराम जोशी तथा विश्वनाथ शास्त्री, श्री एस० के० डे, श्री हंसराज अग्रवाल आदि विद्वान भी माघ को सातवीं शती के उत्तरार्द्ध का मानते हैं।

५. श्री भूप नारायण दीक्षित ने अपनी हिन्दी शिशुपालवध की भूमिका में लिखा है कि बाह्य प्रमाणों से तो यह सिद्ध होता है कि महाकवि माघ नवमी शताब्दी के हैं किन्तु आन्तरिक प्रमाण उन्हें सातवीं शती के मध्य या आठवीं शती के प्रारम्भ का बताते हैं।

६. पं० तारानाथ, एम० एस० भंडारे, पं० छज्जू राम विद्यासागर, प्रो० के० बी० पाठक, श्री चन्द्रशेखर पाण्डे आदि विद्वान महाकवि माघ को आठवीं शती का मानते हैं।

७. श्री मान रामअवतार शर्मा, पं० नागर दास, श्री एम० एम० उफ, वेवर आदि विद्वान माघ को नवमी शती का मानते हैं।

८. मेक्डानल एवं क्लाव माघ को दशवीं शती तथा रमेश चन्द्र दत्त माघ को बारहवीं शती में उत्पन्न मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि माघ का काल विद्वानों की सम्मति में ५वीं शती से १२वीं शती तक माना जा सकता है। लेकिन माघ के समय निर्धारण में वाह्य व आन्तरिक साक्ष्यों का विषद विवेचन आवश्यक है।

(अ) बहि : साक्ष्य

१. बसन्तगढ़ का शिलालेख[८]

कवि वंश वर्णन करते समय माघ जिस राजा का उल्लेख करते हैं उसका नाम वर्मलात है।[९] बसन्तगढ़ से प्राप्त शिलालेख में भी राजा वर्मलात का उल्लेख है। अधिकांश विद्वान माघ द्वारा

उल्लिखित राजा एवं बसन्तगढ़ शिलालेख के राजा को एक ही मानते हैं।[१०] यह शिलालेख इस समय अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित है। यह प्राचीन शिलालेख पिंडवाड़ा जिले के दक्षिण में लगभग ५ किमी० दूरी पर बसन्तगढ़ से प्राप्त हुआ था।[११] यह शिलालेख वहीं पर स्थित मन्दिर का ही हिस्सा था। शिलालेख में प्रयुक्त भाषा संस्कृत एवं श्लोकमयी है। शिलालेख के अध्ययन से स्पष्ट है कि राजा वर्मलात इस क्षेत्र का सम्प्रभु शासक था तथा उसके सामन्त वज्रभट्ट सत्याश्रय का पुत्र राज्जिल उस प्रदेश का स्वामी था। उसी के शासन में उस मंदिर का निर्माण, व्यापारियों के समूह द्वारा किया गया था। प्रस्तुत मन्दिर खीमेल माता जो कि दुर्गा का ही एक रूप है उनको समर्पित है। यह बात इससे भी स्पष्ट है कि शिलालेख की शुरुआत में ही माँ दुर्गा एवं क्षेमकरी देवी की आराधना की गयी है।[१२]

शिलालेख की ११वीं पंक्ति के अध्ययन से पता चलता है कि शिलालेख वर्ष ६८२ का है। यह वर्ष विक्रम संवत् है या शक संवत् है, इस पर कुछ भी अंकित नहीं है।

कतिपय विद्वानों ने इसे शक संवत् स्वीकार किया है। जिसके हिसाब से शिलालेख ७६० ई० का होना चाहिये।[१३] इस आधार पर माघ को आठवीं शती के उत्तरार्द्ध में रखना पड़ेगा।

परन्तु अधिकांश विद्वानों ने पुरालिपिय तथा शिलालेखों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उसे विक्रम संवत माना है, तथा इस आधार पर शिलालेख को ६२५ ईस्वी का मानते हैं।[१४] ऐसा प्रतीत होता है कि वर्मलात भीनमाल के गुर्जर राज्य का प्रथम शासक था। प्रभावक चरित से भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।[१५] महान खगोलविद् ब्रह्मगुप्त अपनी पुस्तक ब्रह्मस्फुटक सिद्धान्त[१६] में अपना उपनाम 'भील्लमालकाचार्य' कहते हैं तथा अपने आश्रयदाता का नाम व्याघ्रमुख कहते हैं जो कि चाप वंश का शासक था और६२८ ईस्वी में शासन कर रहा था। ब्रह्मगुप्त के उपनाम से स्पष्ट है कि व्याघ्रमुख भीनमाल का शासक था। तब व्याघ्रमुख को वर्मलात का उत्तराधिकारी माना जा सकता है। ह्वेनसांग अपनी भारत यात्रा के दौरान ६४१-४२ में भीनमाल से गुजरा था उसने तत्कालीन राजा को बीस वर्षीय युवक बताया है,[१७] जो संभवत: व्याघ्रमुख का उत्तराधिकारी रहा होगा और उसे महाकवि माघ का समकालीन भी माना जा सकता है।इस आधार पर माघ को सातवीं शती के मध्य का उत्तरार्ध में रखा जा सकता है।

२. हरिभद्र सूरी संबंधी जीवन वृत्त :

महाकवि माघ के चाचा शुभंकर श्रेष्ठी थे। इनके पुत्र का नाम सिद्धर्षि था। सिद्धर्षि हरिभद्र सूरी के शिष्य थे।[१८] सिद्धर्षि को हरिभद्र सूरी का भागिनेय भी बताया गया है।[१९]

हरिभद्र सूरी के संदर्भ में कई विवाद एवं मत हैं।

(i) मुनि श्री जिन विजय जी अपनी साहित्य संशोधक पुस्तक में लिखते हैं कि हरिभद्र सूरी जी को सन् ७७८ से अर्वाचीन किसी भी तरह नहीं रख सकते हैं।[२०] अत: सिद्धर्षि के समकालीन हरिभद्र सूरी नहीं ठहरते हैं।

(ii) हरिभद्र सूरी के ग्रन्थों में भर्तृहरि-वैयाकरण, कुमारिल मीमांसक, दिङ्नागाचार्य, धर्मकीर्ति, धर्मपाल, सिद्ध सेन दिवाकर तथा कुमारिल आदि के नाम दृष्टव्य हैं।[२१] यदि इन सभी का समय आठवीं शती का पूर्वार्द्ध मान लिया जाए तो हरिभद्र को आठवीं शती के उत्तरार्ध में रखा जा सकता है।

(iii) कुवलयमाला के लेखक उद्योतिनी सूरी हरिभद्र सूरी के शिष्य थे तथा स्वयं कुवलयमाला में इसका उल्लेख है। कुवलयमाला के अनुसार उद्योतिनी सूरी का समय ७७८ ई० का है। अत: हरिभद्र जी का समय ७७८ ई० के पूर्व ही रखना होगा।[२२] जैन परम परम्पराओं का इतिहास में भी हरिभद्र सूरी की जीवनी व तिथि देखने को मिलती है। इसके अनुसार भी हरिभद्र सूरी को आठवी शती के मध्य में रखा जा सकता है।[२३] सिद्धर्षि हरिभद्र को अपना गुरु मानते हैं।[२४] यदि सिद्धर्षि हरिभद्र सूरी के भानजे जो चित्तौड़ के राजा के पुरोहित थे तो कोई सन्देह नहीं कि माघ कवि के चाचा का विवाह चित्तौड़ में हुआ था। अत: यह संभव है कि महाकवि माघ का आना जाना चित्तौड़ में रहा हो, और यह भी अप्रत्याशित नहीं है कि हरिभद्र सूरी अपने अंतिम समय में भीनमाल में अपने बहनोई शुंभंकर के यहाँ अथवा किसी जैन उपाश्रय में क्योंकि भीनमाल जैन धर्म का गढ़ था, रहने लगे हों। इस युग में हरिभद्र सूरी ही प्रधान जैन साहित्यकार थे। उपर्युक्त कथा सार से यह निष्कर्ष्ज्ञ निकाला जा सकता कि महाकवि माघ आठवीं शती के मध्य या पहले ही रहे होंगे। हरिभद्र सूरी कथा से कहीं भी यह प्रतीत नहीं होता कि माघ का समय किसी भी तरह नवीं शती या उसके बाद रखा जा सके, जैसा कि कुछ विद्धानों ने अपने निष्कर्ष निकाले हैं।[२५]

३. सिद्धर्षि प्रबन्ध से प्राप्त साक्ष्य :

प्रभाचन्द्र सूरी कृत प्रभावक चरित में सिद्धर्षि प्रबन्ध है। इसके आधार पर तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर सिद्धर्षि के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं।[२६] राजा वर्मलात के सुप्रभदेव नाम वाला मंत्री था। श्रीमाल (भीनमाल) वर्मलात का राज्य था। सुप्रभदेव के दो पुत्र दत्त और शुभंकर थे। शिशुपालवध के रचयिता माघ दत्त के पुत्र थे तथा शुभंकर के पुत्र का नाम सिद्ध था जो जैन धर्म में दीक्षा लेने के उपरान्त सिद्धर्षि के नाम से विख्यात हुआ और उपमितिभव प्रपंच कथा लिखी। सिद्धर्षि की उपमिति भव प्रपंच कथा ८६९ ई० में पूरी हुयी। दाक्षिण्य चन्द्र जिनका उपनाम उद्योतन सूरी था ने अपनी

पुस्तक कुवलय माला ७७८ ई० में पूरी की। सिद्धर्षि उद्योतन सूरी को अपना गुरु भाई भी मानते हैं। प्रभावक चरितकार ने सिद्धर्षि और दाक्षिण्यचन्द्र के मध्य वार्तालाप भी कराया है।

यद्यपि प्रभावक चरित के रचनाकार प्रभाचन्द्र सूरी ने माघ के जन्म स्थान व पूर्वजों का ठीक उल्लेख किया है लेकिन अनेक स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है उन्होंने कल्पना का सहारा भी लिया है। सिद्धर्षि एवं उद्योतन सूरी में लगभग नब्बे-सौ वर्षों का अन्तर प्रतीत होता हैं और किसी आधार पर उनको समकालीन नहीं सिद्ध किया जा सकता है। सिद्धर्षि प्रबन्ध साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि माघ का समय किसी भी अवस्था में आठवीं शती के बाद का नहीं हो सकता है।

४. माघ का भोज से सम्बन्ध :

शिशुपालवध के ११वें सर्ग के ६४वें श्लोक का उल्लेख भोज प्रबन्ध में है।[२७] इस श्लोक के आधार पर तथा भोज और माघ कवि की दानशीलता की एक कहानी भी भोज प्रबन्ध में लिखित होने के कारण कुछ लोग माघ को भोजराज का बाल सखा भी कहते हैं, और उन्हें ११वीं शती का मानते हैं। इसी प्रकार प्रबन्ध चिन्तामणि[२८] एवं प्रभावक चरितम[२९] में भी माघ को भोज का समकालीन बताया गया है।

वल्लाल पण्डित द्वारा संगृहीत भोज प्रबन्ध में महाकवि तथा उनकी धर्मपत्नी की दानशीलता को लेकर बहुत विस्तृत वर्णन किया गया है। प्रबन्धचिन्तामणि के रचयिता जैन आचार्य मेरुतुंग ने माघ कवि के पिता के परमोत्कृष्ट ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए माघ तथा उनकी पत्नी का चरित्र चित्रण भोजप्रबन्ध के समान ही विस्तार के साथ किया है।भोज प्रबन्ध के कतिपय श्लोक प्रबन्ध चिन्तामणि में ज्यों के त्यों मिलते हैं। प्रबन्ध चिन्तामणि की रचना संवत् १४६१ में हुयी थी। श्री प्रभाचन्द्र प्रतीत प्रभावक चरित के १४वें अध्याय में भी माघ कवि के पिता, पितामह, निवास स्थान एवं आश्रयदाता श्री वर्मल का वर्णन आया है, इस प्रभावक चरित का रचना काल १२७६ ई० माना जाता है।[३०]

भारत वर्ष में भोज नाम के अनेक राजा हुये हैं। इन प्रख्यातनामा एवं इतिहास प्रसिद्ध हुये हैंजो अपेन बुद्धि, बल तथा वैभव में अद्वितीय थे। प्रथम धार नगरी वाले परमार वंश के राजा भोज, द्वितीय चित्तौड़ के राजा भोज (कर्ण) तथा तृतीय मिहिरभोज। भोज परमार का कार्यकाल ११वीं शती, चित्तौड़ के राजा भोज (कर्ण) का कार्यकाल (७८६-८०९) ई० तक था तथा प्रतिहार वंश के राजा भोज चित्तौड़ पर सन् ८३६ ई० से ८८५ ई० तक सिंहासनारूण थे।[३१]

कतिपय विद्वानों ने माघ को प्रतिहार नरेश मिहिरभोज का दरबारी कवि माना है।[३२] ये विद्वान बसंतगढ़ अभिलेख में ६८२ वर्ष को शक संवत् मानते है, जिससे राजा वर्मलात का कार्यकाल ७६० ई० में आता है और इन्हीं के दरबार में माघ के पितामह सुप्रभेदव महामंत्री थे।[३३] इस आधार पर माघ को आठवीं शती के अन्तिम वर्षों से नवीं शती के पूर्वार्द्ध में कहीं भी रख सकते है। भोज प्रबन्ध, प्रबन्ध चिन्तामणि और प्रभावक चरित में उल्लिखित माघ और भोज विषयक सामग्री भी इस निष्कर्ष से पूर्णतः परिपुष्ट होती है। मिहिर भोज अपने अभिलेखों में आदि वाराह के नाम से भी प्रसिद्ध है।[३४] महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध में स्थान-स्थान पर वाराह, आदि वाराह, महावाराह आदि शब्दों का प्रयोग किया है, जैसा इनके श्लोकों से विदित होता है।[३५] एक श्लोक में यहाँ तक कह दिया है कि सब प्रकार से सुयोग्य आप जैसे राजा के रहते हुए दूसरा कौन ऐसा है जो क्षत्रिय राजाओं की प्रशस्ति के अनुरुप राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान कर सकता है। भला इस धरती को ऊपर उठाने की क्षमता श्री वराह को छोड़कर अन्य किस पुरुष में है।[३६] इस श्लोक से संकेत मिलता है कि माघ श्री वाराह नामधारी किसी नृप के आश्रय में रहे होंगे और वह नृप भी युधिष्ठिर की भाँति दानी, धार्मिक, पराक्रमी, गुणग्राही यज्ञकर्ता एवं सम्राट की पदवी को सुशोभित कर रहा होगा। महाकवि माघ ने वाराह की प्रशंसा के द्वारा अपने आश्रयदाता मिहिरभोज का गुणगान किया है।[३७]

महाकवि माघ को राजा भोज से जोड़ने वाले साहित्यिक साक्ष्यों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि इनमें अनेक बातें काल्पनिक है व ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाती हैं। यथा भोजप्रबन्ध में माघ की ही भाँति कालिदास की अनेक कहानियाँ सन्निविष्ट हैं। वे इतिहासकारों को सर्वथा मान्य नहीं है। वास्तव में भोजप्रबन्ध की रचना राजा भोज की प्रशंसा की दृष्टि से ही की गयी है। अतएव उसकी रचना करते समय तात्कालिक या अतात्कालिक जिस किसी विद्वान की उसमें चर्चा कर दी गयी है। अत: उसके आधार पर माघ कवि का समय ११वीं शती मानना ठीक नहीं होगा।भोज प्रबन्ध की भी वही स्थित हुई जो भविष्य पुराण या अन्य पुराणों की हुयी। जिसकी तबियत में आया वही व्यास बन कर उसमें समाता चला गया।

यशोलिप्सा वश अनेक ग्रंथों में अनेक काल्पनिक नाम, कथाएँ जोड़ दी गयी है, जिसके कारण कवियों का काल निर्धारण करना कठिन हो गया है। इसीप्रकार प्रबन्ध चिन्तामणि एवं प्रभावक चरित भी इस संदर्भ में विश्वसनीय नहीं माने जा सकते हैं।[३८] प्रबन्ध चिन्तामणि में तो अनेक श्लोक भोजप्रबन्ध से

ज्यों के त्यों ले लिये गये हैं।[३९] अतः इन साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर महाकवि माघ का राजा भोज के साथ तारतम्य नहीं किया जा सकता है।

इसी प्रकार माघ को मिहिरभोज का समकालीन मानने में अनेक कठिनाइयॉ है। सर्वप्रथम वसन्तगढ़ अभिलेख में उत्कीर्ण वर्ष संख्या ६८२ को शक संवत् नहीं माना जा सकता और इस प्रकार इसे न ही आठवीं शती में रखा जा सकता है। राजस्थान से प्राप्त दो सौ से अधिक अभिलेखों का अध्ययन डॉ० देबेन्द्र नाथ शुक्ल[४०] तथा डॉ० श्याम प्रसाद व्यास[४१] ने किया है।

इन अभिलेखों में विविध संवतों का प्रयोग किया गया है, यथा वीर संवत, हर्षसंवत, गुप्त संवत, विक्रम संवत आदि। विक्रम संवत के साथ-साथ कई अभिलेखों में शक संवत का उल्लेख हुआ है लेकिन ऐसा कोई अभिलेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है जिसमें स्वतंत्र रुप से केवल शक संवत का उपयोग किया गया है।[४२] कुछ अभिलेख जिनमें केवल वर्ष का उल्लेख है, उनका समीकरण भी विक्रम संवत से ही अभीष्ट बनता है। इस प्रकार वसन्तगढ़ अभिलेख में उत्कीर्ण वर्ष ६८२ को भी विक्रम संवत मानने पर राजा वर्मलात का शासन ६२४ ई० आता है।[४३] इसी प्रकार पुरा लिपिय साक्ष्यों के आधार पर इस अभिलेख को ७वीं शती में रखा जा सकता है।[४४] अब यदि माघ के पितामह ६२४ ई० में वर्मलात के महामंत्री थे तो महाकवि माघ किसी भी प्रकार मिहिरभोज के, जो कि ८३६ ई० में सिंहासनारुढ़ हुआ[४५] था, समकालीन नहीं हो सकते हैं।

इसी प्रकार माघ कवि द्वारा वाराहवतार के उल्लेख के आधार पर महाकवि को मिहिर भोज का समकालीन नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि माघ ने शिशुपालवध में भगवान श्री कृष्ण के न सिर्फ वाराहवतार का उल्लेख है बल्कि अन्य नौ अवतारों का भी वर्णन किया है।[४६] इस प्रकार श्रीकृष्ण के वाराहावतार का माघ कवि द्वारा वर्णन करने को माघ और मिहिरभोज के संबंधों का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

यद्यपि महाकवि माघ का तीन प्रसिद्ध भोज राजाओं (भोज (परमार), भोज (वर्ण), भोज (आदिवाराह)) में से किसी के साथ भी तारतम्य नहीं बैठाया जा सकता लेकिन कतिपय विद्वानों[४७] ने राजस्थान के एक अन्य राजा भोज के साथ महाकवि माघ का तादात्म्य किया है जिसका उल्लेख कर्नल यड ने अपनी पुस्तक में किया है।[४८] संभवतः इसी के दरबार में महाकवि माघ रहते थे। संभवतः इसी नरेश का

उल्लेख ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा के दौरान किया है।

अन्तः साक्ष्य :

माघ के जीवन परिचय, शील स्वभाव और उनके गुणों की खोज शिशुपालवध से की जा सकती है। अन्त: साक्ष्यों में कुछ का वर्णन पहले किया जा चुका है जिनका उपयोग प्रतिहार नरेश कतिपय विद्वानों ने माघ को प्रतिहार नरेश मिहिर भोज का समकालीन सिद्ध करने के लिए किया है।[४९] माघ ने शिशुपालवध के दूसरे अध्याय के बारहवें श्लोक में 'कशिका' और न्यास इन दो व्याकरण ग्रन्थों की ओर संकेत किया है।[५०] मल्लिनाथ ने अपनी टीका 'सर्वङ्कषा' में यह मत पतिपादित किया है कि 'वृत्ति' और 'न्यास' शब्द विशिष्ट व्याकरण ग्रन्थों की ओर संकेत करते हैं। मल्लिनाथ अपनी टीका में कहते हैं कि जयादित्य और वामन द्वारा रचित 'कशिका वृत्ति' और जिनेन्द्रबुद्धि द्वारा रचित उसकी टीका 'वृत्ति' की ओर माघ ने अपने श्लोक में अपरोक्ष रुप से इंगित किया है।[५१] बौद्ध यात्री इत्सिंग के अनुसार न्यास के लेखक जयादित्य का देहान्त ६६१ ई० में हो गया था,[५२] लेकिन वह जिनेन्द्रबुद्धि का कोई भी उल्लेख नहीं करता है। इस आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह मत प्रतिपादित किया है कि जिनेन्द्रबुद्धि ६९५ ई० में इत्सिंग के वापस जाने के उपरान्त हुए होंगे इसीलिए उसका उल्लेख इत्सिंग ने अपने लेखों में नहीं किया है। और यदि जिनेन्द्रबुद्धि ६९५ ई० के उपरान्त हुए तो माघ को ८वीं शती में ही रखा जा सकता है क्योकि मल्लिनाथ के अनुसार महाकवि माघ ने जिनेन्द्रबुद्धि द्वारा रचित न्यास का उल्लेख किया है। इस प्रकार इन विद्वानों ने मल्लिनाथ की टीका के आधार पर महाकवि माघ को ८वीं शती के उत्तरार्ध में ही रखते हैं।[५३] मल्लिनाथ महान ज्ञानी व विद्वान थे, लेकिन उन्होंने महाकवि माघ के संदर्भित श्लोक में विशिष्ट ग्रन्थों को देखने की त्रुटि की है, क्योंकि वसन्तगढ़ अभिलेख से स्पष्ट है कि महाकवि माघ सातवीं शती के उत्तरार्ध में उत्पन्न हुए थे। इसके अतिरिक्त जयादित्य द्वारा रचित कशिका का रचना काल ६५० ई० माना जाता है[५४] तथा न्यास ग्रन्थ जिनेन्द्रबुद्धि का होना आवश्यक नहीं है।जिनेन्द्रबुद्धि से पहले कुणि, चुकि, नल्लूर आदि अनेक विद्वानों ने न्यास ग्रन्थ लिखे हैं।न्यास का उल्लेख हर्षचरित में मिलता है,[५५] जिसकी रचना बाणभट्ट ने ७वीं शती के पूर्वार्द्ध में की थी। अत: अन्त: साक्ष्यों के आधार पर भी महाकवि माघ को ७वीं शती के उत्तरार्ध में ही रखना अधिक समीचीन मालुम पड़ता है।

सोमदेव ने अपने यशस्तिलक चम्पू (९५९ ई०) में माघ का उल्लेख किया है,[५६] और आनन्दवर्धन (१८५० ई०) में अपने 'ध्वन्यालोक' में माघकृत शिशुपालवध के तीसरे सर्ग के तिरपनवें तथा पाँचवें सर्ग के छब्बीसवें श्लोक को उद्धृत किया है।[५७] वामनाचार्य ने अपने काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति में

शिशुपालवध महाकाव्य के तीसरे सर्ग के आठवें श्लोक को उद्‌धृत किया है।[५८] वामनाचार्य का समय ८वी शती का अन्त या ९वीं शती का आदि काल माना जाता है। इसी प्रकार राष्ट्रकूट राजा नृपतुंग (अमोघवर्ष) ने अपने कन्नड़ भाषा के प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ कविराज मार्ग[५९] में माघ को कालिदास का समकालीन स्वीकार किया है। अमोघवर्ष का कार्यकाल ८१४ ई० से ८७८ ई० तक माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि आठवीं शती के उत्तरार्ध और नवीं शती के पूर्वार्द्ध में माघ अपनी विद्धता और परिचय-चारुता के कारण विख्यात हो चुके थे।[६०]

संस्कृत में महाकाव्य लिखकर ख्याति प्राप्त करने वाले दस महाकवि प्रसिद्ध हैं। इन दस महाकवियों के नाम कालक्रम के अनुसार निम्नांकित श्लोक द्वारा परम्परागत रूप से प्रसिद्ध है।

आयौ कालिदासः स्यादश्वघोषस्ततः परम्।
भारविश्च तथा भट्टः कुमार श्चापि पंचमः॥
माघ रत्नाकरौ पश्चाद्धरिश्चन्द्रस्तथैव च।
कविराजश्च श्री हर्षः प्रख्याताः कवयो दश॥

श्लोक द्वय के आधार पर भी 'कुमार तथा रत्नाकर' कवि के मध्यवर्ती माघ कवि का समय ७वीं शती प्रतीत होता है।[६१]

इस प्रकार बाह्य साक्ष्यों एवं आन्तरिक साक्ष्यों के सूक्ष्म विवेचन से स्पष्ट है कि माघ कवि को सातवीं शती के उत्तरार्द्ध या अधिक से अधिक आठवीं शती के पूर्वार्द्ध में रख सकते हैं, इसके उपरान्त कदापि नहीं।

माघ का जन्म स्थान

महाकवि माघ के जन्म स्थान के विषय में विभिन्न मत हैं। कतिपय मत इस प्रकार हैं।

(i) महाकवि माघ धारा नरेश महाराजा भोज द्वारा पालित थे। राजा भोज जिस गाँव में रहते थे—उनके तथा कवि माघ के गाँव का नाम भिन्नमाल था।[६२]

महाकवि माघ ७वीं शती के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न हुए थे, यह बात सिद्ध की जा चुकी है। अतः महाकंवि माघ का ११वीं शती के धारा नरेश भोज परमार के साथ एक ही गाँव में निवास करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(ii) कवि माघ गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत लूनी नदी के निकट कुछ ही मीलों की दूरी पर स्थित भिन्नमाल के निवासी थे।[६३]

(iii) शिशुपालवध की प्राचीन हस्तलिखित कुछ प्रतियों में प्रत्येक सर्ग के अन्त में "इति श्री भिन्नमालव वास्तत्य दत्तक सुनीर्महा वैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये" यह लिखा हुआ मिला है। इससे प्रतीत होता है कि माघ भीनमाल के निवासी थे।[६४]

(iv) प्रभाचन्द्र सूरी ने प्रभावकचरित के चौदहवें सर्ग के पंचम श्लोक में महाकवि को श्रीमाल का निवासी बताया है।[६५] इस श्लोक में भिन्न मालव के स्थान पर श्रीमाल लिखा है, संभव है भिन्नमाल नगर बाद में श्रीमाल के नाम से विख्यात हुआ हो, क्योंकि माघ से लगभग ५-६ सौ वर्ष बाद प्रभावकचरित लिखा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह भिन्नमाल (श्रीमाल) ही माघ कवि का जन्म स्थान था।[६६]

(v) शिशुपालवध के १९वें सर्ग के चक्रबन्ध श्लोक में श्लिष्ट रूप से वत्स भूमि का उल्लेख है[६७], और वत्स भूमि वही है जहाँ से बसन्तगढ़ अभिलेख मिला है और जहाँ पर भीनमाल के राजा वर्मलात का सामन्त राज्जिल शासन कर रहा था।बसन्तगढ़ अभिलेख से स्पष्ट है कि क्षेमार्या देवी के मन्दिर का निर्माण वत्स की गोष्ठी ने किया था और यह मन्दिर बसन्तगढ़ में ही है और संदर्भित अभिलेख पूर्व में इसी मन्दिर का एक हिस्सा था।[६८]

(vi). श्रीमाल में कदाचित ब्राह्मणों का बहुत प्रभाव रहा है। अत: उन्होंने स्कंद पुराण में भी श्रीमाल महाकाव्य शामिल कर दिया है।[६९] श्रीमाल महाकाव्य में श्रीमाल के कई नामों का वर्णन है। सतयुग में श्रीमाल, त्रेता युग में पुष्पमाल और कलियुग में भिन्नमाल या भीनमाल चौथा नाम पुराण एवं प्रबन्ध चिन्तामणि में सम्राट श्री पुंज और उसकी पत्नी से सम्बन्ध कहानी में इसे रत्नमाल कहा गया है। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि श्रीमाल का नाम भीनमाल श्री (लक्ष्मी) हीन होने से पड़ा। प्रभावक चरित के अनुसार श्रीमाल का भिन्नमाल नामकरण माघ कवि को निर्धनावस्था में देखकर राजा भोज ने किया, प्रबन्ध चिन्तामणि में भी ऐसा ही उल्लिखित है।[७०]

आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट है कि भीनमाल या भिन्नमाल श्रीमाल की तुलना में प्राचीन नाम है। श्रीमाल महात्म्य या श्रीमाल पुराण बहुत बाद की रचनाएँ हैं।[७१] वि० सं० ७३३ में रचित निशीथ चूर्ण में, वि० सं० ८३५ की कुवलयमाला में, वि० सं० ९६२ की उपमिति भव प्रपंच कथा में इसका नाम भिन्नमाल ही मिलता है।[७२] इसके अतिरिक्त ब्रह्म गुप्त ने अपने ब्रह्मस्पुटक-सिद्धान्त में, जिसकी रचना काल ६२८ ई० निश्चित है, अपने को भिल्लमालकाचार्य विरुद से सम्बोधित किया है।[७३] इससे स्पष्ट है कि श्रीमाल महात्म्य तथा श्रीमाल पुराण में अनेक बातें काल्पनिक एवं तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत की गयी हैं। संभवत: भीलों की बस्ती होने से इसका नाम भिल्लमाल प्राचीन व

प्रसिद्ध रहा होगा।[७४]

(vii) यदि आन्तरिक साक्ष्यों की विवेचना की जाए तो इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि यही भिन्नमाल नगर ही माघ कवि की जन्म भूमि रही होगी। शिशुपालवध में कवि ने रैवतक पर्वत के वर्णन में जो आत्मीयता दिखायी है,[७५] उससे सिद्ध होता है कि कवि को अपने प्रदेश से अत्यधिक स्नेह था। रैवतक गुर्जर प्रदेश का पर्वत है। वर्तमान में उदयपुर से गिरनार तक की व पर्वत श्रृंखलाएँ रैवतक नाम से ही जानी जाती है।[७६]

माघ का कुल :

माघ कवि किस कुल में उत्पन्न हुए, यह एक विवादास्पद विषय है। एक मत के अनुसार वह वैश्य थे तथा दूसरे मत के अनुसार ब्राह्मण।

पहला मत जो माघ को वैश्य सिद्ध करता है मूलतः जनश्रुति व कुछ अन्य प्रभावों पर आधारित है।

काव्य प्रकाश की सुधा शेखर टीका के रचियता भीमसेन दीक्षित ने माघ को वणिक बताया है।[७७] कृष्णमाचार्य जी ने भी इस कथन की पुष्टि की है। दीक्षित जी का यह मानना है कि माघ के पास विपुल धन राशि थी तथा कृष्णभाचार्य का विचार है कि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य को किसी अज्ञात कवि से खरीद लिया था और उसके रचयिता वह स्वयं बन गये। इसका उदाहरण शिशुपालवध है जिसमें रचनाएँ मात्र धन एकत्र करने के उद्देश्य से की गयी थी।[७८]

प्रभावक चरित में माघ कवि के चाचा को शुभंकर श्रेष्ठी बताया गया है। श्रेष्ठी शब्द का प्रयोग उस समय वणिकों के लिए होता था। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए माघ को वणिक बताया गया है।[७९]

एक जनश्रुति मूलतः कवि भारवि से सम्बद्ध है। कवि भारवि अपने ससुराल में प्रवास कर रहे थे। उसी समय उनकी पत्नी ने अपने ससुराल के निकट पड़ोसियों को प्रवंचना सुनकर अपने पति-भारवि कवि से आभूषण की माँग की। चूँकि भारवि कवि के पास उस समय धन नहीं था। अतः उन्होंने अपना एक श्लोक "सहसा विद्धीत न क्रियाम" जो कि एक पत्ते पर लिखा हुआ था, अपनी पत्नी को दे दिया और उसे किसी सेठानी को बेचकर धनराशि एकत्र कर आभूषण खरीदने के लिए कहा। उनकी पत्नी ने वैसा ही किया। सेठानी का पति उस समय विदेश गया था। विदेश से लौटनेपर उसने अपनी पत्नी के निकट एक युवक को लेटे देखा। वह क्रोध से आग बबूला हो गया और युवक का वध करने को उद्यत हो गया। उसी समय उसकी दृष्टि सेठानी की शय्या के निकट टंगे पत्ते पर लिखे श्लोक पर गयी। वह उसे

पढ़ने लगा। उसी समय उसकी पत्नी निद्रा से जाग उठी। उसने उसे बताया कि युवक उसका पुत्र है। सेठ को अपनी गलती पर अत्यधिक पाश्चात्ताप हुआ उसी समय भारवि की पत्नी कुछ धन एकत्र करके अपने पति का श्लोक वापस लेने आयी। सेठ ने श्लोक वापस करने से इंकार लेकिन भारवि की पत्नी तब भी श्लोक ले गयी। क्रोध में आकर सेठ ने कहा कि यह श्लोक क्या है, उस श्लोक से भी उत्कृष्ट श्लोकों की रचना कर एक नवीन महाकाव्य बनाऊँगा। तदुपरान्त उस सेठ ने महाकाव्य शिशुपालवध लिखा। इस प्रकार वह सेठ महाकाव्य का रचयिता माघ कहलाया। इस तथ्य से माघ के वणिक होने का प्रमाण मिलता है।[८०]

माघ के वणिक होने सम्बन्धी मत का निराकरण

श्री कृष्णमाचार्य का कथन यह तो सिद्ध कर सकता है कि शिशुपालवध काव्य को किसी ने किसी से खरीदा था पर काव्यकार व खरीदने वाला भी वैश्य था यह इससे प्रमाणित नहीं होता है।

"सहसा विद्धीत न क्रियाम्" इत्यादि श्लोक का माघ के जीवन से इस तरह जो संबंध स्वीकार किया जाता है, इसका कोई प्रमाण नहीं है। यह मात्र एक जनश्रुति है जिसका प्रामाणिक उल्लेख या सत्यता सिद्ध करने वाला प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं है।

प्रभावक चरित में महाकवि के चाचा को शुभंकर श्रेष्ठी कहा गया है। यहाँ श्रेष्ठी शब्द का प्रयोग उनके कुल की वैश्यता का बोधक न होकर उनकी श्रेष्ठता का बोधक भी हो सकता है। यह कहना अधिक उचित होगा कि सुप्रभदेव के कार्य श्रेष्ठ थे। स्वयं माघ कवि ने उन्हें पुण्य धर्मों वाला, परम धार्मिक तथा निरासक्त दृष्टि योग रजोगुण रहित व्यक्ति बताया है।[८१] धार्मिक पिता के पुत्र दत्तक भी बड़े उदार, क्षमामील कोमल प्रकृति व्यक्ति थे। दत्तक ही सर्वाश्रय कहलाये। दत्तक के भ्राता शुभंकर थे। कुल के श्रेष्ठ कार्यों के कारण ही वह श्रेष्ठी कहलाये। महाकवि माघ इन्हीं दत्तक के पुत्र थे।

माघ का ब्राह्मण कुलोत्पन्न होना :

माघ ब्राह्मण थे यह मत शिशुपालवध एवं प्रबन्ध चिन्तामणि में आये हुए विविध उल्लेखों से दृष्टिगत होता है।

शिशुपालवध महाकाव्य के अन्तिम ५ श्लोक माघ ने अपनी आत्मकथा के रूप में लिखा है, जिसमें उनका वंश वर्णन मिलता है। इस वंश वर्णिन के प्रथम श्लोक में देवोऽपरः शब्द आया है।[८२] देवोऽपरः का शाब्दिक अर्थ है दूसरा देव, यह दूसरा कौन हो सकता है ? देवताओं की गणना तो देवों में ही होती है,

किन्तु ब्राह्मणों को भी भूमिदेवाः कहकर देव कोटि में परिगणित किया गया है। भारवि के अनुसार ब्राह्मण "सत्याशिषः सम्प्रति भूमि देवाः" है।[८३] इस प्रकार के उद्धरण अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।[८४] इस पकार देवोऽपरः का अर्थ ब्राह्मण ही है। फिर जब सुप्रभदेव ब्राह्मण थे तो उनके पौत्र माघ कवि भी ब्राह्मण ही हुये।

प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ संबंधी आये श्लोक से भी माघ का श्रीमाली ब्राह्मण होने का संकेत मिलता है। श्लोक की प्रथम पंक्ति में यह कहा गया है कि इस दुर्भिक्ष में हम ब्राह्मणों को कौन भोजन करायेगा ? द्वितीय पंक्ति में माघ यह सोचकर चिन्तित हो रहे हैं कि ग्रास भोजन को प्राप्त किये बगैर ही अस्त हो रहे है। इन दोनों बातों से माघ का शाकद्वीपी ब्राह्मण होना सिद्ध होता है।

शिशुपालवध महाकाव्य में भी माघ के शाकद्वीपी होने का प्रमाण मिलता है। भविष्य पुराण में शाकद्वीपी ब्राह्मणों के लिए मद्यपान देवप्रसाद के रूप में दोष नहीं है। ये तो इसे हविः कंहते है। अग्निहोत्र के तुल्य इनके लिए भी यह अयषु कहलाता है। शिशुपालवध में माघ ने मदिरापान के वर्णन को संभवतः इसीलिए दूषित नहीं माना है।[८५]

स्नान करके त्रिकाल संध्या करने का नियम मग ब्राह्मणों में है। ऐसा उपाख्यान में है, शिशुपालवध में भी उसका उल्लेख मिलता है।[८६]

उपर्युक्त बाह्य व अन्तः साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ श्रीमाल निवासी शाकद्वीपी मग ब्राह्मण थे।

महाकवि माघ का युग :

महाकवि माघ का युग वह युग है, जब उत्तर भारत में कन्नौज के राजा हर्षवर्धन और उसके समकालीन दक्कन के राजा पुलकेशिन द्वितीय का शासन समाप्त होता है। सातवीं शती के मध्यकाल के उपरान्त बड़े स्थिर और केन्द्रीयकृत सत्ता वाले साम्राज्यों का युग लगभग समाप्त हो गया। अब कोई भी ऐसा शासक न रहा जो सम्पूर्ण भारत या उसके अधिकांश हिस्सों पर सीधे शासन कर सकता हो। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया, जिनके शासकों का शासन अत्यधिक अल्पकालिक होता था। ये शासक इस युग में अत्यधिक महत्वाकांक्षी भी होते थे। ये शासक आपस में निरन्तर संघर्षशील रहते थे जिसके परिणामस्वरुप सम्पूर्ण उत्तर भारत में राजनैतिक अस्थिरता और अव्यवस्था के युग का प्रादुर्भाव हो गया।[८७] कन्नौज को केन्द्र मानकर लड़े गये युद्धों में

भीषण जानमाल का नुकसान हुआ। पहले कश्मीर कन्नौज और गौड़ राज्यों का संघर्ष फिर पात्र प्रतिहार और राष्ट्रकूट के त्रिकूट संघर्ष ने पूरे उत्तरी भारत को अनेक छोटे-छोटे लेकिन घमासान युद्धों में ढकेल दिया।[८८] सम्पूर्ण दक्षिणी भारत इसी समय चालुक्य, पल्लव और पाण्ड्य शासकों के आत्मघाती युद्धों से आक्रान्त था।[८९]

भारतीय इतिहास में एक नया अध्याय तब जुड़ा जब सिन्ध पर इस्लाम धर्म को मानने वाले अरबों के आक्रमण प्रारम्भ हुए। पश्चिम की तरफ से प्रवेश करने वाले व्यापारियों तथा अरब आक्रमणकारियों ने भारत में युद्ध, अराजकता तथा अव्यवस्था को बढ़ावा ही दिया।[९०] अरब सेनापति जुनैद ने माघ के गृह नगर भीनमाल और गुर्जर राज्यों पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर दिया था। इसकी पुष्टि भारतीय व अरबों दोनों स्रोतों से होती है।[९१]

माघ के समय में भी सम्पूर्ण पश्चिमी भारत और विशेषकर राजस्थान का क्षेत्र अनेक राज्यों में विभक्त था। मौर्य, गुहिल, चाय एवं प्रारम्भिक गुर्जर प्रतिहार वंशीय शासक साम्राज्य विस्तार की लिप्सा और अपनी अन्य महात्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु एक दूसरे से सतत् संघर्षरत रहते थे। माघ स्वयं अनेक बार युद्धों में सेना के साथ गये होंगे तथा अन्य अनेक युद्धों के प्रत्यक्षदर्शी रहे होंगे। माघ के ५वं, ११वें, १२वें एवं १९वें तथा २०वें सर्ग में वर्णित सेना प्रमाण, सेना का पड़ाव और घमासान युद्ध आदि के वर्णन में स्वभावोक्ति का सौंदर्य दिखाई पड़ता है, जो पूरे महाकाव्य में अन्यत्र दुर्लभ है।[९२] वास्तव में माघ युगीन भारत में असुरक्षा, अव्यवस्था, अराजकता तथा भय का वातावरण व्याप्त था। इस समय केन्द्रीय सत्ता के अभाव में अनेक छोटे-छोटे शासकों तथा सामन्तों का प्रादुर्भाव होने लगा, जो अपने-अपने क्षेत्र में कानून व्यवस्था तथा शान्ति बनाये रखने का प्रयास करते थे। ये राजा प्रशासनिक एवं न्यायिक शक्तियों का उपभोग भी करते थे। वास्तव में भारत में एक प्रकार की सामन्ती व्यवस्था शुरू होने लगी थी। सम्पूर्ण उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे राजाओं और सामन्तों में बँटा हुआ था। ये राजा बड़ी-बड़ी उपाधियाँ यथा महाराजाधिराज, परम भट्टारक, चक्रवर्ती आदि धारण करते थे, लेकिन वास्तव में इनकी शक्ति व सत्ता क्षीण होती जा रही थी।

सातवीं शती के उत्तरार्ध में माघ के गृह प्रान्त में इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। गुप्त काल में आधुनिक राजस्थान अनेक छोटे-छोटे गणराज्यों में, जिनका नाम निवासियों के नाम पर आधारित या विभक्त था। ये गणराज्य मालव, अर्जुनायन, यौधेय आदि थे।[९३] गुप्तकाल के उपरान्त सातवीं शती

तक राजस्थान का इतिहास कुछ-कुछ अंधकार में ही डूबा है। इस काल का इतिहास जानने के लिए साक्ष्यों का अभाव है, यद्यपि सीमित साधनों पर भी इतिहास के पुर्ननिर्माण के प्रयास किये गये हैं।[९४]

महाकवि माघ द्वारा शिशुपालवध में दिये गये अपने जीवन परिचय[९५] तथा बसन्तगढ़ अभिलेख[९६] से यह स्पष्ट है कि सातवी शती के पूर्वार्द्ध में भीनमाल तथा माउन्ट-रआबू के क्षेत्र चापा-नरेश वर्मलात के राशन के अधीन थे। प्रख्यात खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त के विवरणों से पता चलता है कि ६२८ ई० में अर्थात् बसंतगढ़ अभिलेख के मात्र तीन वर्ष उपरान्त इस क्षेत्र में चापवंश का राजा जिसका नाम व्याघ्रमुख शासन कर रहा था जो संभवत: वर्मलात का उत्तराधिकारी रहा होगा।[९७] कतिपय विद्वानों का मानना है कि यह वही राजा था जिसका उल्लेख ह्वेनसाँग करता है। ह्वेनसाँग लिखता है कि "वल्लभी के ३०० मील उत्तर पश्चिम में गुर्जर (Ku - che - lo) राज्य है। इस राज्य की राजधानी भीनमाल (Pi - lo - mo- lo) है। इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ८३३ मील है। इस राज्य का राजा एक बीस वर्षीय क्षत्रिय (Tca - ti - li) युवक है जो बुद्धि व साहस का पूर्ण धनी था। इस राजा का बौद्ध धर्म से लगाव था तथा यह विद्वानों का आश्रयदाता था।[९८] डॉ० आर० सी० मजूमदार इसका तादात्म्य प्रतिहार गुर्जर राज्य से करते हैं, जो मंडोर में स्थित था।[९९] परन्तु इस मत को व्यूलर, विन्सेन्ट स्मिथ, दशरथ शर्मा आदि विद्वान स्वीकार नहीं करते है।[१००] डॉ० दशरथ शर्मा का मत है कि ह्वेनसाँग के द्वारा वर्णित गुर्जर राज्य की राजधानी (Pi - lo- mo - lo) को स्वर उच्चारण (Phomtically) द्वारा मंडोर में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।[१०१] इनका मानना है कि ह्वेनसाँग द्वारा वर्णित गुर्जर राज्य वास्तव में चाप वंशीय राजाओं द्वारा शासित भीनमाल राज्य था जिसका उल्लेख माघ, ब्रह्मगुप्त और वसन्तगढ़ अभिलेख में हुआ है।

डी० आर० भण्डारकर ने अपने एक लेख में यह मत प्रकट किया है कि चापों और गुर्जरों को एक नहीं माना जा सकता है।[१०२] इस सम्बन्ध में उन्होंने गुजरात के चालुक्य नरेश पुलकेशिन की नौसरि प्लेट की तरफ विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है जिसमें चापों और गुर्जरों को अलग-अलग दिखाया गया है।[१०३] बी० एन० पुरी, दशरथ शर्मा, डी० सी० शुक्ला आदि आधुनिक विद्वानों ने इस मत को स्वीकार नहीं किया है क्योंकि गुर्जर शब्द क्षेत्र विशेष का द्योतक है न कि राजवंश का, तथा चाप वंशीय नरेश भीनमाल के अतिरिक्त वाढ़ियार (काठियावाड़ा) तथा अहिन्लपाटन (पाटन) में भी शासन कर रहे थे।[१०४] चाप वंश के उदय के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। चाप नरेश

धरणीवराहकी हद्दाला प्लेट (९१४ ई०) के अनुसार जब पृथ्वी ने अपनी रक्षा के लिए भगवान शंकर से प्रार्थना की तो भगवान शंकर ने इस वंश का उदय अपने धनुष (चाप) से किया, इसी कारण यह वंश चाप वंश कहलाता है।[१०५] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम प्रतिहार नरेश नागभट्ट I भीनमाल के चाप नरेशों का एक सामन्त था और जब राज्य मुख्यतः अरब आक्रमणों के कारण अस्तित्वविहीन हो गया,[१०६] तब उसने वहाँ प्रतिहार राज्य की नींव डाली।

इस समय मण्डोर क्षेत्र में भी प्रतिहार वंश का शासन था। इस प्रतिहारवंश का उदय ब्राह्मण हरिश्चन्द्र तथा उसकी क्षत्रिय पत्नी भद्रा से माना जाता है। मेवाड़ क्षेत्र में गुहिल्लों का राज्य था जबकि कोटा और चित्तौड़ मौर्यों के आधीन था और बैरार क्षेत्र ६४१ ई० में वैश्य राजा के आधीन था।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि माघ युगीन राजस्थान अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और गणराज्यों की गौरवशाली परम्परा जो गुप्त काल में इस क्षेत्र की विशिष्टता थी अब प्रायः लुप्त सी हो गयी थी, और इसके स्थान पर राज तंत्रीय परम्परा ने अपनी जड़े जमा ली थी।

गुप्तोत्तर काल से ही राजसत्ता के विभाजन का युग प्रारम्भ होता है और अधीनस्थ राजा अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के प्रयास करते हैं।लगभग इसी समय ही 'सामन्त' शब्द अधीनस्थ राजाओं के संदर्भ में प्रयुक्त होने लगता है।[१०७] सातवीं शती के अनेक साहित्यिक और अभिलेखिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज सत्ता ऊपर से नीचे तक अनेक स्तरों में विभाजित हो गयी थी। राज्याधिकारियों को वेतन के स्थान पर भूमि दान का भी प्रचलन इसी समय प्रारम्भ होता है यद्यपि अधिकांश भूमि दान प्रकृत्या धार्मिक थी और इनके पाने वाले ब्राह्मण है। परन्तु सामन्त, महासामन्त भोगपति कभी प्रकट कभी अप्रकट रूप में ग्राम से होने वाले राजस्व को पूर्णतः या अंशतः अपना योग्य मानने लगे थे। वे सामन्त और महासामन्त आदि राजा की सेवा और विशेषतया सैनिक सेवा (सहायता) की शर्त से बंधे थे।[१०८] सार्वभौमिक राजसत्ता धीरे-धीरे विखर चुकी थी। अराजकता, अव्यवस्था और युद्धों की व्यापकता थी।राजपुत्रों और सामन्तों का बोलबाला था। यही राजनीतिक अवस्था अप्रत्यक्ष रूप से माघ के शिशुपालवध में भी दृष्टिगोचर होती है।शिशुपालवध महाकाव्य में अनेकों स्थान पर युद्ध, अराजकता एवं अधीनस्थ सामन्तों का उल्लेख मिलता है।[१०९] ये सामन्त या अधीनस्थ राजा गण युद्ध के समय सैनिक तथा करों द्वारा अपने से बड़े राजा, की सेवा किया करते थे। शिशुपालवध में स्वाधीन और अधीनस्थ शासक के भेद का स्पष्ट उल्लेख करते है।[११०] दक्षिण भारत में भी ऐसी ही प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती

है ।दक्षिण भारत में भी ऐसी ही प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है । जिसका प्रतिबिम्ब शंकर की कृतियों में मिलता है ।[१११] अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में वह लिखते है कि जैसे आजकल कोई सार्वभौम क्षत्रिय नहीं है, ऐसे ही ओर भी कभी नहीं था ।

हिन्दू समाज का आधार वर्ण व जाति व्यवस्थाएँ ही थी । हमारे अध्ययन काल में समाज सिर्फ चार वर्णों तक ही सीमित नहीं था बल्कि अन्य अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हो गया था । वास्तव में विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित वर्गों ने ने ही कालान्तर में विभिन्न जातियों का रूप धारण कर लिया था । इसके अतिरिक्त हिन्दू समाज में विदेशियों के स्वीकार, अन्तरजातीय विवाहों, सीमावर्ती जनों के अभिकरण आदि अन्य कारणों से भी हिन्दू समाज का विभिन्न जातियों व उपजातियों में विभाजन हुआ ।[११२] महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में न सिर्फ वर्ण पर आधारित समाज का उल्लेख किया है बल्कि अनेक व्यवसायों से जुड़े वर्गों एवं जातियों का भी वर्णन किया है ।[११३] शिशुपालवध में वर्णसंकट की समस्या का भी उल्लेख हुआ है ।[११४]

माघ के युग में अरब लोगों का व्यापारी एवं आक्रमणकारी दोनों रूप में आगमन हो चुका था । माघ ने भी अरबी घोड़ों एवं समुद्र के व्यापारियों का उल्लेख किया है । माघ लिखते कि श्रीकृष्ण की सेना में अरबी नस्ल के घोड़ों का उपयोग होता था ।[११५]

समाज में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने लगी थी । बहु विवाह, परदा प्रथा एवं सती प्रथा के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । इस युग में जहाँ पुरुष द्वारा एक पत्नी रखने तथा पत्नी द्वारा पतिव्रता धर्म पालन करने के आदर्श को मान्यता प्रदान की गयी है वहीं यथार्थ रूप में बहुविवाह एवं गणिका रूप में स्त्रियों का शोषण भी बहुत हुआ है ।आश्रम व्यवस्था का उल्लेख मिलता है लेकिन यथार्थ जीवन में इस व्यवस्था का महत्व कम हो गया था ।

धर्म के क्षेत्र में प्राचीन स्मृतियों और पुराणों का युग बीत चुका था । इस युग में प्राप्त साक्ष्यों सोसे स्पष्ट है कि माघ के युग में प्रमुखतः पौराणिक धर्म का प्रचलन था । इस युग में अनेक साम्प्रदायिक पुरुणों (जैसे विष्णुधर्मोत्तर, स्कन्द, पथ, शिव, भागवत आदि) की रचना हुई । मन्दिर, मूर्ति प्रतिष्ठा, देव भक्ति अनुष्ठान, व्रत व्यक्तिगत देवी देवताओं की उपासना इस युग की प्रमुख धार्मिक प्रवृत्तियाँ थी । लोक कल्याण हेतु कुआँ, मन्दिर जलाशय आदि बनवाने की प्रवृत्तियॉ भी दृष्टिगोचर होती है । यद्यपि इस युग में विभिन्न देवी, देवताओं और तत्सम्बन्धी सम्प्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता है तथापि इस विविधता में

एकता की भावना भी विद्यमान थी। बौद्धों के अनेक सम्प्रदाय पूर्वी भारत तथा उत्तरी व उत्तर पश्चिमी भारत में प्रचलित थे। इसी प्रकार जैन धर्म पश्चिम और दक्षिण में अपना प्रभाव फैला रहा था।

संदर्भ

१. शिशुपालवध महाकाव्य कवि वंश वर्णन, हिं० सा० सम्मेलन, प्रयाग १९८९, पृ० सं० ५५८-५९

२. भोज प्रबन्ध, वेलवीडियर संस्कृत सीरीज न० ५

३ प्रबन्ध चिन्तामणि, मेरुतुंग, सं० डॉ० यदुनाथ प्रसाद दुबे

४. प्रभावक चरित (वि० सं० सं० पृ० १९६-९७)

५. ऐपिग्राफिक इण्डिया, खंड, ९ पृ० १८७-१९१

६. शिशुपालवध १९/१२०

७. महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ—डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ वर्मा, पृ० ९३

८. एपिग्राफिक इंडिया, खंड ९, पृ० १८७-१९१

९. शिशुपालवध, कवि वंश वर्णन, पृ० ५५८-५५९

१०. शर्मा दशरथ : राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २२८-२९

११. हिस्टी ऑफ सिरोही स्टेट, परि० ६

१२. एपिग्राफिक इंडिया, खड ९, पृ० १८९

१३. हिस्टी ऑफ मेडिवल हिन्दू इंडिया, सी० वी० वैद्य अध्याय १२, इंडियन इटीक्वेरी खण्ड ४६, पृ० सं० १५९, जैन परम्पराओं का इतिहास–त्रिपुरी महाराज, पृ० ५३४

१४. राजपूताना का इतिहास, खंड १, पं० गोरी शंकर हीरानन्द ओझा, पृ० १३५-३६, एपिग्राफिक इंडिया खंड ९, डी० आर० भडारकर पृ० १८९, संस्कृत साहित्य की रूप रेखा चन्द्रशेखर पाण्डेय, संस्कृत साहित्य का इतिहास–सीताराम जयराम जोगी, संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ० बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ० मंगलदेव शास्त्री, हिस्टी ऑफ सिरोही स्टेट, परि० ६

१५. प्रभावक चरित, पृ० १९६-९७

१६. ब्रह्मगुप्त–ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, पृ० ४०७

१७. वाटर, ह्वेनसॉग, खंड-२, पृ० २४९

१८. उपमिति भव प्रपंच कथा–सिद्धर्षि, श्लोक १८-२०

१९. जैन श्वेताम्बर मासिक हेराल्ड पत्रिका, जुलाई-अक्टूबर संयुक्त अंक, १९१५

२०. जैन साहित्य संशोधक-मुनिश्री जिन विजय

२१. महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ–डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० ५०

२२. महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ–डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० ५०

२३. जैन परम्पराओं का इतिहास, भाग-१, त्रिपुरी महाराज

२४ उपमितिभव प्रपंच कथा– सिद्धर्षि, लोक १८-२०

२५. महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ, डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० ५०

२६. महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ– डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० ४४

२७ शिशुपालवध ११/६४ भोज प्रबन्ध

२८. मेरुतुंग, प्रबन्ध/चिन्तामणि प्र० प्र० प्र० ३७, (प्र० चिन्तामणि का आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ० यदुनाथ प्रसाद दुबे)

२९. प्रभावक चरितम, पृ० १९६-१९७

३०. शिशुपालवधम्, चौखम्भा प्रकाशन, मणिप्रभा नामक हिन्दी टीका सहित, श्री पं० हर गोविन्द शास्त्री

३१. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, पृ० ५४२-५५९

३२. डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियॉं– पृ० ७१-७९

३३. वैद्य, सी० सी०, हिस्टी ऑफ मेडिवल इंडिया, पृ० ३५७

३४. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेस, पृ० १५९

३५. शिशुपालवध १/३३ १४/१४ १४/४३ १४/७१ १४/८६ १५/५ १८/२५ १८/९८ १९/११६ २०/३३

३६. "तत्सुराज्ञि भवति स्थिते पुनः कः क्रतुं यजतु, राज लक्षमणम् उद्धृतौ भवति कस्य वा भुवः श्री वराह मयहाय योग्यता" (शिशुपालवध १४/१४)

३७ डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ, पृ० ७९

३८. शास्त्री, श्री हरगोविन्द शास्त्री, शिशुपालवधम्, पृ० १२

३९. वही, पृ० ११

४०. शुक्ल देवेन्द्र नाथ, उत्तर भारत को राजस्व व्यवस्था, पृ० ६३-७३

४१. व्यास, डॉ० श्याम प्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १९१-२११

४२. वही, पृ० ५

४३. ऐपिग्राफिक इंडिया, खंड ९, १८९

४४. ऐपिग्राफिक इंडिया, खंड ९, १८८

४५. शर्मा, दशरथ राजस्थान थ्रू द एजेज, पृ० १४९-५०

४६. शिशुपालवध १४/७०-१४/८६

४७ इंडियन एक्टिक्वेरी, खंड ४६, (डी० सी० भट्टाचार्य) पृ० १९२, संस्कृत साहित्य का इतिहास– सीतारामजोशी

४८. राजस्थान, खंड I, प१० ९२

४९. शर्मा, जगन्नाथ मनमोहन लाल, महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ, पृ० ७९-८०

५०. शिशुपालवध

अनूत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।

शब्दविद्येन नो भाति राजनीतिरपस्पशा ॥ २/११२

५१. शास्त्री, पं० हरगोविन्द, शिशुपालवधम् २/११२

५२ भट्टाचार्य, डी० सी०, दी इण्डियन एक्टिक्वेरी, खंड ४६, पृ० १०१

५३. वही

५४. वही

५५. त्रिपाठी राम प्रताप, शिशुपालवध के अनुवाद की भूमिका, पृ० २८

५६. सोमदेव, यशस्तिलक चम्पू, आ० ४, पृ० ११३

५७. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, ११४-११५

५८. वामनाचार्य, काव्यालकार सूत्र, ९

५९. अमोघवर्ष, कविराज मार्ग

६०. त्रिपाठी राम प्रताप, शिशुपालवध (महाकाव्य के हिन्दी अनुवाद की भूमिका, पृ० २८)

६१. शास्त्री, पं० हरगोविन्द, शिशुपालवधम् (हिन्दी अनुवाद), पृ० १२-१३

६२. कृष्णमाचार्य, हिस्टी ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० १५४

६३. द्विवेदी प्रो० सुधाकर व्रजस्फुट सिद्धान्त की भूमिका, पृ० सं० ४२

६४. त्रिपाठी राम प्रताप, शिशुपालवधम (हिन्दी अनुवाद) पृ० ३०

६५. प्रभाचन्द्र सूरी, प्रभावकचरित, १४/५

६६. त्रिपाठी राम प्रताप, शिशुपालव (हिन्दी अनुवाद) पृ० ३०

६६. शिशुपालवध १९/१२०

६८. ए० ई०, खंड ९, प१० १९१

६९. श्रीमाल महात्म्य २/२२-२३ ९/१-२४ ९/७२ १०/५८ १२/२२, ७१

७०. डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियॉ, पृ० ६०-६५

७१. वही, पृ० ६४

७२ वही, पृ० ६४

७३. (ब्रह्मगुप्त) ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, पृ० ४०७

७४. राजस्थान का एक प्राचीन नगर, शोध पत्रिका, भाग ३, अंक १ उदयपुर

७५. शिशुपालवध, सर्ग ४

७६. वाजपेयी के० डी०, द जाग्रफिकल इन्साइक्लोपीडिया ऑफ एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया पृ० १४५

७७ दीक्षित भीमसेन काव्य प्रकाश- सुधा शेखर टीका, पृ० ११

७८ एम० कृष्णमचार्य, हिस्टी ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, पृ० १५६

७९ प्रभाचन्द्र सूरी, प्रभावक चरित, पृ० १४-१५

८० डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ, पृ० १८०

८१ शिशुपालवध, कवि वश वर्णन

८२ वही, प्रथम श्लोक

८३ भारवि, किरातार्जुनीयम, पृ ?

८४ मेरुतुग प्रबन्ध चिन्तामणि प्र० प्रकाश पृ० ३७ (प्र८ चि० का आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ० यदुनाथ प्रसाद दुबे।

८५ शिशुपालवध, दसवॉ सर्ग

८६ शिशुपालवध, १/४६

८७ (पाण्डे जी० सी०) शंकराचार्य-विचार और संदर्भ, पृ०

८८ मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १४६-१५४

८९. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग परिच्छेद १२ व १३

९० शंकराचार्य विचार और संदर्भ जी० सी९ पाण्डे, पृ० १३-१४

९१ हिस्टी ऑफ इंडिया इलियट और डॉसन, खंड ७, पृ० १२५

९२ संस्कृत कवि दर्शन, डॉ० भोला शंकर व्यास, पृ० १२९

९३ गुप्त साम्राज्य का इतिहास, यू० एन० राय, पृ०

९४ राजस्थान थ्रू द एजेज – दशरथ शर्मा

राजपूताना का इतिहास – गो० ही० ओझा

अर्बी हिस्टी ऑफ राजस्थान –डी० सी० शुक्ला

द हिस्टी ऑफ द गुर्जर प्रतिहार – बी० एन० पुरी

९५ शिशुपालवध-कविवंश वर्णन

९६. एपिग्राफिक इडिका, खंड ९, पृ० १९१

९७. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २२८-२२९

९८ बील, दी बुद्धिस्ट रिकार्ड ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड, खण्ड २, पृ० २६९

९९ एपिग्रापिक इंडिका, खण्ड १८, पृ० ९२

१००. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २१६

१०१. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज पाद टिप्पणी, पृ० २१६

१०१. पुरी बी० एन०, दी हिस्टी ऑफ गुर्जर प्रतिहार, पृ० २४

१०३. वही, द्रष्टव्य पाद टिप्पणी, पृ० २४

१०४ शुक्ला डी० सी०, अली हिस्टी ऑफ राजस्थान, पृ० १५७-१६१

१०५. ओझा गौ० ही०, राजपूताना का इतिहास, पृ० १४५.

१०६. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २२८

१०७ पाण्डे जी० सी०, शंकराचार्य विचार और संदर्भ, पृ० १४

१०८ पाण्डे जी० सी०, शंकराचार्य विचार और संदर्भ, पृ० १४-१५

१०९. शिशुपालवध ५/१२-१३, ५८ १२/१, ३, ३३ १४/४३

११०. शंकर, ब्रह्मसूत्र भाष्य १.३३३

१११. शिशुपालवध २/९

११२. सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, बी० एन० एस० यादव, पृ०

११३. शिशुपालवध, ३/६३

११४. शिशुपालवध २४/३७

११५. शिशुपालवध ५/१०

अध्याय - द्वितीय

कथावस्तु, संस्करण, टीकाएं, माघ की विद्वत्ता एवं शिशुपालवध का महाकाव्यत्व

संसार का यह शाश्वत नियम है कि मनुष्य अधिकाधिक सुख समृद्धि की कामना करता है। यद्यपि इसके लिए योग साधन, तप, वेदाध्ययन आदि अनेक साधन शास्त्रकारों ने बतलाये हैं, तथापि काव्य को ही समस्त सुख साधक सरल साधन आचार्यों ने स्वीकार किया है। भरत मुनि ने स्पष्ट कहा है—'धर्मार्थियों को धर्म, कामार्थियों को काम, विधाभिलाषुको को विद्वता तथा दीन-दुखियों एवं शोक-सन्तप्तों को परम शान्ति आदि-आदि देने वाला एक मात्र काव्य ही है।[१]

इतिहास देखने से स्पष्ट हो जाता है कि काव्य के द्वारा ही व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, श्री हर्ष, दण्डी, बाण, माघ, सोमदेव, महाराजा भोज, हेम चन्द्र, जयदेव आदि-आदि सहस्रों महाकवियों का यश अगनित समय के व्यतीत हो जाने पर भी संसार में विद्यमान है और रहेगा। एक-एक पद पर लाख-लाख स्वर्ण मुद्राएँ आदि प्राप्त होने की कथाएँ राजतरंगिणी में उपलब्ध है।

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में जिन काव्यों की गाथा—सर्वश्रेष्ठ काव्यों के रूप में की जाती हैं, वे केवल छह हैं। इनमे से तीन लघुत्रयी तथा तीन वृहत्रयी के नाम से विख्यात है। महाकवि कालिदास के तीनों काव्य रघुवंश, कुमार संभव तथा मेघदूत-लघुत्रयी तथा भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत, शिशुपालवध तथा श्रीहर्ष कृत नैषधीय चरित वृहत्रयी के नाम से विख्यात हैं। यद्यपि अश्वघोष (सौन्दरीनन्द बुद्धचरित) भट्टिस्वामी (रावण वध), कुमारदास (जानकी हरण) तथा रत्नाकर कवि के विशालकाय महाकाव्य हरविजय आदि की गणना भी संस्कृत के श्रेष्ठ काव्यों में होती है, परन्तु इन काव्यों को वह लोकप्रियता नहीं हासिल हो सकी जो कि लघुत्रयी तथा बृहत्रयी के छह काव्यों को प्राप्त है।

संस्कृत साहित्य के बृहत्त्रयी महाकाव्यों में शिशुपालवध का महत्वपूर्ण स्थान है। शिशुपालवध माघ कवि की एक मात्र रचना है। यद्यपि कुछ स्फुट श्लोकों के रचनाकार के रूप में भी माघ का नाम लिया जाता है किन्तु शिशुपालवध के अतिरिक्त उनकी अन्य किसी रचना का नाम सामने नहीं आता।[२] इस एक ही ग्रन्थ के कारण उन्होंने संस्कृत साहित्य में अपना शीर्ष स्थान बना लिया है।

शिशुपालवध महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में "इति माघ कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये" लिखा हुआ मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य का रचयिता 'माघ कवि' है। डॉ० याकोवी का मत है कि जिस प्रकार 'भारवि' ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए अपना नाम 'भा-रवि' (सूर्य का तेज) रखा, उसी प्रकार शिशुपालवध के अज्ञातनामा रचयिता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वस्त करने के लिए माघ का नाम धारण किया, क्योंकि जिस प्रकार माघ मास में सूर्य की किरणें ठंडी पड़ जाती हैं, उसी प्रकार माघ काव्य को पढ़ने के पश्चात् भारवि का गौरव मन्द पड़ जायगा।[३] डॉ० मनमोहन लाल ने माघ नाम के संबंध में यह कल्पना की है कि माघ महीने में पूर्णिमा के दिन या माघ नक्षत्र में जन्म लेने के कारण इनका नाम माघ रख दिया गया होगा। दूसरे इन्होंने एक और कल्पना भी की है कि 'मा'(लक्ष्मी) के द्वारा 'घ' (तड़ित) होने के कारण इनका नाम माघ पड़ा होगा। परन्तु ये कल्पनाएँ निराधार प्रतीत होती है। एक अन्य विद्वान के अनुसार यदि व्युत्पत्तिपरक ही अर्थ लेना है तो 'माघ' शब्द का अर्थ इस प्रकार भी दिया जा सकता है—:मा अघः, अस्ति यस्मिन सः' अर्थात् जिसमें अध (दोष) न हो उसे माघ कहते हैं, क्योंकि उनके काव्य में श्रीकृष्ण के पावन चरित्र की चर्चा होने से उसे (पवित्र दोषहीन) कहा जा सकता है। दूसरे काव्य शास्त्र की दृष्टि से भी उनका काव्य निर्दोष है। ये समस्त मत ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव में निराधार प्रतीत होते है। डॉ० बल्देव उपाध्याय के अनुसार शिशुपालवध के कर्ता का व्यक्तिगत नाम ही माघ है, उपाधि नहीं।[४]

यद्यपि माघ के जीवन व काल के विषय में अन्य अध्याय में विस्तृत विवेचना की गयी हैं, परन्तु शिशुपालवध के ऐतिहासिक अलोचना के पहले कवि का संक्षिप्त जीवन परिचय व काल निर्णय आवश्यक है। माघ की जीवन विषयों का पता 'भोज प्रबन्ध' तथा 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से लगता है। महाकवि माघ ने स्वयं शिशुपालवध के अन्त में अपना जीवन परिचय दिया है।[५] माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के, जो गुजरात में भीनमाल राज्य के शासक थे, प्रधानमंत्री थे। माघ का जन्म भीनमाल में हुआ था।[६] यह गुजरात का प्रमुख नगर व शिक्षा तथा व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य ब्रह्मगुप्त ने ६२५ ई० के आस-पास अपने ब्रह्मगुप्त सिद्धांत को यही बताया। इन्होंने अपने

को भीनमल्लाचार्य लिखा है।[७] 'भोज प्रबन्ध' के अनुसार राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी।[८] राजा भोज को लेकर विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश विद्वानों का मानना है कि राजा भोज, प्रसिद्ध धारा नरेश राजा भोज न होकर, सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में गुजरात के कोई राजा थे और इन्हीं से माघ की मित्रता थी।[९] 'भोज प्रबन्ध' ने दोनों भोजों की कथाओं में गड़बड़ी मिला दी। भोज प्रबन्ध में अन्यत्र भी इस प्रकार की त्रुटियाँ दृष्टिगोचर होती है। परन्तु प्रभावक चरित में भी महाकवि माघ व राजा भोज को बाल सखा बताया गया है। इसी प्रकार सदुक्तिकर्नामृत में भोज व माघ द्वारा संयुक्त रुप से लिखे गये श्लोक का उल्लेख है।[१०] इन साक्ष्यों के आलोक में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माघ और राजा भोज में संबंध था। डी० सी० भट्टाचार्य ने कर्नल टॉड के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ६६५ ई० के आस-पास मालव परमार नरेश भोजदेव का चित्तौड़ पर शासन था और संभवत: इन्हीं से महाकवि माघ की मित्रता रही होगी।[११]

'भोज प्रबन्ध' के अनुसार माघ बड़े दानी थे और इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी। निर्धन होने पर इन्होंने राजा के पास अपनी पत्नी को एक श्लोक 'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्', जो कि शिशुपालवध के प्रभात वर्णन (११ सर्ग का ६४वाँ श्लोक) में मिलता है, लिखकर भेजा। इस श्लोक को सुनकर राजा ने प्रभूत धन दिया। उसे लेकर माघ पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों को बाँट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उनकी पत्नी के पास एक कौड़ी भी न बची रही, परन्तु याचकों का ताँता लगा रहा। कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने प्राण त्याग दिये। राजा भोज ने यथोचित अग्नि संस्कार किया तथा तदन्तर इनकी पत्नी भी सती हो गयी। भोज प्रबन्ध में प्राप्त यह घटना माघ के जीवन संबंधित एक मात्र घटना है जो कि ज्ञात है। यह सत्य है या असत्य परन्तु विद्वानों में सामान्यत: यह निर्विवाद है कि महाकवि एक महान विद्वान कवि होने के साथ-साथ एक महान दानी भी थे।[१२]

माघ के समय निर्धारण के सम्बंध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है तथा ७वीं शताब्दी से ११वीं शताब्दी के मध्य माघ को अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग समय में रखा है। इस संबंध में विस्तृत विवेचन पूर्व अध्याय में किया गया है। इस शोध प्रबंध में आन्तरिक व बाह्य साक्ष्यों के विस्तृत विवेचन के आधार पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि माघ का समय सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्थात् ६५० ई. से लेकर ७०० ई० के मध्य होगा।

माघ की रचनाएँ :

माघ की एक मात्र रचना शिशुपालवध के विषय में विस्तृत लिखने के पूर्व यह निर्धारित करना

आवश्यक है कि क्या माघ जैसे महापंडित एवं विद्वान कवि ने केवल एक ग्रन्थ की रचना की है ? जिसकी आयु इतनी लम्बी हो, जिसको वैभव प्राप्त हो और इन सबसे परे जिसमें यशप्राप्त करने की प्रकट भूख हो, क्या ऐसा कवि केवल एक ही काव्य की रचना कर शान्त रह सकता है ? शिशुपालवध महाकाव्य के अतिरिक्त माघ के नाम से अन्य श्लोक भी सुभाषित रत्न भाण्डागारम्, औचित्य विचार चर्चा, जीवन वार्ता आदि ग्रन्थों में परिलक्षित होते हैं ।[१३] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महाकवि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य के अतिरिक्त किसी और ग्रन्थ की रचना की हो जो आज तक प्राप्त नहीं हो सका अथवा स्वयं ही नष्ट हो गया या अज्ञानावस्था में नष्ट भ्रष्ट कर दिये गये हों । यह भी हो सकता है कि मुसलमानों के हाथों में पड़कर नष्ट कर दिये गये हों । किन्तु यह बात तो शिशुपालवध के साथ भी घटित हो सकती थी । माघ काव्य कैसे बचा रहा । जो श्लोक अन्यत्र मिलते हैं उनके सम्बन्ध में आलोचकों का मत है कि ये बिखरे हुए श्लोक माघ काव्य के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ से उद्धृत हो जो आज अप्राप्य है ।

इन समस्त श्लोकों के अतिरिक्त महाकवि माघ से संबंध रखने वाले दूसरे भी श्लोक हैं, जो भोजप्रबन्ध व प्रबन्ध चिन्तामणि में महाकवि माघ के मुख से कहलाये बताये जाते हैं । किन्तु मूल रूप से अभी तक ऐसा कोई माघ विरचित अन्य ग्रन्थ प्राप्त नहीं है जिसमें उल्लिखित समस्त श्लोक क्रमबद्ध रुप से वर्णित हो ।

अत: निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ ने अपने जीवन में कदाचित एक ही ग्रन्थ की रचना की थी और वह रचना माघ काव्य शिशुपालवध है— अन्य श्लोक जो फुटकर हैं उनका कोई ठोस प्रामाणिक आधार नहीं है ।

कथावस्तु :

शिशुपालवध माघ कवि की एक मात्र रचना है, इस विस्तृत महाकाव्य में कवि की महान कवित्व-शक्ति तथा अगाध पाण्डित्य का पथ-पथ पर प्रदर्शन हुआ है । यह महाकाव्य बीस सर्गों का हैं, और इसके छन्दों की संख्या कुल मिलाकर १६५० है । महाकवि माघ द्वारा रचित शिशुपालवध महाकाव्य की कथा का मूल स्रोत श्रीमद् भागवत[१४] के दशम स्कन्ध के ६९ से ७४वें अध्याय में तथा महाभारत[१५] के सभापर्व के ३३वें से ४५वें सर्ग तक—कुल तेरह अध्यायों में देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त विष्णु पुराण[१६] , पद्म पुराण[१७], ब्रह्म वैवर्त पुराण[१८] में भी शिशुपाल की कथा कुछ हेर-फेर के साथ मिलती है ।

भारवि की तरह महाकवि माघ ने शिशुपालवध की रचना महाभारत के आधार पर की है।[१९] माघ ने लेकिन मूल कथा में अनेकों परिवर्तन कर उसे महाकाव्य के उपयुक्त बनाया। माघ ने काव्य प्रणयन काल में जब जैसा अवसर आया और जब जैसा उपयुक्त समझा मूल कथानक में परिवर्तन करके उसे और सरस और रोचक बनाया।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथावस्तु :

प्रथम सर्ग :– प्रथम सर्ग का प्रारम्भ देवर्षि नारद के आगमन से होता है, जो आकाश मार्ग से सीधे इन्द्र का संदेश लेकर सीधे द्वारिकापुरी आये। उन्हें देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया और उनकी प्रशंसा करके उनके आने का कारण पूछा। तब नारद जी ने भगवान के दर्शन को ही प्रमुख कारण बताया, और इन्द्र सन्देश के रुप में शिशुपाल का वध करने के लिए कहा।उन्होंने कहा शिशुपाल ही पूर्वजन्म में हिरण्यकश्यप तथा रावण होकर देव उत्पीड़न किया करता था, जिसका वध नृसिंहावतार और दशरथ नन्दन राम के अवतार ने तब-तब किया था। वही रावण आज शिशुपाल के नाम से पृथ्वी पर दिखलायी पड़ रहा है और लोक को पीड़ित कर रहा है। अत: आप उसका वध करके देवों व ऋषियों को सुखी करिये। नारद जी द्वारा कथित इन्द्र सन्देश को सुनकर श्रीकृष्ण भगवान ने क्रोध से भृकटि चढ़ा ली और शिशुपाल को मारने की स्वीकृति प्राप्त कर नारद जी आकाश को लौट गये।

द्वितीय सर्ग :—महर्षि नारद के लौट जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण दुविधा में पड़कर सोचने लगे कि क्या उन्हें पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाना चाहिए?अथवा देव कार्य सम्पादनार्थ शिशुपाल पर चढ़ाई करनी चाहिए ? इन दोनों कार्यों के प्रति संशयालु होकर उद्धव जी तथा बलराम से मन्त्रणा करने के लिए मन्त्रव्य गृह में गये। वहाँ पर श्रीकृष्ण जी ने अपना मत प्रकट किया कि युधिष्ठिर तो बिना हमारे भी अर्जुन, भीम आदि की सहायता से यज्ञ पूरा कर सकते हैं, किन्तु उपद्रवकारी शत्रु की उपेक्षा करना ठीक नहीं है। इस प्रकार अपना मत प्रकट करने के पश्चात श्रीकृष्ण जी ने उद्धव और बलराम से भी अपना-अपना मत प्रकट करने के लिए प्रार्थना की। तदनन्तर बलराम जी ने अनेक तर्क पूर्ण प्रमाणों के द्वारा श्रीकृष्ण के कथन का समर्थन करते हुए कहा कि बढ़ते हुए रोग और शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, अन्यथा उसके द्वारा वह स्वयं दबा दिया जाता है। अत: शिशुपाल पर आक्रमण करना चाहिए। उसके पश्चात उद्धव जी ने बलराम के मत का खण्डन कर युधिष्ठिर के यज्ञ में जाने की राय दी और यह कहा कि आप गुप्तचरों द्वारा शत्रुपक्ष में फूट डलवा दीजिए। युधिष्ठिर के यज्ञ में जब पाण्डव आपकी पूजा करेंगे तो शिशुपाल को यह बात सहन न होगी। वह आपको गालियाँ देने लगेगा। इधर आपने

शिशुपाल की माता सत्यवती अर्थात अपनी बुआ को वचन भी दे दिया है कि शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा कर दूँगा। इस प्रकार युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल के जब सौ अपराध पूरे हो जावेंगे तो आप उसका वध करेंगे। इस प्रकार उद्धव जी के वचन सुनकर व सिद्धान्ततः मानकर श्री कृष्ण ने सभा का विसर्जन किया।

तृतीय सर्ग :— तृतीय सर्ग में महाकवि माघ ने भगवान श्रीकृष्ण का द्वारिकापुरी से इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान तथा द्वारिकापुरी व समुद्र का वर्णन किया है। तत्काल युद्ध का विचार स्थगित होने से प्रसन्न भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ को प्रस्थान किया। वे बहुमूल्य श्वेत छत्र, चामर मुकुट, कुण्डल, केयूर, मुक्ताहार, कौस्तूभमणि मेखला, करधनी आदि आभूषण तथा तपते सोने के समान पीताम्बर धारण किये हुए थे। वह हाथ में कौमोदकी गदा, नन्दक खड़ग, शार्ङ्ग धनुष, पाञ्चजन्य शंख आदि लेकर रथ पर सवार हुए जिस पर गरुण चिंहाकित पताका फहरा रही थी। उनके पीछे अपरिमिति चतुरंगिणी सेना ने भी प्रस्थान किया। भगवान श्रीकृष्ण की राजधानी सुवर्णमयी द्वारिकापुरी समुद्र को मध्य में विदीर्ण कर ऊपर निकली हुयी जंगल की ज्वाला सी प्रतीत होती थी। द्वारिकापुरी की अट्टालिकाएँ, परकोटे आदि बहुत ही ऊँचे तथा चिकने पालिसदार थे। उन पर बनाये गये चित्र सजीव प्रतीत होते थे। अप्सराओं के समान सुन्दर द्वारिकापुरी की रमणियाँ सदा कामोत्कण्ठिता रहती थी। ऐसी स्वर्गोपम द्वारिकापुरी से बाहर निकलकर श्रीकृष्ण जी ने समुद्र को देखा, उसमें बहुत सी नदियाँ आकर मिल रही थी। तट पर मोती बिखर रहे थे। समुद्र तट पर सैनिकों ने पड़ाव डाला और लवंग के फूलों का कर्ण भूषण पहना तथा छककर नारियल का पानी पिया।

चतुर्थ सर्ग :—तृतीय सर्ग उपरान्त महाकाव्य के पूरक विषयों का वर्णन प्रारम्भ होता है। इस चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत की शोभा का वर्णन किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने मार्ग में आगे चलते हुए विंध्य पर्वत के समान रैवतक पर्वत को देखा जो कि इन्द्रनील मणि तथा विविध धातुओं एवं रत्नों से युक्त था। भगवान को उत्कंठित देख उनका सारथि दारूक इस रैवतक पर्वत का वर्णन करने लगा। उसने कहा—सूर्य के उदय तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर दोनों पार्श्वों में लटकते हुए दो घण्टाओं वाले हाथी के समान यह पर्वत शोभा पाता है। स्वर्णमयी भूमिवाला यह रैवतक पर्वत ऊँचे शिखरों से गिरते हुए झरनों के जल बिन्दुओं से देवाङ्गनाओं का शरीर शीतल करता है। यहाँ मृग विचरते हैं, स्त्री सहित सिद्धगण विहार करते हैं, रात्रि में औषधियाँ चमकती हैं, पुष्पित कदम्ब को कम्पित करती हुयी सुखकर वायु बहती है। अनेक प्रकार से भोग भूमि होता हुआ भी यह पर्वत सिद्धभूमि भी है, क्योंकि यहाँ पर मैत्री

आदि चारों वृत्तियों के ज्ञाता, अविद्या आदि पाँच क्लेशों को त्यागकर समाधि लगाये हुए बहुत से सिद्ध पुरुष निवास करते हैं।

पंचम् सर्ग :—पंचम सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण के दलबल सहित रैवतक पर्वत पर निवास का वर्णन है। दारुक से रैवतक पर्वत के संबंध में अत्यधिक मनोहारी बातें सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत पर विहार करने की इच्छा की, तथा सेना सहित प्रस्थान किया। सेना में हाथी के झुण्ड, घोड़े, रथ तथा भारवाही ऊँट शामिल थे। इस प्रकार आगे बढ़ती हुयी सेना यथास्थान पहुँचकर अपनी-अपनी इच्छा के अनुकूल स्थानों पर ठहर गयी।

श्रीकृष्ण के अनुचर राजाओं ने वहाँ पर पहुँचकर गुफाओं के घरों को अपना आवास बना लिया तथा अन्य नृपतिगणों ने भी श्रीकृष्ण के गरुण ध्वजा वाले शिविर के समीप ही अपने-अपने शिविरों कोलगाया। वणिक लोगों ने जो सेना के साथ यात्रा करते थे अपनी दुकानें सजा ली। सनापर्वत पर शिविर तानकर मनोविनोद में व्यस्त थी।

षष्ठम् सर्ग :—छठे सर्ग में महाकवि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य में छः ऋतुओं का वर्णन किया है। जब श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत पर विहार करने की इच्छा की तो सभी ऋतुएँ अपनी-अपनी समृद्धि लेकर वहाँ पर एक साथ आ पहुँची। बसन्त ऋतु आने पर वृक्षों ने नवपल्लवों को तथा लताओं ने सुगन्धित पुष्पों को उत्पन्न किया। मन्द शीतल हवा बहने लगी।आम के वृक्षों में मंजरी लग गयी। कोयल कुहुकने लगी तथा भौंरे गुजार करने लगे। काम पीड़ित रमणियों की दूतियाँ उनके पति के पास जाकर रमणियों के पास जाने के लिए कहने लगी। पराग से परिपूर्ण एक ओर कमल खिल रहे थे। चम्पा पुष्पों के मध्य विकसित अशोक पुष्प सुशोभित था। आम्रो से रजःकण गिर रहे थे। वकुल पुष्पों पर रस रूपी आसव के पान से अधिक स्वर वाली भ्रमरावलियाँ गुँजार कर रही थी। पलाश पुष्प राशि दावाग्नि सी प्रतीत हो रही थी।

ग्रीष्म ऋतु के आने पर शिरीष तथा नवमल्लिका के फूल विकसित हो गये। चमेली की सुगन्ध से वायु सुगन्धित थी। काफी लोग मद से चंचल हो उठे और रमणियाँ आर्द्र चन्दन लगाये हुए स्तनों को प्रियतमों के वःक्षस्थल पर रखकर बार-बार आलिंगन करने लगी।

वर्षा ऋतु के आने पर चमकती हुयी बिजली से युक्त मेघों से भी न डरती हुयी कामार्ता रमणियाँ प्रियतम के पास चल पड़ी। मेघ को देखकर परदेशी प्रियतम घर के लिए चल पड़े। मयूर नाचने लगे तथा

कदम्ब व मालती में फूल लग गये। मेघों ने जलवृष्टि कर प्रथम जल बूँदों से गर्मी को दूर कर दिया, और पृथ्वी की धूल साफ हो गयी।

शरद ऋतु के आगमन पर चन्द्र किरणें निर्मल हो गयी। मयूर और हंस की ध्वनि क्रमशः कर्णकटु तथा कर्णमधुर हो गयी। कमल विकसित हो गये तथा धान की रखवाली करने वाली गोपकन्याओं के गीत सुनने में तन्मय होकर मृगसमूह धान खाना भी भूल गये और झुण्ड के झुण्ड तोते उड़ने लगे।

हेमन्त ऋतु के आगमन पर जलाशयों का पानी जमकर कम हो गया, परन्तु वियोगिनी रमणियों की आँखों से गर्म आँसुओं की धारा बहने लगी।

शिशिर ऋतु के आगमन पर भ्रमर गुंजार करने लगे तथा सूर्य किरणों का तेज मन्द पड़ गया।

सप्तम् सर्ग :—सातवें सर्ग में महाकवि माघ ने वन विहार का वर्णन किया है। छहों ऋतुओं के आने पर श्रीकृष्ण भगवान और यादव लोग भी अपनी-अपनी रमणियों के साथ वन विहार को निकल पड़े। यादव रमणियाँ और यादव गण विविध प्रकार से काम कला का प्रदर्शन कर रहे थे। सारस पक्षियों के शब्द, गुञ्जार करते हुए भ्रमर समूह तथा वायु के स्पर्श व भ्रमरों के बैठने से पूर्णतः विकसित कलियाँ कामवर्धन कर रही थी। इस प्रकार चिरकाल तक वन में पकने के कारण रमणियों के केश बिखर गये। आँखें अलसाने लगी। कपोल मण्डल लाल हो गये। सुकुमार रमणियाँ थकने से खिन्न हो गयी और उनके पसीना बहने लगा। अन्त में प्रियतम के बार-बार पोंछने से भी पसीना बहता बन्द न होने पर रमणियों ने जलक्रीड़ा से इसे दूर करना चाहा।

अष्टम् सर्ग :—अष्टम सर्ग में महाकवि माघ ने जल विहार का वर्णन किया है। अत्यधिक वन-विहार से थकी हुयी यादव रमणियों ने जलाशय में विहार किया। उस समय भगवान के पटरानियों के पाणिकमल से जलाशय के कमलों की शोभा तुच्छ हो रही थी। विजयसार पुष्प के समान गौरवर्ण रमणियों का शरीर पानी में डूबने पर भी झलक रहा था। पति के द्वारा सपत्नी को खींचे जाने पर रोती हुयी रमणी के दुःख से जलाशय का जल श्यामल हो जाता था। पानी में गिरे हुए रमणियों के सुवर्ण आभूषण बड़वाग्नि की ज्वाला सी सुशोभित हो रहे थे। देवों को आश्चर्य चकित करने वाली किसी सुन्दरी को जलाशय से बाहर निकलते देखकर श्रीकृष्ण भगवान को समुद्र से निकली हुयी लक्ष्मी का स्मरण हो रहा था। रमणियों के इस प्रकार जलक्रीड़ा कर बाहर निकलने पर सूर्य अस्तोन्मुख हो गये।

नवम् सर्ग :—महाकवि माघ ने नंवें सर्ग में सूर्यास्त एवं संध्याकाल का वर्णन किया है। माघ के

अनुसार दिन का अन्तिम समय सूर्यास्त मन्द दृष्टि वृद्ध पुरुष के जैसा क्षीण कान्ति प्रतीत हो रहा था। पक्षी समूह अपने निवास की ओर जा रहे है। संध्या के प्रादुर्भूत होने पर कमलिनियाँ मुकलित हो रही थी। पूर्व दिशा में चन्द्रोदय से आकाश क्षण मात्र के लिए शिव जी की मूर्ति जैसा प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार क्रमश: सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल के उदय होने पर अन्धकार समूह नष्ट हो गया। कुमुदनियाँ विकसित हो गयी तथा रमणियों की काम वासनाएँ बढ़ने लगी। मद्यपान से लज्जा छोड़कर रमणियाँ सुरत में अग्रसर होने लगी।

दशम् सर्ग :—महाकवि माघ ने दशवें सर्ग में मद्यपान व सुरत का वर्णन किया है। कामी लोग मद्यपान करते हैं। किसी मदिरा के प्याले में प्रियतम का मुख प्रतिबिम्बित हो रहा था। कोई नायक प्रियतमा के द्वारा पीकर दिया गया मद्य अभूतपूर्व स्वादयुक्त मानकर पी रहा था। प्याले में रखे मद्य को सुवासित करने के लिए कमल रखा गया था। मान भंग करने में निपुण, संभोग की इच्छा को तीव्रतर बनाने वाली, नेत्रों में राग अर्थात् लालिमा तथा प्रेम को लाने वाली तथा अन्त:काल को राग युक्त बनाने वाली मदिरा की नशा ने प्रियतमों की भाँति रमणियों को अपने में विभोर कर लिया। रमणी के पति का गाढ़ालिङ्गन करने पर उसकी सपत्नी का हृदय विदीर्ण हो रहा था। मद्यपान से मतवाली सुरत संभोग के लिए लालायित रमणियों के नेत्र विलास की कल्पना में कानों तक फैले हुए थे। इस प्रकार पतियों की रुचि के अनुसार सुरत करती कराती रमणियाँ थक गयीं तथा अपने-अपने अंगों को कपड़ों से ढकने के लिए व्यग्र हो उठी और उधर सवेरा भी होने लगा।

एकादश सर्ग :—एकादश सर्ग में महाकवि माघ ने प्रभात वर्णन किया है। श्रीकृष्ण भगवान को जगाने के लिए मधुर कण्ठ वाले बन्दी लोग उच्च स्वर से प्रभाती गाने लगे। चन्द्रमा के अस्तप्राय होने से पूर्व दिशा स्वच्छ हो रही थी तथा सूर्योदय होने के पहले ही अरुण से अन्धकार दूर हो रहा था। मालती पुष्प की सुगन्ध से युक्त प्रभात की शीतल सुगन्ध वायु धीरे-धीरे बहने लगी थी। नायिकाएँ रात्रि के विविध सम्भोग वृत्तान्तों का स्मरण कर स्वयं लज्जित हो रही थी। द्विज लोग यज्ञ आदि संबंधित प्रात:कालीन कार्य प्रारम्भ कर रहे थे। तपाये गये स्वर्ण गोले के समान निकलता हुआ सूर्य समुद्र की बड़वानल की ज्वाला से संतप्त लाल अंगार जैसा प्रतीत हो रहा था। नदियों की धारा सूर्य किरणों से सम्पर्क के कारण लाल हो रही थी। कमलों के विकसित होने से उसमें बंद हुए भ्रमर बाहर निकल रहे थे।

द्वादश सर्ग :—महाकवि माघ ने द्वादश सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण के प्रभातकालिक प्रस्थान का वर्णन

किया है। इस प्रभार जब प्रात: काल हो गया और सूर्य उदित हो गये तब भगवान श्रीकृष्ण अपने सुन्दर रथ पर आरुढ़ होकर अपने शिविर से निकले तथा अन्य राजा लोग भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। उनके पीछे तम्बू कनात समेटकर गाड़ी, ऊँट आदि पर लादकर पैदल सेना चलने लगी। बहुत से छत्रधारी राजाओं के होने से सर्वत्र छत्र ही छत्र दिखायी पड़ रहे थे। इतनी विशाल होने पर भी सेना मर्यादा बद्ध थी। सुवर्णमयी धूल रैवतक पर्वत के नीचे भागों पर छा गयी। विशालकाय ऊँचे पर्वतों व नदियों को लाँघती हुयी वह यादव सेना चली जा रही थी। सेना जब ग्रामों से होकर जा रही थी तो ग्राम वधुएँ श्रीकृष्ण को ओट में होकर छिप-छिपकर देखने लगी। कहीं-कहीं धान के खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ इधर तोतों को उड़ा रही थी तो दूसरी ओर से मृग धान चरने लगते थे। इस प्रकार वह विशाल सेना बहुत से नगरों को पार करती हुयी अथाह यमुना नदी के तट पर आकर रुक गयी। उस यमुना नदी को कुछ लोगों ने नावों से तथा कुछ लोगों ने तैरकर और हाथी, घोड़े, बैल आदि ने उसमें घुसकर पार किया। इस प्रकार यमुना नदी को पार कर सेना हस्तिनापुर की ओर बढ़ी।

त्रयोदश सर्ग :–धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण के आगमन का संवाद सुनकर प्रसन्नतापूर्वक अपने अनुजों के साथ उनकी अगवानी हेतु प्रस्थान किया। राजा युधिष्ठिर दूर से ही भगवान को देखकर रथ से उतरना चाह रहे थे किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे भी पहले रथ से उतरकर विशेष विनयशीलता दिखायी, और युधिष्ठिर को नम्र होकर प्रणाम किया। युधिष्ठिर ने भगवान को छाती से लगाकर आलिङ्गन किया। इसके अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने भीमादि का तथा यादवों ने पाण्डवों का आलिंगन किया। इसी प्रकार यादव रमणियो ने पाण्डव रमणियों का आलिंगन किया।

इस प्रकार परस्पर मिलने के बाद युधिष्ठिर के अनुनय विनय करने पर अर्जुन के हाथ का सहारा लेकर भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के रथ पर चढ़े। युधिष्ठिर भगवान के सारथि बने। भीम चामर चलाने लगे अर्जुन ने छत्र पाया, नकुल सहदेव अनुचर बनकर पार्श्व में खड़े हो गये। इस प्रकार आगे बढ़ती सेना की दुन्दु भी आकाश तक पहुँच गयी। इस प्रकार भगवान हस्तिनापुर में प्रविष्ट हुए उन्हें देखने के लिए रमणियाँ अपना-अपना काम छोड़कर खिड़िकियों पर पहले से ही खड़ी हो गयी। जिस समय भगवान श्रीकृष्ण सभास्थल पर पहुँचे उस समय वहाँ की शोभा अमरावती की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी। पद्यराग मणि, इन्द्रनीलमणि तथा नागमणियों से निर्मित उस अद्भुत सभास्थल में पहुँचकर भगवान तथा युधिष्ठिर रथ से उतरकर रत्नजड़ित स्वर्ण सिंहासन पर दोनों एक साथ बैठे।

चतुर्दश सर्ग :—सिंहासनारुढ़ भगवान श्रीकृष्ण से युधिष्ठिर ने कहा मैं इस समय यज्ञ करना चाहता हूँ। आप आज्ञा देकर अनुग्रहीत कीजिए। आपके सान्निध्य से मेरा यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हो जाएगा। कृष्ण ने कहा राजन आप मुझे अर्जुन से भिन्न मत समझिये। राजसूय यज्ञ आपके अतिरिक्त और कौन कर सकता है। आप मुझको अपने करणीय कार्यों में अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहें वहाँ नियुक्त करें। मेरा सुदर्शन चक्र उस राजा के शिर को देह से पृथक कर देगा जो आपके राजसूय यज्ञ में सेवक की भाँति कार्य न करेगा।

उनके ऐसा कहने पर राजा युधिष्ठिर यज्ञ के लिए प्रस्तुत हो गये। वैदिक लोग सामवेदादि पढ़ने लगे। हविष्य को ऋत्विज लोग अग्नि में हवन करने लगे। इस प्रकार यज्ञ समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को यथेच्छ यज्ञ दक्षिणा देकर संतुष्ट किया यहाँ तक कि अन्य राजाओं द्वारा दिये गये अमूल्य उपहारों को भी ब्राह्मणों को दान कर दिया।

इस प्रकार यज्ञ के अन्त में भीष्म ने अर्ध्यदान के सम्बन्ध में कहा कि स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जामाता तथा राजा ये छः अर्ध्यपात्र कहे गये है। यह सभी तुम्हारी सभा में आये हैं, किन्तु इनमें से एक ही अत्यन्त गुण युक्त व्यक्ति की पूजा करनी चाहिए। ब्राह्मणों तथा राजाओं के समुदाय में सर्वगुण सम्पन्न ब्रह्म के अंश, योगियों के ध्येय एवं सृष्टि की रचना पालन एवं संहार करने वाले कर्मफल से असंपृक्त पुराण पुरुष भगवान श्रीकृष्ण को प्रथमार्ध देकर महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ सम्पन्न किया।

पञ्चदश सर्ग :—इस सर्ग में महाकवि माघ ने शिशुपाल द्वारा कृष्ण की पूजा के समय प्रकट किये गये रोप का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के सम्मान को चेदि नरेश शिशुपाल सहन नही कर सका तथा क्रोध तथा द्वेष से भर जाता है। वह पहले से ही भगवान से कुद्ध था। शिशुपाल की क्रोध के कारण भृकुटि तन गयी, आँखें लाल हो गयी, भुजाएँ। फड़कने लगी तथा वह पसीने से तर हो गया। उसने क्रुद्ध होकर कहा कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर अपने प्रियजनों को सभी गुणवान मानते हैं। किन्तु तुमने साधुजनों से अपूजित कृष्ण की पूजा की है जो राजा भी नहीं है, तुम्हारा धर्मराज नाम लोग झूठे ही कहते हैं। यदि कुन्ती पुत्रों तुम्हारे लिए कृष्ण इतना ही पूज्यनीय था तो अन्य राजाओं को सभा में बुलाकर क्यों अपमानित किया। हो सकता है आप सभी मूर्ख हो, किन्तु पके हुए बालों वाला, नष्ट बुद्धि यह भीष्म भी असावधन है। हे शान्तनु पुत्र तुमने छः व्यक्तियों को अर्ध्यपात्र बताया उनमे से यह कौन सा स्नातक है, जिसकी तुमने अग्रपूजा करवायी हैं, आखिर तुम नीचगामिनी गंगा के ही पुत्र ठहरे।

इसके बाद शिशुपाल श्रीकृष्ण को कहने लगा कि तुम्हें रजोचित पूजा नहीं स्वीकार करनी चाहिए थी। तुमने डंडे से मधुमक्खियों को मारकर अपना नाम 'मधुसूदन' रखा। क्या तुम्हें याद नहीं राजा मुचुकुन्द की शैय्या तुम्हारे लिए शरणदायिनी बनी। तुम मगधपति जरासन्ध से अठारह बार पराजित हुए। जो तुम सबल कहलाते हो, वह बलराम की संगत में रहने से। 'सत्यप्रिय' नाम तो 'सत्याभामा' के साथ प्रेम करने के कारण हुआ। अपनी सेना की रक्षा करने में असमर्थ किन्तु रथ के चक्के (सुदर्शन चक्र) को सदैव धारण करने से तुम चक्रधर कहलाये। 'श्रीपति' इसलिए कहलाए की समुद्र कन्या श्री बाम्नी के साथ विवाह हुआ था, अन्यथा ययाति के शाप से तो यदुवंशियों की राजलक्ष्मी तो कब की चली गयी। शिशुपाल अन्य राजाओं से कहने लगा सिंह के समान आप लोगों के रहते हुए कुन्ती पुत्रों ने गीदड़ के समान श्रीकृष्ण की पूजा की है। यह आप लोगों का अपमान है। जिस कृष्ण ने वृषभ रूपधारी अरिष्टासुर का संहार किया वह अपवित्र आत्मा क्या पूज्रा की पात्रता प्राप्त कर सकता है ? हे युधिष्ठिर गुणों द्वारा ही मनुष्य पूज्यनीय होता है, किन्तु कृष्ण में पूजा के योग्य कोई गुण नही है। यह तो अकृतज्ञ सुख से विहीन है दूसरे महान लोगों के गुण भी इसके समीप आकर विलीन हो जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण शिशुपाल के अपराधों को मन ही मन गिन रहे थे। इसके बाद भीष्म ने कहा जिस किसी राजा को भगवान श्रीकृष्ण की पूजा स्वीकार नहीं वह अपना धनुष चढ़ा ले। यह मेरा बायाँ पैर उन सभी राजाओं के सिर पर है। इससे शिशुपाल पक्षीय राजा बड़े क्षुब्ध हुए। शिशुपाल अपशब्द कहता हुआ सभा भवन से बाहर आ गया। पाण्ड् पुत्रों ने शिशुपाल को रोका किन्तु वह तीव्रगामी घोड़े पर सवार होकर अपने शिविर में जा पहुँचा और युद्ध की तैयारी करने लगा। वह राजाओं को कृष्ण और भीष्म को मारने के लिए ललकारने लगा। युद्ध के लिए प्रस्थान के समय रमणियाँ पति का फिर दर्शन न पाने की आशंका से काँपने लगी।

षोड्स सर्ग :—महाकवि माघ ने सोलहवें सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण के साथ शिशुपाल के दूत के संवाद का वर्णन किया है। इस सर्ग में श्लेष अलंकारों के प्रयोग द्वारा दो अर्थों वाली बातें कही गयी है। युद्धोन्मुख शिशुपाल द्वारा भेजे गये दूत ने सभा में श्रीकृष्ण के समीप पहुँचकर कहा कि युधिष्ठिर की सभा में आपको अपशब्द कहकर शिशुपाल लज्जित है, अत: आपका सत्कार करना चाहता है। अथवा मैंने कृष्ण को फटकार कर ही छोड़ दिया, मारा नहीं, ऐसा सोचता हुआ वह आपका वध करना चाहता है। वह समस्त राजाओं के साथ प्रणत होकर आपका आज्ञाकारी बनेगा, अथवा आपको छोड़कर सब राजाओं से प्रणत वह यहाँ आकर आपको दण्डित करेगा।

इस प्रकार विविध द्वयर्थक कटु वचन कह कर दूत के चुप होने पर श्रीकृष्ण भगवान का संकेत पाकर

सात्यकि कहने लगे—हे दूत ! प्रत्यक्ष में मधुर तथा परोक्ष में कटु वचन कहने वाले तुम्हारे जैसे दुष्टों से सदा सचेत रहना चाहिए। शिशुपाल यहाँ पर जिस भावना से आयेगा, तदनुरुप ही उसके साथ व्यवहार किया जाएगा। छोटे मनुष्यों का हृदय भी तुच्छ होता है। शिशुपाल की गालियाँ सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने कुछ नहीं कहा क्योंकि सिंह तो बादलों की गर्जन सुनकर ही दहाड़ता है। श्रंगालों की आवाज से नहीं।

सात्यकि के ऐसा कहने पर वह दूत पुनः कहने लगा बुद्धिहीन व्यक्ति अपनी भलाई दूसरों के समझाने पर भी नहीं समझता। यही आश्चर्य है। मॉस प्रिय सिंह के द्वारा छोड़ी गयी गजमुक्ता के समान युधिष्ठिर से अपूजित भी शिशुपाल का महत्व कम नहीं हुआ है। उन्होंने युद्धार्थ यादवों को ललकारने के लिए मुझे भेजा है। वे अकेले ही चतुरंगिणी सेना के साथ लड़ सकते हैं। आप इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र हैं तो वह इन्द्र को जीतने वाले हैं। संग्राम होने पर वे युद्ध में आपको मार कर रोती हुयी आपकी रमणियों पर दयार्द होकर उनके बच्चों की रक्षा करके अपने 'शिशुपाल' नाम को चरितार्थ कर लेगें।

सप्तदश सर्ग :—शिशुपाल के दूत के कठोर वचन सुनकर सभा में उपस्थित राजा बड़े क्रुद्ध हुए। किन्तु कृष्ण और उद्धव जी शान्त बने रहे। अनन्तर राजा लोग युद्ध की तैयारी करने लगे। नगाड़े बजने लगे, सैनिकों ने कवच पहनें तथा हाथी, घोड़ों व रथों को भी तैयार किया जाने लगा।

भगवान श्रीकृष्ण स्वयं भी शार्ङ्ग धनुप, कौमोदकी गदा तथा नन्दक खड्ग आदि आयुधों को ग्रहण कर रथ पर आरुण हो गये। भगवान का रथ जैसे ही आगे बढ़ा सैनिक भी प्रलयकाल की भाँति साथ हो गये। हाथी, घोड़े चिन्घाड़ने व हिनहिनाने लगे। कन्दराओं में सोये हुए सिंह निकलकर भाग रहे थे। दिशाएँ धूल धूसरित हो रही थी। श्रीकृष्ण ने दूर से ही शत्रु की सेना का अनुमान कर लिया था। पर्वत के समान हाथी मदजल की धारा से धूलि को धो रहे थे। दोनों पक्षों के सैनिक एक दूसरे की ओर तीव्रता से बढ़ने लगे।

अष्टादश सर्ग :—महाकवि माघ ने अठारहवें सर्ग में युद्ध का वर्णन किया है। युद्ध भूमि में दोनों शत्रु पक्ष युद्ध कर रहे थे। पैदल-पैदल से, घोड़े-घोड़े से, रथी-रथी से, हाथी-हाथी से भिड़ गये। रणभेरी की गम्भीर ध्वनि, रथों की घरघराहट गजराजों की तुमुल चिंघाड़ और अश्वों की हिनहिनाहट ये सब मिलकर जैसे परमात्मा की अव्यक्त सत्ता में खो गये हों। धनुषधारी लोग धनुषों पर प्रत्यपञ्चा चढ़ाते हुए हुंकार करने लगे। बन्दी लोग उत्साहवर्द्धनार्थ योद्धाओं का नाम लेकर उनकी वीर गाथा गा रहे थे। युद्ध में रक्त इतना बहा कि मानों असंख्य नदियाँ बह रही हों। पक्षीगण माँस खाने की इच्छा से आकाश में मंडरा रहे

थे। मानो भीषण अस्त्रों के आघात से शरीर को त्यागकर जाने वाले प्राण ही मूर्तिमान होकर अब भी अपने शरीर को देख रहे हों। कोई हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथी के शरीर में घुसे हुए अपने दाँतों को बार-बार गर्दन हिलाकर बड़ी कठिनता से निकाल रहा था। कोई हाथी किसी वीर को लकड़ों के समान चीर रहा था।डण्डे कट जाने से राजाओं के श्वेत छत्र भूमि में लुढ़ककर ऐसे मालूम पड़ते थे मानो मृत्यु को भोगने के लिए चाँदी के थाल रखे गये हों। निरन्तर उस रणक्षेत्र में माँस को खाते और रक्त को पीते हुए गीदड़ हर्ष से हुआँ-हुआँ कर रहे थे।

एकोनविंश सर्ग :—संग्राम में शिशुपाल की सेना को हारते देखकर बाणासुर का पुत्र बेणुदारी हाथी के समान यादव सेना पर टूट पड़ा, परन्तु बलराम जी ने उसकी गर्दन काट दी। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने अपने पीछे वेग से आती हुयी शत्रु राजाओं की सेना को अकेले ही इस प्रकार रोका जिस प्रकार सब ओर से आते नदी को समुद्र रोकता है।

शिशुपाल की सेना ने इस वीर बालक के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। देवतागण इसकी वीरता से प्रसन्न हो पुष्प वर्षा कर रहे थे। यह देख शिशुपाल क्रोधित हो गया। वह चतुरंगिणी सेना के साथ प्रद्युम्न की ओर दौड़ पड़ा। शिशुपाल यादव सेना को संत्रस्त कर रहा था। उसने अनेक हाथियों, घोड़ों तथा वीरों का संहार कर दिया। शिशुपाल तेजी से आगे बढ़ रहा था। शिशुपाल को आता सुनकर श्रीकृष्ण का पांञ्चजन्य शंख बोल उठा। अत्यन्त देदीप्यमान रथ पर आरुढ़ होकर वह धनुष लिए हुए संग्राम में आ पहुँचे। उनके आते ही गगन कंपित हो उठा। पृथ्वी के भारभूत शिशुपाल पक्षीय राजाओं का सिर भगवान ने चक्र से काट दिया।

विंश सर्ग :—भगवान श्रीकृष्ण के पराक्रम को न सहने वाले शिशुपाल की भृकुटि टेढ़ी हो गयी, और उसने तीक्ष्ण बाण छोड़ना शुरु कर दिया। उसके बाणों से आकाश ढक गया। धरती सूर्य कोई दिखायी नहीं दे रहा था। शिशुपाल के वज्र के समान धनुष टंकार से धरती हिल रही थी। यह देख भगवान का धनुष शिशुपाल की ओर तन गया। भगवान के बाणों को कोई देख नहीं पा रहा था। शिशुपाल ने भगवान पर स्वापन अस्त्र चलाया पर भगवान के कौस्तूभमणि के सामने होते ही वह विलीन हो गया। तदुपरान्त शिशुपाल ने नागास्त्र छोड़ा, किन्तु भगवान के रथ की पताका पर सवार गरुड़ जी के भय से सर्प पाताल में छुप गये। तदुपरान्त शिशुपाल ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर दिया, परन्तु भगवान के मेघास्त्र के सामने वह भी विफल हो गया। इस तरह पराजित शिशुपाल श्रीकृष्ण को वचन रूपी बाणों से

व्यथित करने लगा । शिशुपाल की अभद्र वाणी सुनकर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के शरीर को सुदर्शन चक्र से सिर विहीन कर दिया । शिशुपाल का सिर कट कर पृथ्वी पर गिरा, तब राजाओं ने विस्मित नेत्रों से देखा कि परमदैदीत्यमान तेज शिशुपाल के शरीर से निकलकर श्रीकृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गया ।

महाकवि माघ द्वारा रचित 'शिशुपालवध' ग्रन्थ का मूल स्रोत क्या है, इस बात को लेकर विद्वानों में मतभेद है । डॉ० बल्देव उपाध्याय के अनुसार शिशुपालवध महाकाव्य का प्रेरणा स्रोत मुख्यत: श्रीमद्भागवत तथा गौण रुप से महाभारत है ।[२०] श्री पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, जिन्होंने 'शिशुपालवध' का हिन्दी अनुवाद किया है, के अनुसार महाकवि माघ ने शिशुपालवध की रचना महाभारतीय कथा के आधर पर की है ।[२१] वास्तव में 'शिशुपालवध' की कथा को श्रीमद्भागवत[२२] के दशम् स्कन्ध के ६९ से ७४वें अध्याय में तथा महाभारत[२३] समापर्व के ३३वें से ४५वें सर्ग तक कुल तेरह अध्यायों में देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त अनेक पुराणों[२४] में भी यह कथा कुछ हेर फेर के साथ मिलाती है ।

'शिशुपालवध' महाकाव्य की कथावस्तु महाकवि माघ को महाभारत और श्रीमद्भागवत में मिल गयी किन्तु इन दोनों की कथावस्तु का सन्दर्भ लेते हुए अध्ययन से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि माघकवि ने कई जगह पर आख्यानों में परिवर्तन किये हैं जो संभवत: काव्य की शोभा वर्धन में सहायक होंगे । कवि अपनी मौलिक उद्भावना शक्ति के लिए अपने महाकाव्यों, खण्ड काव्यों एवं काव्यों के प्रसिद्ध कथानकों को अपने उद्देश्य सिद्धि हेतु एक नवीन मोड़ दे देते है । महाकवि तुलसी कृत रामचरितमानस और बाल्मीकि कृत रामायण में भी भिन्नता है तथा उत्तर रामचरित नाटक को दु:खांतता से बचाने के लिए महाकवि भवभूति ने अन्त में अपने कौशल से सीता व राम का मिलन दिखाया है । 'शिशुपालवध' महाकाव्य के कथानक में भी कवि ने यथावश्यक परिवर्तन किये है । इन परिवर्तनों से कथानक मूल रूप से भिन्न सर्वथा एक नूतन रुप न धारण कर ले, ऐतिहासिक और पौराणिक सत्य में कहीं विरोध न आ जाए, कवि को इन बातों का भी ध्यान रखना था । 'शिशुपालवध' महाकाव्य में बड़े परिवर्तनों के अतिरिक्त छोटे-छोटे परिवर्तन भी है क्योंकि माघ का काव्य लिखने का उद्देश्य न केवल शिशुपाल का वध है अपितु भगवान श्रीकृष्ण का गुणगान करना भी है ।

महाकाव्य के पूर्ववर्ती ग्रन्थों में प्राप्त शिशुपालवध से सम्बद्ध कथाओं तथा माघ प्रणीत महाकाव्य की कथा के विवेचन से ज्ञात होता है कि शिशुपालवध कथा का आरम्भ महर्षि नारद के आगमन से ही होता है । महाभारत में नारद विचरण करते हुए युधिष्ठिर की सभा में पहुँचते है । श्रीमद्भागवत् में अकेले

ही श्रीकृष्ण के सम्मुख सूर्यसदृश प्रकट होते है और 'शिशुपालवध' महाकाव्य में नारद आकाश मार्ग से द्वारिकापुरी में आते तो ऋषियों के साथ हैं, किन्तु पृथ्वी पर उतरने के पहले ही वे अनुगमन करने वाले देवताओं को लौटा देते हैं।

महाकवि माघ शिशुपाल के वध की भूमिका प्रथम सर्ग में बनाते हैं। शिशुपाल जैसे वीर पुरुष का वध कोई साधारण व्यक्ति तो कर नहीं सकता, अत: सृष्टि के व्यवस्थापक और शान्ति के संस्थापक भगवान श्रीकृष्ण ही इस कार्य को कर सकते हैं। चूँकि माघ कवि का उद्देश्य भगवान श्रीकृष्ण का गुणगान करना है अत: बड़े काम के लिए बड़ी अवतारणा जरुरी है। कवि ने इसीलिए नारद द्वारा नृसिंहावतार, रामावतार आदि के प्रसंग को प्रस्तुत किया है, जो कि माघ द्वारा किया गया छोटा सा परिवर्तन है। परन्तु उस परिवर्तन से कथानक को नया मोड़ मिलता है तथा श्रीकृष्ण का एक वीरतापूर्ण तथा दूसरा तेजोऽमय स्वरुप प्रस्तुत हो जाता है।

महाभारत में महर्षि नारद युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने का आदेश देकर चले जाते हैं। उसके पश्चात युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के लिए भाइयों से परामर्श कर श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए दूत भेजते हैं। माघ कवि भगवान श्रीकृष्ण को नारद द्वारा शिशुपालवध का इन्द्र का संदेश भेजते हैं।[२५] इसके पश्चात् श्रीकृष्ण बलराम व उद्धव सहित मन्त्रणा गृह में जाते हैं। इसमें माघ कवि ने अपना राजनीतिक कौशल दिखाया है। राजनीति की चर्चा में युद्ध और कूटनीति पर गम्भीरता से विचार हुआ है।[२६] इससे कवि की राजनीतिक रुचि का भी परिचय मिलता है। उनके व्यक्तिगत जीवन पर सम सामयिक राजनीति का प्रभाव व्यक्त होता है। श्रीमद् भागवत में और माघ काव्य दोनों में श्रीकृष्ण उद्धव के मत का अनुमोदन करते हैं और इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान करते हैं। इन्द्रप्रस्थ तक पहुँचने का वर्णन महाकवि माघ ने १० सर्गों के ७६६ श्लोकों में प्रस्तुत किया है,[२७] जबकि इसी प्रसंग का महाभारत में डेढ़ श्लोक में वर्णन है।[२८]

सुकवि कीर्ति के इच्छुक महाकवि माघ तृतीय से द्वादश सर्ग तक मौलिक रचना प्रस्तुत करते है। यह परिवर्तन जहाँ महाकाव्य की आवश्यकता की पूरी करता है वहीं एक युग विशेष की सामाजिक चेतना को भी अभिव्यक्त करता है।इस वर्णन के द्वारा कवि का प्राकृतिक व सांस्कृतिक प्रेम भी परिलक्षित होता है।

महाभारत में कृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचने पर युधिष्ठिर आदि ने उनकी पूजा की तथा जब वे अपनी बुआ से मिलकर जाने लगे तब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन मद्भागवत

ओर माघ काव्य दोनों में श्रीकृष्ण गमन के अवसर पर अनुजों और सहृदों सहित युधिष्ठिर उनके स्वागतार्थ जाते हैं। श्रीमद्भागवत तथा माघ काव्य के कई श्लोकों में भावसाम्य स्पष्ट है। भागवत में कुन्ती की आज्ञा से द्रौपदी द्वारा रुक्मिनी सत्यभामा आदि पत्नियों की विधिवत पूजा की है। दूसरी ओर माघ काव्य में गजकुम्भ सदृश उन्नत व कठोर पयोधरों के भार से हर्ष से रोमांचित कपोल फलकों वाली यादवों व पांडुवों की रमणियों के परस्पर मिलने का वर्णन है।[२९]

अर्ध्य का अधिकारी कौन ?इस प्रश्न को लेकर कवि ने एक परिवर्तन किया है। श्रीमद्भागवत में भी महाभारत की तरह पहले जरासन्ध का भीम द्वारा वध दिखाया गया है, तदनन्तर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की तैयारी है। किन्तु शिशुपालवध में दिग्विजय का कहीं वर्णन नहीं है, राजसूय यज्ञ से ही महाकवि सीधे प्रारम्भ करते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि आपके यज्ञ में जो विघ्न उपस्थित करेगा, उसका सिर मेरे सुदर्शन चक्र द्वारा धड़ से अलग हो जावेगा।[३०] इससे स्पष्ट है कि युधिष्ठिर दिग्विजय कर चुके हैं।

राजसूय यज्ञ के प्रत्येक कार्य की सम्पन्नता में श्रीकृष्ण का हाथ था। महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के चरण प्रक्षालन का कार्य किया। परन्तु श्रीमद्भागवत तथा माघ काव्य में उन्हें किसी कार्य में न नियुक्त करके राजसूय यज्ञ की सफलता में श्रयो भागों बनाया है।

महाभारत में श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर युधिष्ठिर यज्ञ सामग्री जुटाने लगे, तथा यज्ञ में आये लोगों से विभिन्न कार्य करवाने लगे। जब श्रीमद्भागवत में यज्ञ का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है। महाकवि माघ ने शिशुपालवध के चतुर्दश सर्ग के ३५ श्लोकों में राजसूय यज्ञ का वर्णन किया है।[३१] तथा यज्ञ की समाप्ति पर महाराज युधिष्ठिर ने सभी को यथेच्छ यज्ञ दक्षिणा देकर सन्तुष्ट किया। याचकों की इच्छानुसार देकर भी पाश्चात्ताप नहीं किया।[३२] इस प्रकार माघ वर्णित राजसूय यज्ञ अतिचित्रोपम है। इस यज्ञ के वर्णन से यह प्रतीत हाता है कि माघ ने अपने जीवन काल में किसी बड़े यज्ञ को देखा होगा, या पुराणों में वर्णित यज्ञ माघ के लिए सहायक सिद्ध हुए होंगे।

महाभारत में अर्ध्यपूजा के अधिकारी छः व्यक्तियों को बताया गया है। अन्त में भीष्म प्रथम अर्ध्य का समाधान कर देते हैं।भागवतकार सहदेव से श्रीकृष्ण के प्रथम अर्ध्याधिकारी होने का प्रस्ताव करवा कर शान्त हो जाते हैं। किन्तु माघ के काव्य में केवल तीनों ग्रन्थों का यही साम्य मिलता है कि अर्ध्य पूजा के योग्य श्रीकृष्ण हैं। राजसूय यज्ञ के बाद युधिष्ठिर को प्रधमार्ध्य के लिए भीष्म बताते हैं कि स्नातक, गुरु, बन्धु, पुरोहित, जमाता एवं राजा में छः लोग प्रथमार्ध्य के योग्य है। यह भी शास्तानुमोदित विधि

है।[३३] साथ ही भीष्म यह भी कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण एक मात्र अग्रपूजा के अधिकारी है।[३४] इस प्रकार कवि को श्रीलकृष्ण के विविध अवतारों के वर्णन का सुन्दर अवसर मिलता है। कवि महोदय भीष्म के मुख से श्रीकृष्ण की स्तुति करवाते है इसका अभिप्राय न सिर्फ भगवान श्रीकृष्ण का गुणगान करना है अपितु शिशुपाल को कुपित करना भी है जिससे वह प्रशंसा सुनकर क्रुद्ध हो जाए और अपशब्द कहने लगे और तब उसका वध हो जाए।

महाभारत में श्रीकृष्ण कहते हैं शिशुपाल के सौ अपराध पूरे हो चुके हैं। अतः उसका सिर काटता हूँ। सिर कटने पर शिशुपाल के शरीर से एक तेज पुञ्ज निकलकर श्रीकृष्ण में विलीन हो गया। श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण पक्षीय राजाओं ने शस्त्र उठाया तब कृष्ण ने शिशुपाल का सिर काट दिया। भागवत में शिशुपाल के जन्म जन्मान्तर का वर्णन भी दिया गया है। शिशुपालवध महाकाव्य में पहले शिशुपाल और श्रीकृष्ण का युद्ध वर्णन है जब शिशुपाल ने समझा कि श्रीकृष्ण अजेय है तभी वाग्वाण द्वारा युद्ध आरम्भ किया, तब श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया।

प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने इस बात का अनुसरण किया कि अर्ध्य पश्चात शिशुपाल से गालियाँ दिलवायी और १०० अपराध पूरे होने पर उसका श्रीकृष्ण के हाथों वध करवा दिया। माघ ने यहाँ जिस मौलिक परिवर्तन को प्रस्तुत किया है वह उन्हें अन्य ग्रन्थकारों से ऊँचा उठा देता है। गाली देते हुए मार देना एक चमत्कार जैसा लगता, क्योंकि शिशुपाल एक वीर एवं क्षत्रिय थ। इसीलिए उसने युद्ध के लिए ललकारा और अस्त्रों से पराजित नहीं कर सका तो गालियाँ देने लगा। सौ गालियों की समाप्ति पर श्रीकृष्ण अपने अपराधी शत्रु शिशुपाल का वध कर देते है। इस परिवर्तन से वध रुपी कार्य का सुन्दर व औचित्यपूर्ण समाधान हो जाता है।

संक्षेप में कुछ कहा जा सकता है कि कवि ने एक छोटी सी घटना को लेकर उसके आधार पर अपनी यह वृहत् रचना प्रस्तुत की है। इस घटना को चुनने के दो प्रयोजन है, एक तो यह कि उसके सहारे उन सारी बातों को प्रस्तुत किया जा सकता है जो उस समय तक स्वीकृत लक्षणों के अनुसार इस रचना को महाकाव्य का रुप दे सकती थी, और दूसरे यह कि श्रीकृष्ण के जीवन की एक विशिष्ट घटना के वर्णन द्वारा कवि अपनी कृष्ण भक्ति को भी प्रकाशित करना चाहता था। यह कहना उचित ही होगा कि माघ कवि के उक्त दोनों ही प्रयोजन इस छोटी सी कथावस्तु से अभीष्ट रूप में सिद्ध हुए हैं।

शिशुपालवध की व्याख्याएँ :

माघ काव्य की अनेक संस्कृत व्याख्याएँ मिलती हैं। यथा (१) बल्लभदेव रचित 'सन्देह विषौषधि', (२) रंगराज रचित (३) एकनाथ रचित (४) चरित्रवर्धन प्रणीत (५) मल्लिनाथ रचित 'सर्वङ्कषा' (६) भरतमल्लिक कृत 'सुबोध' व्याख्या (७) दिनकर मिश्र कृत 'सुबोधिनी' व्याख्या और (८) गोपाल रचित हसन्ती व्याख्या (९) पेदा भट्ट (१०) देवराजा (११) हरिदास (१२) श्री रंगदेव (१३) श्रीकान्त (१४) भारत सेन (१५) चन्द्रशेखर (१६) कवि वल्लभ चक्रवर्ती (१७) लक्ष्मीनाथ (१८) भागदत्त (१९) महेश्वर पंचानन (२०) भागीरथ (२१) जीवानन्द विद्यासागर (२२) गरुण (२३) आनन्द देववाणी (२४) बृहस्पति (२५) राजकुंड (२६) जय सिंहाचार्य (२७) पद्मना पदत्त (२८) वृषाकर और एक अज्ञात नामा व्यक्ति।[३५]

उपर्युक्त व्याख्याओं में मल्लिनाथ कृत सर्वङ्कषा व्याख्या सर्वश्रेष्ठ है।[३६] परन्तु कालक्रम की दृष्टि से वल्लभदेव की टीका सर्व प्राचीन है।[३७] महामहोपाध्याय मल्लिनाथ द्रविड़ देश के निवासी थे। इनका विरुद 'महोपाध्याय' एवं 'कोलाचल' भी था, जैसा कि इनके द्वारा व्याख्यात अनेक ग्रन्थों के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक की व्याख्या के बाद पुष्पिका में इति श्री महोपाध्याय-कोलाचल मल्लिनाथ विरचितासां वाक्य उपलब्ध होते हैं। इन्होंने लघुत्रयी व वृहत्रयी—छ: काव्यों की व्याख्या की है और प्रत्येक व्याख्याओं के भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं। यथा शिशुपालवध की व्याख्या 'सर्वङ्कषा', नैषध्यचरित की व्याख्या 'जीवातु', किरातार्जुनीय की व्याख्या 'घण्टापथ', रघुवंश की व्याख्या 'संजीवनी' इत्यादि। इनकी व्याख्याएँ सर्वमान्य है क्योंकि इनकी व्याख्याओं को देखने से ज्ञात होता है कि ये सभी महाकवियों के समान वेद, वेदाङ्ग षटदर्शन, पुराण, इतिहास, छन्द, अलंकार, कोष एवं कामशास्त्र के महान ज्ञाता है। इसी प्रकार इनको राजनीतिशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, अश्वविद्या, गजविद्या तथा संगीतशास्त्र में पूर्णत: महारत हासिल है। शिशुपालवध महाकाव्य की व्याख्या में ही मल्लिनाथ ने शताधिक ग्रन्थों एवं व्याख्याकारों के नाम उद्धृत किये हैं। मल्लिनाथ कृत व्याख्याओं की विशेषता है कि कठिन से कठिन श्लोक की भी व्याख्या अत्यधिक सहज ढंग से की है जिससे कि उसका आशय स्पष्ट हो जाए। मल्लिनाथ की टीका के अतिरिक्त वल्लभदेव रचित 'सन्देह विषौषधि' टीका भी प्रकाशित है।[३८] यह टीका प्राचीनतम है। वल्लभदेव काश्मीर के निवासी थे तथा 'राजानंक' उपाधि से मण्डित थे। इनके पौत्र कैयट के उल्लेखानुसार इनका वंशक्रम इस प्रकार है—आनन्देदव—वल्लभदेव—चन्द्रादित्य—कैयर।[३९] ये कैयर महाभाष्य के टीकाकार वैयाकरण कैयट से नितान्त भिन्न व्यक्ति है। इन्होंने आनन्दवर्धन रचित देवी शतक की टीका ९७७ ई० में लिखी थी। अत: इनके पितामह वल्लभदेव का समय ९४० ई० के पूर्व माना जा सकता है। वल्लभदेव

सुभाषितावली के प्रणेता वल्लभदेव से भिन्न व्यक्ति है। इनकी व्याख्याएँ प्रामाणिकता के लिए विख्यात हैं।

माघ कवि की विद्वत्ता :

शिशुपालवध के अध्ययन से यह स्पष्ट पता चलता है कि महाकवि माघ केवल प्रतिभासम्पन्न आशु कवि नहीं थे, अपितु विभिन्न शास्त्रों के उच्च कोटिक ज्ञान के भंडार थे। कुछ आलोचकों का मानना है कि उनकी ख्याति एक पण्डित के रुप में जितनी है उतनी कवि के रुप में नहीं।[४०] उन जैसा विद्वान संस्कृत साहित्य में बिरला ही मिलेगा। माघ का पाण्डित्य सर्वतोमुखी थी। उनके ग्रन्थ के अध्ययन से पता चलता है कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य पर उनका असाधारण पाण्डित्य था। वेद, धर्म, दर्शन, राजनीति, व्याकरण आदि विषयों के वे विशिष्ट पण्डित थे। पाण्डित्य में माघ निश्चित रुप से कालिदास, भारवि, भट्टि या श्री हर्ष से अधिक दिखाई पड़ते हैं। कालिदास मूलत: कवि हैं, भारवि राजनीति के व्यवहारिक ज्ञाता और भट्टि कोरे वैयाकरण, श्रीहर्ष का पाण्डित्य भी विशेषत: दर्शन में अधिक जान पड़ता है। किन्तु माघ, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पाण्डित्य लेकर उपस्थित होते हैं।वे 'आल राउण्डर स्कॉलर' जान पड़ते हैं।[४१] वे न केवल मानव प्रकृति को ही समझते थे अपितु अश्व, गज आदि पशुओं की प्रकृति के भी ज्ञाता थे। 'नवसर्गगते माघे नव शब्द न वद्यिते' अथवा 'काव्येषु माघ: कवि कालिदास:', ये उक्तियाँ उनके लिए निराधार सिद्ध नहीं होती हैं।[४२]

श्रुति व दर्शन विषयक ज्ञान :

माघ कवि वेदों के ज्ञाता है। प्रात:काल के समय अग्निहोत्र का मनोरम वर्णन किया गया है।[४३] यज्ञ सम्बन्धी समस्त बातों एवं क्रियाकलापों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। वेद की ऋचाएँ स्वर सहित कैसे बोली जाती हैं—इसका भी उन्हें पूर्ण ज्ञान था। वैदिक स्वरों के वैशिष्ट्य का ज्ञान आपको खूब था। स्वर परिवर्तन से किस प्रकार अर्थ परिवर्तन हो जाता है इस नियम का उल्लेख उन्होंने काव्य में किया है।[४४]

महाकवि माघ को सांख्य सिद्धान्तों का पर्याप्त ज्ञान था। इसका उल्लेख राजसूय यज्ञ वर्णन वाले स्थान पर मिलता है।[४५] योगशास्त्र की चर्चा करते समय भी उनके योग संबंधी ज्ञान का परिचय चतुर्थ सर्ग के पचपनवे श्लोक में मिलता है। चित्तपरिकर्म, सबीजयोग, सच्वपुरुषान्यताख्याति आदि योग दर्शन के परिभाषिक शब्द हैं, जिनका उल्लेख उपर्युक्त श्लोक में किया गया है।[४६] इसके अतिरिक्त १४वें सर्ग के ६२वें श्लोक में भी योग दर्शन का परिचय मिलता है।

मीमांसा संबंधी महाकवि के ज्ञान का परिचय राजसूय यज्ञ के प्रसंग में मिलता है।[४५] अद्वैत वेदान्त के तत्वों का प्रतिपादन भी कई स्थान पर शिशुपालवध में दृष्टिगत होता है। संसार को मिथ्यामाया स्वीकार कर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एक मात्र सत्य बताने की बात कही गयी है।[४८] ब्रह्म के निर्गुण रुप का प्रतिपादन पहले सर्ग के बत्तीसवें श्लोक में भी किया गया है। इस श्लोक में यह बताया गया है कि मोक्ष के अभिलाषियों को एकमात्र ब्रह्म रुप श्रीकृष्ण की शरण में जाना पड़ता है।[४९]

आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त महाकवि माघ को नास्तिक दर्शनों का ज्ञान भी उच्चकोटि का था। उन्होंने बौद्ध एवं जैन दर्शनों का पूर्व अध्ययन किया था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कवि ने पुराणवादियों की भाँति महावीर स्वामी को भी भगवान विष्णु का अवतार स्वीकार किया है।[५०] इसी प्रकार दूसरे सर्ग के अट्ठाइसवें श्लोक में कवि ने बौद्ध दर्शन की स्थूल बातों के साथ राजनीति की सूक्ष्म बातों की सुन्दर चर्चा की है। बौद्धों के मत में रुपादि पञ्चस्कन्धों के अतिरिक्त शरीर में आत्मा नामक कोई वस्तु नहीं है।[५१]

पौराणिक ज्ञान :

महाकवि माघ का पौराणिक ज्ञान अपूर्व था। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने समस्त पुराणों, गीता, महाभारत, रामायण, भागवत आदि का पूर्ण अध्ययन किया था। इनके काव्य में पौराणिक कथाओं के पग-पग पर दर्शन होते हैं।[५२]

साहित्यिक ज्ञान :

महाकवि माघ को साहित्य के विभिन्न अंगों का पूर्ण ज्ञान था।अत: क्या अलंकार शास्त्र, क्या छन्द शास्त्र तथा क्या रस सिद्धान्त–सभी साहित्यिक बातों की चर्चा उनके काव्य में आ गयी है।

सामरिक ज्ञान :

युद्ध विषयक बातों का माघ काव्य में यथावत वर्णन किया गया है कि युद्ध के सारे दृश्य सामने आ जाते हैं, मानो कवि ने रणभूमि को प्रत्यक्ष देखा है। वन विहार, जल विहार, चन्द्रोदय वर्णन, नायिकाओं के श्रृंगारिक वर्णनों से पाठकों को मुग्ध कर कवि उन्हें एक यज्ञ में सम्मिलित कर देता है और फिर सहसा एक युद्ध का दृश्य सामने आ जाता है। बात ही बात में एक घमासान युद्ध हो जाता है जिसमें विभिन्न अस्त्र शस्त्र आँखों के सामने नाचने लगते हैं। सेना का विभाग, दुर्ग निर्माण, यात्रा, शस्त्रास्त्रों का प्रयोग आदि का कवि ने यथावत वर्णन किया है।

राजनीति विषयक ज्ञान :

महाकवि माघ का राजनीतिशास्त्र का ज्ञान अत्यन्त उत्कृष्ट है। उन्हें राजनीति के विभिन्न अंगों का पूर्ण ज्ञान था। राजा के छोटे-छोटे कर्तव्यों से लेकर सेना की छोटी-छोटी बातों का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। उद्धव तथा बलराम के मुख से तथा युधिष्ठिर व भीष्म के मुख से उन्होंने राजनीति की जटिल से जटिल समस्याओं पर उपादेय हल प्रस्तुत किये है। महाकवि माघ ने भारतीय परम्परा के अनुरुप राजनीतिशास्त्र का वर्णन किया है। द्वितीय सर्ग तो मानो राजनीति विषय ज्ञान का भण्डार है।[५३] राजा के क्या-क्या कर्तव्य होने चाहिए, राजा की सेना संबंधी नीति क्या होनी चाहिए, संधि-विग्रह आदि के प्रयोग किस तरह किये जाने चाहिए आदि बातों का महाकवि ने अधिकार पूर्वक वर्णन किया है।

नाट्यशास्त्र का ज्ञान :

नाट्य शास्त्र का भी महाकवि माघ को पूर्ण ज्ञान था। इन्होंने विभिन्न नाट्यांगों की उपमा बहुत ही सुन्दर ढंग से की है।[५४] जिस प्रकार दर्शक गण नाटकों को देखते समय श्रृंगार आदि नवों रसों का अनुभव करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं उसी भाँति युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये हुए लोग भोजन करते समय मधुर अम्ल आदि छहों रसों के व्यंजनों का आस्वादन कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे। नाटक में जिस भाँति संस्कृत तथा प्राकृत आदि भाषाओं का प्रयोग होता है, उसी भाँति उस यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी बहुत पदार्थ संस्कृत अथवा पकाये गये थे और कुछ प्राकृत अथवा वैसे ही रखे गये थे। जिस भाँति नाटक में एक पात्र का अभिनय कोई दूसरा पात्र नहीं करता है उसी प्रकार भोजन के एक पात्र से दूसरा पात्र नहीं मिलता है। नाटक में जैसे शुद्ध स्थायी भाव रहता है वैसे ही यज्ञ के भोज्य पदार्थों में भी स्वाभाविक शुद्धि होती है। इन दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि महाकवि माघ की नाट्य विषयक जानकारी अत्यन्त आधिकारिक थी।

संगीत शास्त्र का ज्ञान :

महाकवि माघ संगीत शास्त्र के भी पण्डित थे। गायन, वाद्य, ताल, लय, स्वर आदि संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उनके संगीत शासत्र के सूक्ष्म ज्ञान के परिचायक है उनकी संगीत निपुणता उनके श्लोक से स्पष्ट होती है।[५५]

इसी प्रकार महाकवि ने अनेक स्थलों पर अपने **आयुर्वेद**[५६], **व्याकरण**[५७] तथा **ज्योतिष**[५८] सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है।

संस्कृत साहित्य में महाकाव्य निर्माण की दो शैलियाँ अत्यन्त विख्यात हैं।(१) रसमयी पद्धति और (२) अलंकृत पद्धति। प्रारम्भिक युग के कवि प्रथम शैली में काव्य रचना करते रहे हैं परन्तु गुप्तोत्तर कालीन कवियों ने द्वितीय शैली को अपनी काव्य रचना के लिए चुना। प्रारम्भिक युग में साहित्य निर्माण में स्वाभाविकता, सरलता एवं प्रसाद गुण का समन्वय रहता था। इस युग के आदि कवि 'वाल्मीकि' हैं। वाल्मीकि ने इस रसमयी शैली को जन्म दिया और कालिदास ने इसे आगे बढ़ाया। पूर्व मध्यकाल में साहित्य रचना में कृत्रिमता का प्रवेश हुआ लोग तो स्वाभाविकता और सरलता से दूर हटने लगे। पांडित्य प्रदर्शन और अलंकृत शैली में साहित्य सृजन होने लगा। इस शैली के जन्मदाता कवि भारवि हैं किन्तु इस शैली का समुचित विकास माघ के द्वारा हुआ है। मध्य युग की सभी रचनाएँ प्राय: इस शैली में हुयी है। माघ इस युग के प्रतिनिधि कवि कहे जाते हैं।[५९]

माघ का व्यक्तित्व कवि और पण्डित का अपूर्व समन्वय है। पाण्डित्व में माघ निश्चित रुप से कालिदास, भारवि, भट्टि या श्रीहर्ष से अधिक दिखायी पड़ते हैं।[६०] आधुनिक विद्वानों का मानना है कि माघ के साथ आलोचकों की सदा एकाङ्गी दृष्टि रही है। पुराने पण्डितों ने माघ की इतनी प्रशंसा की कि उन्होंने 'माघे सन्ति त्रयो गुणा:" की घोषणा करके उन्हें उच्चतम कवि सिद्ध किया। वहीं नये आलोचकों ने उनके काव्य को भाव विहीन सरसता रहित घोषित किया। इस प्रकार माघ का मूल्यांकन ठीक से नहीं हो सका था तो उनको अत्यधिक प्रशंसा हुआ या फिर अत्यधिक आलोचना। माघ कलावादी कवि है। वे शब्द तथा अर्थ दोनों के सौंदर्य पर ध्यान देते हैं तथा सच्चे कवि की कसौटी इसे ही मानते हैं।[६१]

माघ कवि पण्डित थे। उनका पाण्डित्य अगाध था। वह आज भी कवि के रुप में इतने प्रख्यात नहीं है जितने पण्डित के रुप में। राजस्थान में का प्रयोग 'माघ जी' 'पण्डित जी' का प्रयोग 'माघ कवि' अथवा 'कवि माघ' केप्रयोग से अधिक व्यापक है। "काव्येषु माघ: कवि कालिदास:" यह उक्ति साहित्यज्ञों में प्रसिद्ध है। शास्त्र युक्त बातों से कवितब्द्ध किया हुआ कथानक काव्य कहलाता है। काव्यमें एक ओर लेखक कवि पद्धति को सुव्यवस्थित रुप में रखता है तो दूसरी ओर उसे पुराण, श्रुति, वेद, वेदांग, व्याकरण, ज्योतिष आदि के ज्ञान से उसे परिपुष्ट करता है। इस परिभाषा के अनुसार जितने भी काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं उन सबमें असली पाण्डित्य का प्रदर्शन केवल माघ काव्य में है। माघ की अन्त: प्रकृति कवित्य सम्पन्न है, किन्तु माघ का कवि रुढ़ियों का दास है। यह काव्य मार्ग की दासता उनके भाव पक्ष को कुचल देती है।[६२]

माघ के सम्बन्ध में इसी निष्कर्ष पर पहुँचना ठीक होगा कि वह न केवल एक सरस कवि थे किन्तु अनेक शास्त्रों के सर्वमान्य विद्वान भी थे। ऐसी विद्वता दूसरे संस्कृत कवियों में देखने को नहीं मिलती है। भारवि में राजनीतिक दक्षता और श्रीहर्ष में दार्शनिक पटुता अवश्य है किन्तु माघ अनेक शास्त्रों में पारंगत होने से इनसे कहीं आगे बढ़ जाते हैं। क्या हिन्दू दर्शन, क्या बौद्ध दर्शन, क्या नाट्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, व्याकरण शास्त्र संगीत, काव्य, आयुर्वेद अश्वविद्या, गजविद्या, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान अथवा क्या पुराण, ज्योतिष, स्मृति वेद, वेदांग आदि शास्त्र इन सबका उन्हें उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त था। माघ ने अपने सम्पूर्ण ज्ञान को कविता देवी के चरणों में अर्पित कर दिया था। इस समर्पण का जो परिणाम निकला वह एक महाकाव्य के रुप में सहृदय समाज के समक्ष प्रस्तुत हो गया।

उन्होंने पाण्डित्य को कवित्व का अंग बनाया, कवत्वि को पांडित्य का नहीं। इससे यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि कवित्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने एक बड़ी साधना की। वह कवि प्रथम थे और आचार्य बाद में।

महाकाव्यत्व :

संस्कृत साहित्य का इतिहास हजारों वर्ष प्राचीन है। इसमें तीन काव्य संग्रह वृहत्त्रयी के नाम से विख्यात है। ये है भारवि कृत किरातुर्जनीय, माघ कृत शिशुपालवध तथा श्री हर्ष कृत नैषधीयचरित। इन तीनों में भी माघ कृत शिशुपालवध का विशिष्ट स्थान है। संस्कृत साहित्य के मनीषियों ने महाकाव्यों के लक्षणों को दो भागों में विभाजित किया है, मुख्य तथा गौण। मुख्य लक्षण तीन है कथावस्तु, नेता तथा रस। महाकाव्य की कथावस्तु का आधार महाभारतादि के या किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के चरित्र का वर्णन होता है। इसका नायक कोई एक देव या उत्तम कुल में उत्पन्न धीरोदात्त आदि गुणों से सम्पन्न कोई क्षत्रिय या एक कुल में उत्पन्न अनेक राजाओं के चरित्र का वर्णन किया जाता है। श्रृंगार, वीर तथा शान्त रस में से कोई एक रस प्रधान होता है। अन्य रस गौण होते है। गौण लक्षण जो कि नियम निर्वाह के लिए है, तथा मुख्यत: तकनीक से संबंधित है संख्या में अनेक है। जैसे (१) ग्रन्थ के प्रारम्भ में आर्शीवाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु का निर्देश होना चाहिए, (२) अध्याय अथवा परिच्छेद 'सर्ग' नाम से अभिहित होने चाहिए, (३) न तो बड़े और न ही बहुत छोटे कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए, (४) सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा का संकेत रहता है, (५) प्रत्येक सर्ग में एक ही प्रकार का छन्द रहता है परन्तु अन्तिम दो या तीन पद्य भिन्न-भिन्न छन्दों में रचे जाने चाहिए, (६) संध्या सूर्य, चन्द्र, रात्रि, चाँदनी, ऋतु, दिन, प्रात:, मध्यान्ह आखेट, पर्वत, संयोग, वियोग, यात्रा, विवाह, वन विहार तथा जलक्रीड़ा आदि का विषद वर्णन किया जाता

है, (७) पुरुषार्थ चतुष्टय में से कोई एक फल लक्ष्य होता है तथा असत्य पर सत्य की तथा अधर्म पर धर्म की विजय स्थापित होनी चाहिए।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर शिशुपालवध का मूल्यांकन किया जाता है तो हम पाते हैं कि माघ काव्य इस महाकाव्यत्व की कसौटी पर खरा उतरता है। इस महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत से ली गयी है। चेदि नरेश शिशुपाल का श्री कृष्ण द्वारा वध किया जाना इस महाकाव्य की वास्तविक कथावस्तु है। इस महाकाव्य के नायक सर्वगुणोसम्पन्न भगवान श्री कृष्ण स्वयं है। शिशुपालवध महाकाव्य में अंङ्गी रस वीर है तथा अन्य रस गौण है। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य के तीन मुख्य लक्षणों की कसौटी पर शिशुपालवध खरा उतरता है। गौण लक्षणों को देखें तो पता चलता है कि पूरा महाकाव्य २० सर्गों में विभाजित है, प्रत्येक सर्ग की रचना एक ही छन्द में है और अन्त में दूसरे छन्द का प्रयोग किया गया है। मंङ्गलाचरण में ही वस्तु का निर्देश हो जाता है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में आने वाले सर्ग की विषय वस्तु का संकेत भी हो जाता है। युद्ध यात्रा, द्वारिकापुरी, समुद्र, रैवतक, पर्वत, सेना, छः ऋतु, जलक्रीड़ा, संध्या, चन्द्रोदय, प्रभात, सेना प्रयाण, यज्ञ सभा तथा युद्ध आदि का विस्तार से वर्णन १६५० श्लोकों में किया गया है। अन्त में शिशुपाल का भगवान श्री कृष्ण द्वारा वध अधर्म पर धर्म की जीत स्थापित करता है।

इस प्रकार संस्कृत मनीषियों द्वारा स्थापित महाकाव्य के मुख्य व गौण लक्षणों की कसौटी पर माघ कृत शिशुपालवध खरा उतरता है।

महाकवि माघ के विषय में अनेक उक्तियां प्रचलित है। उदाहरणार्थ, उपमा कालिदासस्य........, मेघे माघे ......, मुरारिपद-चिन्ता चेत्तदा माघेरतिं कुरु ...., माघेन विघ्नहोत्साहा ......। इन उक्तियाँ पर विचार करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा।

संस्कृत विद्वानों के मध्य प्रशस्ति श्लोक के रुपमें निम्न श्लोक बहुत समय से लोकप्रिय रहा है—

> उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम।
> दण्डिन (नैषधीय) पद लालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

इस श्लोक के रचयिता तथा उसके उद्देश्य के विषय में निश्चित रुप से कुछ भी कहना कठिन है परन्तु श्लोक का भावार्थ कुछ इस प्रकार है कि कालिदास की श्रेष्ठता उपमा में, भारवि की अर्थगौरव में, दण्डी की पद लालित्य में तथा माघ कवि में ये तीनों गुण ही विद्यमान है। श्लोक के पढ़ने से ऐसा प्रतीत

होता है कि माघ कवि इन तीनों कवियों से श्रेष्ठ है।

कालिदास 'उपमा' के लिए विख्यात है परन्तु, माघ कृत शिशुपालवध में भी 'उपमा' का सुन्दर प्रयोग है। निम्न श्लोक में शास्त्रीय उपमा अत्यधिक रमणीय है।

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्द विद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा: ॥
(शिशुपालवध II, ११२)

जिस प्रकार पस्पश (पस्पशाह्निक महाभाष्य) के बिना व्याकरण विधा नहीं सुशोभित होती, उसी प्रकार 'स्पश' (गुप्तचर) के बिना राजनीति नहीं सुशोभित होती है। इसी प्रकार मेघ के समान श्वेत वर्ण मुक्तामाला से अलंकृत श्रीकृष्ण के श्याम वर्णीय (नील वर्ण) वक्ष स्थंल की तुलना आकाश गंगा से देते हुए कवि ने अपूर्व कौशल प्रदर्शित किया है–

उभौ यदि व्यौम्नि पृथक्प्रवाहा वकाशगंङ्गापयसः पतेताम्।
तेनीपमीयेत तमालनीलमामुक्त मुक्तालत मस्य वक्षः ॥
(शिशुपालवध III ८)

कुछ आलोचकों का कहना है कि माघ की उपमाओं में स्वाभाविकता नहीं है, केवल कल्पना की उड़ान है। अतः उनकी उपमाएँ कालिदास की उपमाओं की बराबरी नहीं कर सकती। परन्तु यह आलोचना उचित नहीं है। सामान्यतः माघ की उपमाओं में सरसता, स्वाभाविकता और वर्णन सौष्ठव है, कहीं-कहीं अलंकृत शैली व बहुज्ञानी होने के प्रभाव के कारण कुछ आलोचकों अस्वाभाविकता प्रतीत हो सकती है जो कि युग प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में उचित नहीं हैं

अर्थगौरव के लिए भारवि प्रसिद्ध है परन्तु माघ में अर्थगौरव भी कम नहीं है। द्वितीय सर्ग में बलराम श्रीकृष्ण से कह रहे हैं कि अनियन्त्रित बल दूसरा है और शास्त्र बल दूसरा है। दोनों को एक स्थान पर नहीं लाया जा सकता। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार की स्थिति एक साथ सम्भव नहीं है।

अन्यदुच्छृङ्खलं सत्त्वमन्यच्छास्त्र नियन्त्रितम्।
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिर्य्योः कुतः ॥
(शिशुपालवध II, ६२)

कुछ आलोचक 'दण्डिन पदलालित्यं' के आधार दण्डी का पदलालित्य श्रेष्ठ मानते हैं जब कुछ अन्य आलोचक 'नैषधे पदलालित्यं' के कथनानुसार श्री हर्ष को पद लालित्य के लिए प्रसिद्ध मानते है। महाकवि माघ में भी पदलालित्य कम नहीं है। प्रत्येक पद में लालित्य भरा पड़ा है। महाकवि माघ के

निम्नलिखित श्लोक के पदलालित्य पर प्रसन्न होकर महाराज भोज द्वारा १ लाख स्वर्ण मुद्राएँ देने की कथा प्रचलित है।

कुमुदवनमतश्रि श्रीमदभोजखण्डं त्यजति मुदमुलूक: प्रीतिमांश्चक्रवाक: ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरुतं हतविधिल सितानां ही विचित्रों विपाक:
(शिशुपालवध XI, ६४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपमा, अर्थ गौरव तथा पदलालित्य का माघ कृत शिशुपालवध में अद्‌भुत सामञ्जस्य है। इसी सामञ्जस्य ने सुधी आलोचकों को यह कहने पर विवश किया है कि "माघे सन्ति त्रयो गुणा:"।

संस्कृत महाकाव्यों में शिशुपालवध का उत्कृष्ट स्थान है। अलंकार, अर्थ भाव, ज्ञान गरिमा, मनोहर पदों का उपयोग तथा नवीन शब्दों का प्रयोग आदि सभी दृष्टियों से महाकाव्य श्रेष्ठ हैं माघ काव्य की विशेषता है कि इसमें प्राय: सभी प्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह नवीन शब्दों का भण्डार है। ऐसा लगता है कि नवम् सर्ग के आते-आते उन्होंने पर्याप्त शब्दावली का संग्रह कर दिया कि पाठक को यह ज्ञान होने लगता है कि अब कोई नया शब्द शेष नहीं है। इसीलिए संस्कृत साहित्य में उनके सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचलित है —

'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'

महाकवि माघ का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। परन्तु मात्र इतने से ही शिशुपालवध जैसे उत्कृष्ट महाकाव्य की रचना संभव नहीं है। इसके लिए कवि हृदय के साथ-साथ उच्च कोटि की विद्वत्ता होना भी आवश्यक है। माघ जैसा विद्वान संस्कृत साहित्य में शायद ही कोई हो। उनके ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वह न सिर्फ संस्कृत भाषा व साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे अपितु वेद, पुराण, धर्म, दर्शन, राजनीति, व्याकरण, संगीत शास्त्र, युद्ध विद्या आदि के भी ज्ञाता थे। उनकी प्रसिद्धि का सर्वप्रमुख कारण उनकी विद्वत्ता है जिसका महाकाव्य में पग-पग पर दर्शन होता है। उनके संबंध में अनेकों उक्तियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि एक समय किसी वयोवृद्ध महा विद्वान से किसी ने पूछा कि आपने किन-किन ग्रन्थों का अध्ययन किया है जिससे आप इतने बुद्धिमान हो गये हैं ? वृद्ध महा विद्वान ने कहा 'मेघे माघे गतं वयं' अर्थात् मेघदूत और माघकाव्य (शिशुपालवध) में मैंने अपनी सारी आयु समाप्त कर दी है। इसके अतिरिक्त उनके संबंध में अन्य अनेक उक्तियाँ भी प्रचलित है। यथा—

१. मुरारि पद चिन्तायां तदा माघे रतिं कुरु।

मुरारिपद चिन्तायां तदा माऽवे रतिं कुरु ॥

२. कृत्स्न प्रबोध कृद्वाणी भारवेरिव भारवे: ।

माघेनेव च माघेन कम्प्य: कस्य न जायते ॥ (राजशेखर)

३. माघेन विध्नितोत्साहा नोत्सहत्ते पद क्रमे ।

स्मरन्तो भारवेरेव कवय: कपयो यथा ॥ (धनपाल)

४. पुस्पेषु चम्पा नगरीषु काञ्ची,

रामासु रम्भा पुरुषेषु विष्णु: ।

नदीषु गङ्गा नृपरेषु राम:,

काव्येषु माघ: कवि कालिदास: ॥

संदर्भ

१. नाट्यशास्त्र भरत मुनि, १०९-१२४

२. माघ कृत किसी अन्य ग्रन्थ की रचना नहीं मिलती है, किन्तु १४वीं शताब्दी के वल्लभदेव–जो माघ की 'सन्देहविषौषधि' व्याख्या करने वाले वल्लभदेव से भिन्न हैं–ने 'सुभाषितावलि' में दो श्लोकों को माघ की रचना कहते हुए उर्द्धत किया है। इसी प्रकार 'औचित्य विचार चर्चा' नाम की अपनी कृति में क्षेमेन्द्र ने तत्वोंचित्य के उदाहरण स्वरुप एक श्लोक को माघ कृत कहकर उद्धृत किया है।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० १९९

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० १९९

५. शिशुपालवध, माघ, कविवंश वर्णन

६. प्रभावक चरित, श्री प्रभाचन्द, १४/५-१०

७. ब्रह्मगुप्त सिद्धात, ब्रह्मगप्त

८. भोज प्रबन्ध, बल्लाल

९. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० २००

१० दि इण्डियन एन्टिक्वेरी, खण्ड ४६, डी० सी० भट्टाचार्य, पृ० १९१-९२

११. दि इण्डियन एन्टिक्वेरी, खण्ड ४६, डी० सी० भट्टाचार्य, पृ० १९१-९२

१२. संस्कृत साहित्य का इतिहास-डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० २००-२०१

१९. महाकवि माघ, उनका जीवन तथा कृतियाँ–डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० २१९

१४ श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध ६९-९४ अध्याय तक

१५ महाभारत, सभापर्व ३३-४५ सर्ग तक

१६ विष्णु पुराण १४/४४-५३, १५/१-१५

१७ पद्म पुराण २७९/१-२३

१८ ब्रह्म वैवर्त पुराण, ११३/२३-३७

१९. शिशुपालवधम्, मणिप्रभा हिन्दी टीका, पं० हरगोविन्द शास्त्री, पृ० १४-१६

२०. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० २०१

२१. शिशुपालवधम्, श्री पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, पृ० १४

२२ श्रीमद्भागवत, दूसरा स्कन्ध, ६९-७४ अध्याय तक

२३ महाभारत सभापर्व, ३३-४५ वे सर्ग तक

२४. विष्णु पुराण १४/४४-५३, १५/१-१५, ब्रह्मवैवर्त पुराण ११३/२३-३७

२५. शिशुपालवध १/४१

२६. शिशुपालवध– द्वितीय सर्ग

२७. शिशुपालवध–तृतीय सर्ग से तेरहवें सर्ग तक

२८. महाभारत सभापर्व–१३/४२-४३

२९ शिशुपालवध– १३/१६

३०. शिशुपालवध– १४/१६

३१. शिशुपालवध– १४/१८-५२

३२. शिशुपालवध– १४/३४, ३५, ४५

३३. शिशुपालवध– १४/५५

३४. शिशुपालवध– १४/५८

३५ हिस्टी ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर– एम० कृष्णयाचार्य, पृ० १५७

३६. शिशुपालवधम्, हिन्दी टीकाकार श्री पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, पृ० २०

३७. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० २०७

३८. इसका प्रकाशन चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी द्वारा किया गया है।

३९. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ० बल्देव उपाध्याय, पृ० २०७

४०. शिशुपालवधम्, डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, पृ० ३८

४१. संस्कृत कवि दर्शन, डॉ० भोला शंकर व्यास, पृ० १४१

४२ महाकवि माघ उनका जीवन तथा कृतियाँ, डॉ० मनमोहन लाल जगन्नाथ शर्मा, पृ० ३९९

४३. शिशुपालवध ११/४१

४४. शिशुपालवध १४/२१

४५ शिशुपालवध १४/१९

४६. शिशुपालवध ४/५५

४७. शिशुपालवध १४/२०

४८ शिशुपालवध १४/६४

४९. शिशुपालवध १/३२

५०. शिशुपालवध १९/११२

५१ शिशुपालवध २/२८

५२. शिशुपालवध, 'मणिप्रभा' हिन्दी टीका, श्री पण्डित हर गोविन्द शास्त्री, पृ० ९४३-९५५

५३. शिशुपालवध—२/२६, २८, ३४, ५७, ८१, ८२

५४ शिशुपालवध– २०/४४

५५ शिशुपालवध– १/१०

५६. शिशुपालवध– २/५४

५७ शिशुपालवध– १०/१५, १९/१०३

५८. शिशुपालवध—२/८४, २/९३, २/९४, ३/२२

५९. शिशुपालवधम्–(संस्कृत हिन्दी टीका, डॉ० पारसनाथ द्विवेदी, पृ० २८

६०. संस्कृत कवि दर्शन–डॉ० भोला शंकर व्यास, पृ० १४१

६१. शिशुपालवध २/८६

६२. संस्कृत कवि दर्शन–डॉ० भोला शंकर व्यास, पृ० १४१

अध्याय - तृतीय

सामाजिक जीवन

हिन्दू समाज का मूल आधार वर्ण और जाति व्यवस्थायें रहीं है । पाश्चात्य संस्कृति में धर्म और राज्य के बीच प्राय: संघर्ष होता रहा, लेकिन प्राचीन भारत में ऐसे मूल्यों का निर्धारण किया गया जिनके आधार पर भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों में सन्तुलन बना रहे । वर्ण व्यवस्था इन शाश्वत मूल्यों में से एक थी । माघ युग के प्रारम्भ तक हिन्दू समाज का विभाजन चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र (जिनका आधार गुण और कर्म[१] माना गया था) तक ही सीमित नहीं रह गया था । गुप्तोत्तर काल तक आते-आते भारतीय समाज अनेक जातियों और उपजातियों में विभक्त हो गया था । समाज में जातियों और उपजातियों की बहुलता इस युग की सामाजिक विशेषता कही जा सकती है । यद्यपि वर्ण व्यवस्था को सैद्धान्तिक रूप में अभी भी मान्यता मिली हुयी थी । इन जातियों तथा उपजातियों की उत्पत्ति में अनेक कारणों ने अपना योगदान दिया, लेकिन सर्वप्रमुख कारण था जीविकोपार्जन की विधि । विभिन्न उद्योगों तथा व्यवसायों से सम्बन्धित वर्गों ने कालान्तर में विभिन्न जातियों का रूप धारण कर लिया । इसके अतिरिक्त भारत में विदेशियों के आगमन, अन्तर्जातीय विवाहों, आदिवासियों और सीमावर्ती जनों का आर्यीकरण आदि अन्य कारणों से भी हिन्दू समाज का विभिन्न जातियों व उपजातियों में विभाजन हुआ ।[२]

वर्ण अवधारणा मूलत: सांस्कृतिक है । यह वंश संस्कृति, चरित्र तथा व्यवसाय पर आधारित है । इसमें व्यक्ति की नैतिक तथा बौद्धिक क्षमता का समोश होता है । स्मृतिकारों ने वर्णों के सामाजिक कर्तव्यों पर बल दिया है । इसके विपरीत जाति व्यवस्था जन्म और आनुवंशिकता पर बल देती है । इसमें कर्तव्यों के पालन पर जोर न देकर विशेषाधिकारों को महत्व दिया जाता है ।[३] वर्ण व्यवस्था के क्रम में ब्राह्मण वर्ग सर्वोच्च स्थान पर था । उसके वर्णधर्म के अन्तर्गत ये कर्म थे—वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना और यज्ञ करवाना, दान देना तथा दान लेना ।[४] ब्राह्मण से त्याग, कर्तव्य परायणता साधना और बौद्धिक श्रेष्ठता

की अपेक्षा की जाती थी। वह राज्य और समाज के हितार्थ धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करता था। आपाद्काल में ब्राह्मण वर्णेत्तर कर्म कर सकता था। यदि उसे अपने परिवार के पालन पोषण करने में अध्ययन, यज्ञ तथा दान प्राप्ति द्वारा पर्याप्त धन सामग्री नहीं मिलती थी तो वह क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ग के कर्म को अपना सकता था। कौटिल्य ने ब्राह्मण सेना का उल्लेख किया है।[५]

समाज और राज्य की रक्षा का भार सामान्यतः क्षत्रिय वर्ण पर था। उनका वर्णगत गुण शासन और सैन्य कर्म था। चतुर्वर्णों का संरक्षण करना उनका नैतिक दायित्व तथा कर्तव्य था। उन्हें अध्ययन और अध्यापन का भी अधिकार था। ब्राह्मण वर्ण के बाद क्षत्रिय वर्ण की स्थित द्वितीय स्थान पर थी। गौतम ने इस वर्ण को तीन वेदों पर आधारित बताया है।[६] कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में क्षत्रिय के प्रमुख कर्मों में अध्ययन, यज्ञ करना, शस्त्र धारण करना और भूतरक्षण की गणना की है।[७] न्याय की स्थापना करना तथा अधर्मियों को दण्ड देना भी क्षत्रिय के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित था। वे समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति और उसे संरक्षण प्रदान करने के लिए शासन करते थे।मनु ने यह व्यवस्था दी है कि क्षत्रिय प्रजा की रक्षा करे, दान दे, वेद पढ़े और विषयों में आसक्त न हो।[८] आपातकाल में क्षत्रिय अपने से नीचे वर्ण के कर्म अपना सकते थे। मनु के अनुसार वे वैश्य कर्म अपना सकते थे। व्यापार में उनके लिए रस, तिल, नमक, पत्थर, पशु और मनुष्यों का क्रम विक्रय वर्जित था।[९]

वैश्य वर्ण अपनी उदर की पूर्ति के साथ-साथ समाज की अर्थव्यवस्था एवं भरण पोषण का भार वहन करते थे। समाज के सुचारु संचालन हेतु आर्थिक सुदृढ़ता प्रदान करना वैश्य वर्ण का प्रमुख एवं पुनीत कर्तव्य माना गया है। कृषि कर्म, पशुपालन, व्यापार तथा उद्योग धन्धे आदि वैश्य वर्ण के कार्य थे। गौतम तथा कौटिल्य के अनुसार अध्ययन भजन और दान वैश्यों का परम कर्तव्य था।[१०] कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य उनके स्वाभाविक कर्म थे।[११] पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना तथा कृषि कर्म वैश्यों के कर्तव्य थे।[१२]

यद्यपि समाज की आर्थिक स्थिति का आधार वैश्य वर्ण ही था, लेकिन उन्हें सामाजिक स्तरीकरण में वह प्रतिष्ठा प्राप्त न थी तथा उनका स्थान ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्ण के उपरान्त तीसरे स्थान पर ही था। आपातकाल में वैश्य अपनी जीविका का निर्वाह करने के लिए दूसरे कर्म कर सकता था। गाय, ब्राह्मण

तथा अपने वर्ण की रक्षा हेतु वह हथियार उठा सकता था। मनु के अनुसार वह अपने वर्ग के लिए निषिद्ध कर्मों का त्याग करते हुए, वह शूद्र वृत्ति को अपना सकता था।[१३]

समाज में शूद्र वर्ण की स्थिति निम्नतम थी। शूद्र पतित तथा हेय माने जाते थे। अधिकार और प्रतिष्ठा से वंचित शूद्रों की तुलना पशुओं से की गयी थी।[१४] शूद्र समाज के चरण माने जाते थे। जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर का भारत पैरों पर होता है, उसी प्रकार शूद्र वर्ण पर समाज की सेवा का पूरा-पूरा भार था। स्मृतिकारों के अनुसार तीनों वर्णों की सेवा करना यही एक कर्म ईश्वर ने शूद्रों के निमित्त बनाया है। शूद्र पूर्णरूप से द्विजों की दया पर निर्भर थे। वे अन्य तीन वर्णों द्वारा परिव्यक्त वस्तुओं का उपयोग करते थे।[१५] सेवा के बदले में उन्हें जूठा अन्न, पुराने वस्त्र, धान के पुआल तथा पुराने बर्तन तथा खाट आदि दिये जाते थे।[१६] आपद काल में शूद्र जो कार्य कर सकते थे वे उनके स्वधर्म से अच्छे थे।

उपरोक्त वर्णित वर्णव्यवस्था में इतिहास के विभिन्न युगों में अनेक परिवर्तन हुए, तथा सिद्धान्ततः वर्णो की स्थिति अपरिवर्तित रहने पर भी अनेक ऐतिहासिक कारणों से अनेक निम्न जातियाँ सामाजिक सीढ़ी में ऊपर चढ़ी तथा अनेक जातियाँ अपने उच्च आसन से नीचे भी उतरी।

शिशुपालवध महाकाव्य की रचना में महाकवि माघ का प्रमुख उद्देश्य भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति प्रदर्शन है। काव्य का नाम तो शिशुपालवध है लेकिन इसमें भगवान श्रीकृष्ण की श्रेष्ठतर उपलब्धियों का ही वर्णन है। इस महाकाव्य की रचना में महाकवि का उद्देश्य वर्ण धर्म का वर्णन करना नहीं था।इसमें केवल शासन और दान के प्रसंग में ही वर्णों की चर्चा की गयी है।[१७] ब्राह्मणों का समाज में आदर व सम्मान था। वे धर्म कर्म, शिक्षा-दीक्षा शासन आदि में समाज का पथ प्रदर्शन करते थे। हमारे अध्ययन काल में समाज में चार वर्णों का उल्लेख मात्र औपचारिकता रह गया था। वस्तुतः प्रत्येक वर्ण, जातियों व उपजातियों के रूप में अनेक भेद व उपभेद उत्पन्न हो गये थे जिनकी समाज में समान प्रतिष्ठा नहीं थी। यह प्रवृत्ति सूत्रकाल से ही दृष्टिगोचर होने लगी थी। भारत के उत्तर व दक्षिण में रहने वाले ब्राह्मणों के रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि में अंतर था। ब्रह्मावर्त के ब्राह्मण बंगु, अंग और औडू में निवास करने वाले ब्राह्मणों से श्रेष्ठ समझे जाते थे। पूर्वी क्षेत्र में रहने वाले ब्राह्मणों को म्लेच्छ तक कह दिया जाता था। इसी प्रकार अन्तर्वेदी के ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों से श्रेष्ठतर समझे जाते थे। राजस्थान में श्री माली ब्राह्मण

और गुजरात में नागर ब्राह्मणों का समाज के अन्य ब्राह्मणों से अधिक सम्मान था। हमारे अध्ययन काल में श्रीमाल या भीनमाल धर्म और संस्कृति का केन्द्र था और यहाँ के विद्वान ब्राह्मण अपने पाण्डित्य व विशुद्ध आचार विचार के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध थे।[१८] शिशुपालवध के रचयिता महाकवि माघ स्वयं श्रीमाल नामक नगर के निवासी थे। कान्हणदेव प्रबंध का लेखक पद्यमनाभ जो स्वयं नागर ब्राह्मण था श्रीमाली ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा करता है।[१९] इसी प्रकार वि० सं० ९८२ के पुष्कर अभिलेख में ब्राह्मण की पुष्कर या पुष्करणा जाति की जानकारी होती है। इनका खान-पान, रहन-सहन और आचार-विचार अन्य ब्राह्मणों से भिन्न थे।[२०] ब्राह्मणों का एक अन्य वर्ग भोजक या मग कहलाता था। यद्यपि वे मूलतः विदेशी थे फिर भी कर्म आचार-विचार व धर्म के कारण इनकी गिनती ब्राह्मणों में की जाती थी। इनका मूल व्यवसाय मुख्यतः ज्योतिष था।[२१]

विचाराधीन काल में राजस्थान के पड़ोसी प्रदेशों से ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए है जिनसे ब्राह्मणों की आवस्थिक पुरोहित, द्विवेदी, त्रिवेदी, मिश्र, दीक्षित, पाठक आदि शाखाओं का बोध होता है। राजस्थान में प्राप्त अभिलेखों में अनेक स्थानों पर ब्राह्मणों के नामों के पहले पण्डित, ठक्कर, पुरोहित, भट्ट आदि सम्मानसूचक शब्दों का उल्लेख मिलता है। ये उपनाम ब्राह्मणों के कार्य, वास स्थान तथा अन्य विशेषताओं के कारण बने हुए प्रतीत होते हैं।[२२] कालान्तर में जाति-भेद क्रमशः बढ़ता गया। इसके बढ़ने में दो-तीन अन्य कारणों ने भी बहुत कुछ सहायता दी। जैसे—भोजन में भेद हो जाना। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न रीतिरिवाजों और विचारों के कारण भी कई भेद पैदा हो गए। दार्शनिक विचारों में मतभेद होने के कारण भी भेद बढ़े। इस युग में अध्यापक यजमानी तथा प्रतिग्रह सामान्यतः ब्राह्मणों की जीविका के मुख्य साधन थे। ब्राह्मण राज्य की प्रशस्तियों व अभिलेखों के लेखक तथा उत्कीर्णक भी होते थे। वि० सं० ६९३ के कसवां (सिरोही) से प्राप्त अभिलेख का लेखक ब्राह्मण शिवगुप्त था।[२३] वि० सं० १००३ के प्रतापगढ़ अभिलेख का लेखक पुरोहित त्रिविक्रम नाथ था।[२४] परमार शासक पूर्णपाल के वि० सं० १०९९ के अभिलेख का रचयिता ब्राह्मण हरि का पुत्र मार्त्त सामन्त था।[२५]

अपेक्षाकृत कम पढ़े लिखे ब्राह्मण अपनी जीविका स्वास्तिवाचन अथवा मंदिरों में पूजा अराधना करके अर्जित करते थे। स्पष्टतः सभी ब्राह्मण बुद्धिमान अच्छी स्मृति वाले एवं धैर्यशील नहीं होते थे। अतः

बहुत से ब्राह्मण जीवका के अन्य साधन भी अपनाने थे। पूर्व मध्य और मध्यकाल में ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय तथा वैश्य वृत्तियों के पालन करने के उदाहरण मिलते है। कुछ विद्वानों का मत है कि गुहिल, मण्डौर के प्रतिहार, चाहमान और परिहार प्रारम्भ में ब्राह्मण थे। कालान्तर में क्षत्रिय धर्म पालने करने पर वे क्षत्रिय कहलाए।[२६] ब्राह्मण राजकीय नौकरियों में भी लगे थे। परमारो के शासनकाल में सन्धि विग्रहिक और दूतक के पदो पर प्राय: ब्राह्मणों की नियुक्ति होती थी। परमार देव पाल का सन्धि विग्रहिक महापण्डित विल्हण था।[२७] स्वयं महाकवि माघ के जीवन वृत्त के बारे में वंश वर्णनात्मक श्लोकों के अनुसार माघ का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम दत्तक था तथा इनके पितामह सुप्रभुदेव राजा वर्मलात के मंत्री थे।[२८]

ब्राह्मणों की तरह क्षत्रियों का भी समाज में मुख्य स्थान था। सामान्य रूप में इनके अन्य प्रमुख कर्त्तव्य प्रजापालन दान, यज्ञ, अध्ययन आदि थे। साक्ष्यों से स्पष्ट है कि राज्य के शासक सेनापति और योद्धा प्राय: यही होते थे। ब्राह्मणों के साथ अधिक रहने से तथा शासन के कार्य में संलग्न रहने के कारण क्षत्रिय लोगों में विशेषत: राजकीय वर्ग में शिक्षा का स्तर बहुत उच्च कोटि का था। महाकवि माघ का लगभग समकालीन कन्नौज का राजा हर्षवर्धन साहित्य का प्रकाण्ड विद्वान था। इसके द्वारा रचित प्रियदर्शिका, नागानंद, रत्नावली ग्रंथ अत्यन्त उच्च कोटि की साहित्यिक कृति है।[२९] कन्नौज का राजा यशोवर्मन प्रकाण्ड विद्वान था।[३०] राजा भोज की विद्वता लोक प्रसिद्ध है, इसने वास्तुविद्या, व्याकरण, अलंकार, योगशास्त्र और ज्योतिष आदि विषयों पर कई उपयोगी और विद्वतापूर्ण निबंध लिखे। चौहान विग्रह राज (चतुर्थ) को लिखा हुआ हरकेली नाटक आज शिलाओं पर खुदा हुआ उपलब्ध है। इसी तरह कई अन्य राजाओं के भी ग्रंथ मिलते है। वर्ण व्यवस्था के विशुद्ध रूप में कायम न रहने तथा बहुत से क्षत्रियों के पास भूमि न रहने के कारण वे बेकार हो गए और उन्होंने भी ब्राह्मणों की तरह अन्य पेशे अपनाने शुरू कर दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि क्षत्रिय भी ऊँच-नीच श्रेणियों में बटते गए। ह्वेन सांग के समय तक सामान्यत: क्षत्रियों का जीवन सामान्यत: शुद्ध एवं अच्छा था। ह्वेनसांग ने उनकी प्रशंसा भी की।

परम्परागत रूप में वैश्यो के मुख्य कार्य पशुपालन, दान, यज्ञ, अध्ययन, व्यापार, ब्याज वृत्ति और कृषि थे। बौद्ध और जैनियों के प्रभाव में आकर वैश्यो ने कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों की तरफ ध्यान

दिया। ७वीं सदी के प्रारम्भ से ही वैश्यो का कृषि के सापेक्ष व्यापारी के रूप में अधिक उल्लेख मिलता है। ह्वेनसांग वैश्यो के विषय में लिखता है कि तीसरा वर्ण वैश्यो या व्यापारियों का है जो पदार्थों का विनिमय करके लाभ उठाता है तथा चौथा वर्ग शूद्रों या कृषको का है।[३१] वैश्यो द्वारा राजकार्य करने, राज्यमंत्री होने, सेनापति बनने और युद्धों में लड़ने के अनेक उदाहरण मिलते है। वैश्यो में जातिभेद उत्पन्न होने लगा था।

सामाजिक परिवर्तन तथा राजनीतिक अस्थिरता के कारण राजनीतिक क्षेत्र में वैश्य वर्ग के प्रभाव में वृद्धि भी हुई समाज की आर्थिक शक्ति के नियन्ता होने के कारण राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में उनका प्रभाव भी था गुप्त कालीन सम्राटों के साथ वैश्य वर्ण से सम्बन्धित अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है। यशोवर्धन, विष्णुवर्धन, पुष्पभूति, हर्ष जैसे राजाओं के साथ अनेक प्रान्तीय शासक, अधिकारियों को वैश्य वर्ण से सम्बन्धित किया जा सकता है जो गुप्त तथा दत्त उपाधि धारण करते थे।

वर्ण विभाजन में शूद्रों की स्थिति प्रारम्भ से ही निम्नतम थी व्यापार में वैश्य वर्ण की बढ़ती रुचि के कारण शूद्र कृषि की ओर उन्मुख हुए। युवान-च्वाँग कहता है कि शूद्र कृषक थे[३२] लेकिन उपलब्ध साक्ष्यों से लगता है कृषि कार्य में लगे शूद्र अधिक संख्या में नहीं थे। युवान च्वाँग मतिपुर के शूड़ राजा का उल्लेख करता है[३३] लेकिन पूर्वकाल की भाँति सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से वे अत्यधिक हीन थे उन्हें अपने से उच्च जातियों में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं था। पतंजलि ने शूद्रों की कई श्रेणियों का उल्लेख किया है रजक, तंतुवाय, तक्ष, अपस्कर[३४] कुछ शूद्र श्रेणियों के लिए धार्मिक क्रियाओं को करना वर्जित था तथा वे अत्यधिक अस्पृश्य माने जाते थे।

युवानच्वांग ने इस वर्ग की सामाजिक स्थिति तथा दैनिक व्यवहार का मार्मिक वर्णन किया है। सर्वाधिक निम्न स्थिति कसाई, मछुआ, जल्लाद, चाण्डाल नगर के बाहर निवास करते थे, नगर में प्रवेश करने पर अपने आगमन की सूचना देने के लिए आवाज करते थे, बाएँ चलते थे। बाणभट्ट[३५] भी इसी तरह का वर्णन करते हैं। मातंग कुल[३६] के लोग किसी को छू नहीं सकते थे। युवान-च्वाँग तथा बाण भट्ट ने विभिन्न वर्गों के सम्मिक्षण से बनी निम्नवर्गीय जातियों का उल्लेख किया है, जिनकी दशा अत्यधिक कष्टप्रद थी। ये नगर के बाहर रहते थे इन जातियों में कसाई, मछुए, मेहतर, जल्लाद, नट की गणना की

जाती थी। इनके घरों के बाहर संकेत सूचक चिन्ह लगे रहते थे। चाण्डाल, मृतक, श्वपाक ऐसी ही हीन दशा में जी रहे थे।[३७] बाणभट्ट ने हर्षचरित[३८] में मिश्रित जातियों से उत्पन्न लोगों की वर्णन किया है। इनमें चन्द्रसेन, भातृषेण जो शूद्रा काल से ब्राह्मण पिता से उत्पन्न पारशव वर्ग के अन्तर्गत थे। इन वर्गों में बन्दीजन, भाट, स्तावक, भिषक्, पुस्तक वाचक, स्वर्णकार, लेखक, चितकार, मिट्टी के खिलौने बनाने वाले, मृदंग बजाने वाले, बंशी बजाने वाले, गान्धर्व विद्या के उपाध्याय, संवाहिका (पैर दबाने वाली) नर्तक, आक्षिक, धूर्त, नट, नर्तकी, पाराशरी (सन्यासी) कथा वाचक, शैव, मन्त्रसाधक, यक्षों तथा राक्षसों को सिद्ध करने वाला, रसायन निर्माण विद्या का ज्ञाता, घटवाद्य बजाने वाला, ऐन्द्रजालिक, परिव्राजक आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

किन्तु समाज के विभिन्न वर्णों, जातियों, उपजातियों, मिश्रित जातियों, पेशेवर जातियों में विभाजन के बाद भी समरसता थी लोग अपने वर्ग-जाति के कर्तव्यों का पालन करते थे। वर्गगत विरोध नहीं था भाग्यवादिल के कारण लोग अपनी स्थिति से, व्यवसाय से सन्तुष्ट प्रतीत होते है क्योंकि किसी प्रकार के सामाजिक संघर्ष का वर्णन नहीं मिलता।

आश्रम व्यवस्था :

वर्ण व्यवस्था के समान आश्रम व्यवस्था का भी प्राचीन भारतीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। जिस प्रकार वर्ण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य समाज को संगठित करना था उसी प्रकार आश्रम व्यवस्था का नियोजन मनुष्य के जीवन को सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित करने के लिए किया गया था। वस्तुतः जीवन की वास्तविकता को ध्यान में रखकर ज्ञान, कर्तव्य और अध्यात्म के आधार पर मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में विभाजित किया गया। इसका सर्वोपरि और अन्तिम उद्देश्य मोक्ष माना गया।माघ युग तक आते-आते आश्रम व्यवस्था अपने मूल स्वरूप को खो चुकी थी तथा इसके विस्तृत उल्लेख अत्यन्त सीमित मिलते हैं। शिशुपालवध में मात्र एक श्लोक में चारों आश्रमों का उल्लेख मिलता है।[३९]

आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति 'श्रम' धातु से होती है जिसका तात्पर्य है वह स्थान जहाँ मनुष्य श्रम करता है। अर्थात प्रत्येक आश्रम में व्यक्ति अपने जीवन के आवश्यक कर्तव्यों को पूर० करता हुआ जीवन के

श्रेष्ठतर लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है ।ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम सामान्यतः 'द्विज' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णों के लिए ही थे । शूद्र वर्ण के लिए सिर्फ गृहथ आश्रम पालन करने की अनुमति थी ।

चार आश्रमों में प्रथम दो आश्रम शिक्षा व विवाह से जुड़े होने के कारण अभी भी प्रचलित थे । लेकिन अन्तिम दो आश्रम (वानप्रस्थ व सन्यास) ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यादातर आदर्श जीवन के रूप में ही देखे जाते थे तथा उनका यथार्थ रूप में पालन प्रारम्भिक दिनों में भी कम ही होता था ।[४०]

७वीं शती के अन्त आते-आते आश्रम व्यवस्था में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगते है । अनेक पुराने और धर्मग्रन्थों ने कलियुग में ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि सीमित करने पर बल दिया है ।[४१] संभवतः इसका प्रमुख कारण बाल विवाह का लोकप्रिय होना था । इसी पकार वानप्रस्थ आश्रम से भी बचने की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है ।[४२] शिशुपालवध के चौथे सर्ग के तेइसवें श्लोक में वानप्रस्थ के पालन में असमर्थ पुरुषों द्वारा आत्मघात करने का उल्लेख मिलता है ।[४३] शंकर और रामानुज दोनों ही ने ऐसे लोगों का उल्लेख किया है जो साधनों के अभाव में आश्रम व्यवस्था का पालन नहीं कर पाते थे ।[४४] बाण और यूआन च्वाँग दोनों ने ही परोक्ष रूप से योग्य शिक्षकों एवं उनके आश्रम आदि का वर्णन किया है ।[४५] बाण ने उपनयन संस्कार के उपरान्त वेदों और वेदांगों का अध्ययन किया था तथा अपनी शिक्षा पूर्ण करने पर ही उसने गृहथ जीवन में प्रवेश किया ।[४६]

इस प्रकार आश्रम व्यवस्था में गुप्तोत्तर काल तक आते-आते अनेक परिवर्तन होते रहे और इसकी व्यावहारिक उपयोगिता कम होती गयी । परन्तु एक आदर्श व्यवस्था के रूप में यह प्राचीन काल से ही लोगों को अपना जीवन सुव्यवस्थित बनाने की प्रेरणा देती रही ।

स्त्रियों का समाज में स्थान :

भारतीय ऐतिहासिक स्रोत भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा के विषय में विवादास्पद साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं । वे सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती थी । उन्हें सर्वशक्तिमान, विद्या, यश और सम्पत्ति का प्रतीक भी स्वीकार किया गया है । परन्तु भारतीय नारी को देवत्व प्रदान करने वाले कितने भी ग्रन्थों की रचना क्यों न की जाए, यह यथार्थ है कि प्रारम्भ से ही उनका जीवन स्वतंत्र

नहीं रहा और वे पिता, पति, पुत्र के नियंत्रण तथा निरीक्षण में रही । गुप्तोत्तर काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक अनेक विदुषी महिलाओं का उल्लेख साहित्यिक व अभिलेखिक साक्ष्यों में हुआ है । इस युग में चार्वक, बौद्ध, जैन तथा तन्त्र सम्प्रदायों आदि ने नारी को समाज में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के लिए गम्भीर प्रयास किये और यह वही युग है जब नारी का कला और साहित्य में सबसे अधिक श्रृंगारिक चित्रण हुआ तथा सती प्रथा, पर्दा प्रथा, वेश्यो वृत्ति आदि प्रवृतियों ने सामान्य नारी के अपमान और शोषण को एक नया आयाम दिया ।

यद्यपि स्त्रियों का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था तथापि पुत्री जन्म को अच्छा नहीं माना जाता था । ज्ञान पंचमी कथा[४७] तथा उपमितिभवप्रपंच कथा[४८] के उल्लेखानुसार अधिक संख्या में पुत्रियों का होना नरकवत था ।साधारणतया लोग पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखते थे । पुत्रजन्म पर उत्सव इत्यादि मनाए जाते थे और देवी -देवताओं की पूजा की जाती थी ।[४९]

इन विरोधाभाषी साक्ष्यों के आधार पर स्त्रियों की दशा के सम्बन्ध में सामान्य निष्कर्ष के त्रुटिपूर्ण होनेकी सम्भावना है । अत: स्त्रियों को सामान्यत: दो वर्गों में बँटकर उनका आलोचनात्मक अध्ययन किया जा सकता है । नगरीय और उच्च वर्ग की नारी की दशा ग्रामीण और निम्न वर्ग की नारी की दशा से भिन्न होना स्वाभाविक है । सामान्यत: ग्रामीण परिवारों में स्त्रियॉ अशिक्षित ही रहती थी । लटकमेलर नाटक से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं की अपने पति के परिप्रेक्ष्य में दयनीय स्थिति थी ।[५०] ग्रामीण कट्टर वातावरण के विपरीत नगर के उदार वातावरण में उच्च परिवारों में उत्पन्न कन्याओं की शिक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाता था । उनकी शिक्षा में संगीत, गायन वादन नृत्य और चित्रकला आदि सम्मिलित थे । उनको धार्मिक व दार्शनिक विवादों में भाग लेने का अवसर भी प्राप्त होता था । परन्तु विरलत: ।माघ के पूर्ववर्ती युग में कालिदास के अनुसार नर और नारी में भेद करना मूर्खों का काम है क्योंकि ईश्वर ने ही दोनों को बनाया है ।[५१] यह आदर और सम्मान छठी व सातवीं शती में भी महिलाओं को प्राप्त होता रहा है । वाराहमिहिर के अनुसार नारी न सिर्फ ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है बल्कि अर्थ और काम उसके ऊपर निर्भर है तथा जिससे मनुष्य को सुख व सन्तान की प्राप्ति होती है ।नारी लक्ष्मी का रूप होती है और उसकी आदर व सम्मान किया जाना चाहिए ।[५२] माघोन्तर काल की उच्च्व वर्गीय स्त्रियों में

कवि राजशेखर की पत्नी चाहमान राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी विदुषी थी तथा उच्च कोटि की काव्य रचना करती थी।[५३] चाहमान नरेश चन्दनराज की रानी रुद्रानी अथवा आत्मप्रभा एक योगिनी के रुप में प्रसिद्ध थी।[५४] राजशेखर ने अपने 'काव्य-मीमांसा' में शीला भट्टारिका नामक एक विदुषी का उल्लेख किया है। उसके द्वारा रचित कुछ श्लोक भी संस्कृत साहित्य में उल्लिखित मिलते है। अब, उसके नाम से स्पष्ट है कि वह कोई 'भट्टारिका' अर्थात् रानी थी और शारङ्गधर पद्धति में उसे भोजराज से क्रीडा करते हुए दर्शित किया गया है। इस संदर्भ में एस० एन० जोधावत का यह मत स्वीकार्य लगता है कि शीला भट्टारिका मिहिरभोज प्रतिहार की कोई रानी रही होगी। वह भोज परमार की पत्नी नहीं हो सकती क्योंकि भोज परमार के बहुत पहले राजशेखर उसका उल्लेख करता है।[५५] परन्तु साधारण परिवारों में स्त्रियाँ सामान्यत: अशिक्षित ही रहती थी। परन्तु कुछ ऐसी स्त्रियों के उदाहरण उपलब्ध है जो दर्शन, धर्म तथा साहित्य में रुचि रखती थी। योगेश्वरी नामक महिला उज्जैन के एक शैव आश्रम की प्रमुख थी।[५६] परमार शासक उपेन्द्रराज के दरबार में सीता नामक कवियित्री रहती थी, जिसने उस नरेश की प्रशंसा में अनेक गीत लिखे थे।[५७] परमार शासक उदयादित्य के झालरापाटन अभिलेख की लेखिका पण्डित हर्षुका थी।[५८]

सामाजिक संरचना का आधार किसी भी समाज मेंपरिवार ही होता है। परिवार के कुछ मूलभूत कार्य होते है और इनमें प्रमुख है मनुष्य की कामेच्छा को नियंत्रित व निर्धारित करना तथा साथ ही साथ संतति में विस्तार करना। विवाह का एक संस्था के रूप में उदय उन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हुआ है। पारम्परिक रूप से भारत में आठ प्रकार के विवाह प्रचलित थे। ये थे ब्रह्म, दैव, अर्ष, प्राजापत्य, आसुर गान्धर्व, राक्षस और पैषाच।[५९] उपयुक्त आठ प्रकार के विवाहों में प्रथम चार प्रकारके विवाहों की प्राचीन स्मृतिकारों ने प्रशंसा की है तथा अन्तिम चार प्रकार के विवाहों की सामान्यत: आलोचना की गयी है।धर्म शास्त्रीय नियम सामान्यत: दिशा निर्देश के रूप में ही रहते है और उनका अक्षरश: पालन न ही व्यावहारिक रूप से संभव था और न ही हुआ। पूर्व मध्य काल की राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों विशेपकर सामन्तों का उदय युद्धों की बढ़ती विभीषिका, जातियों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि, ने राक्षस, स्वयंबर आदि प्रकार के विवाहों को भी प्रोत्साहित किया। (विभिन्न वर्णों के लिए कौन सा विवाह प्रकार उचित है और कौन सा पकारअनुचित इस पर भी टीकाकारों और व्यवस्थाकारों में अत्यधिक मतभेद है।लक्ष्मीधर ने गृहस्थकाण्ड[६०] में इन मतभेदों में सामंजस्य बैठाने की कोशिश की है। 'ब्रह्म' और 'दैव'

प्रकार के विवाह केवल ब्राह्मणों के लिए उचित हैं इसी प्रकार 'राक्षस' और 'पैशाच' प्रकारके विवाह से इनको बचना चाहिए। यद्यपि मनुने :आसुर और 'पैशाच' प्रकार का विवाह सभी वर्णो के लिए वर्जित बताया है।[६१] परन्तु पूर्व मध्य काल की बढ़ती हुयी सामन्ती प्रवृत्तियों में इनको क्षत्रिय वर्ण के लिए उचित बताया गया है। इस युग में ऐसा प्रतीत होता है कि गन्धर्व व स्वयंबर प्रकार के विवाहों के मध्य का अन्तर समाप्त प्राय: हो गया था। तथा स्वयंबर एक राजा द्वारा अपनी लड़की हेतु वर ढूढ़ने के लिए राजसी आयोजन हुआ करता था तथा उसमें अनेक देशों के राजकुमार ही भाग ले पाते थे।'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार जयचन्द्र गाहड़वाल ने अपनी पुत्री संयोगिता के लिए उचित वर प्राप्त करने के हेतु स्वयंवर आयोजित किया था।[६२] बाडोल के राजा महेन्द्रपाल की बहिन दुर्लभादेवी ने स्वयंवर में दुर्लभराज चालुक्य का वरण किया था।[६३] पूर्व मध्य काल के अनेक महाकाव्य यथा नैषधीयचरित, विक्रमांक देव चरित्र, द्वयाश्रय आदि स्वयंवर विषयक वर्णन से भरे है[६४], परन्तु ऐसा आभास होता है कि यह प्रथा अब भी अपवादरूपेण सामन्ती व राजाओं में ही अपनायी जाती थी। जबकि गन्धर्व प्रेम विवाह था इसमें इस प्रकार का कोई राजसी बन्धन नहीं था। इस प्रकार यह विवाह प्रकार अपनी प्रकृति व क्षेत्र में विस्तृत था, लेकिन पूर्व मध्यकाल में बढ़ती हुयी जातीय कट्टरता से इस विवाह प्रकार की सामाजिक मान्यता कम हुयी।[६५] राजा दुष्यन्त व शकुन्तला का विवाह इस प्रकार के विवाह का प्रसिद्ध उदाहरण है।[६६] इसी प्रकार 'पार्वती परिणय' में शिव पार्वती के साथ गन्धर्व विवाह की इच्छा व्यक्त करते हैं।[६७] बाण ने भी कादम्बरी में इसको उचित बताया है।[६८] राक्षस विवाह भी समाज में अच्छा नहीं माना जाता था लेकिन दशकुमारचरित में चन्द्रवर्मन अम्बालिका को बल पूर्वक पकड़ लेता है और विवाह हेतु विवश करता है।[६९] शिशुपालवध में सोलहवें सर्ग में चेदि नरेश शिशुपाल का दूत कृष्ण को रुक्मिणी से विवाह करने के लिए लांक्षित करता है तथा कृष्ण द्वारा किये गये गंधर्व विवाह को राक्षस विवाह की श्रेणी में भी रखने को तैयार नहीं होता और इसे परस्त्री हरण की संज्ञा देता है।[७०] इस युग में राक्षस विवाह प्रचलित था तथा बहुपत्नीत्व की बढ़ती प्रथा, युद्धों की बहुतायत ने भी राक्षस विवाह को प्रोत्साहित किया।विजित सेना परास्त व मारे गये सैनिकों की स्त्रियों को बलपूर्वक पकड़ लेती थी।[७१] सम्भव है उनमें से कुछ विवाह भी कर लेते हों।

ऐसे भी उदाहरण उपलब्ध हैं जब राज परिवारों के वैवाहिक सम्बन्ध राजाओं के पारस्परिक युद्धों के उपरान्त की गयी सन्धियों का परिणाम होते थे।[७२] इस प्रकार के विवाह सभी युगों में प्रचलित थे लेकिन

पूर्व मध्य काल और मध्यकाल में इस प्रकार के विवाहों को विशेष बढ़ावा मिला। कुमापाल चालुक्य ने चाहमान राजा अर्णोराज को युद्ध में परास्त कर उसकी १८ वर्षीय राजकन्या से विवाह किया था।[७३] इनके अतिरिक्त पारस्परिक सहयोग तथा परम्परागत द्वेष समाप्त करने के उद्देश्य से भी वैवाहिक सम्बन्ध किये जाते थे। उदाहरणार्थ परमार शासक उदयादित्य की पुत्री श्यामल देवी का विवाह मेवाड़ के गुहिल शासक विजय सिंह से इसी उद्देश्य किया गया था।[७४] परमार भासक उदयादित्य ने चाहमान तृतीय विग्रहराज से राजमती अथवा राजदेवी नामक एक राजकुमारी का विवाह करके चाहमानों से मित्रता स्थापित की थी।[७५]

विवाह के पूर्व कन्याएँ अपने माता-पिता के संरक्षण में रहती थी, परन्तु विवाहोपरान्त पति ही उनका स्वामी व रक्षक होता था।[७६] व्यवस्थाकारों ने सगोत्र और सपिण्ड विवाहों को वर्जित बताया है।[७७] परन्तु व्यवस्थाकार देवण्णभट्ट ने गन्धर्व, असुर आदि निम्न प्रकार के विवाहों में सपिण्ड विवाह की अनुमति दी है।[७८] व्यवस्थाकारों में यह मतभेद सामान्यत: युग और क्षेत्र में अन्तर के कारण रहा होगा। वर परीक्षण में जाति, गोत्र, पिण्ड, प्रवर, शिक्षा, आयु, गुण, धन, जन्म स्थल इत्यादि प्रमुख विचारणीय बिन्दु थे।विवाह में माता-पिता वधू को सम्पत्ति आभूषण इत्यादि उपहार में देते थे।[७९]

प्रारम्भ से ही द्विजों के लिए अपने ही वर्ण या जाति में विवाह को उचित बताया गया है, लेकिन अन्तर्जातीय विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रारम्भिक कालों में अन्र्जातीय विवाह से सम्बन्धित नियम इतने कठोर नहीं थे। और इतिहास के पन्नों में अन्तर्जातीय विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है, तथा अनुलोम प्रकार के विवाहों को धर्मशास्त्रीय मान्यता भी मिली हुयी थी।[८०] पूर्व मध्यकाल आते-आते विवाह सम्बन्धित नियम कठोर होते गये जो संभवत: जाति प्रथा में बढ़ती हुयी कट्टरता का परिणाम थे। इस युग में अपने ही वर्ग और जाति में विवाह को व्यवस्थाकारों ने समर्थन दिया तथा अन्तर्जातीय विवाह को 'कलिवर्ज्य' (अर्थात् कलियुग में जिन कार्यों से बचना चाहिए) की संज्ञा दी।[८१] हमारे अध्ययन काल के साहित्य व अभिलेखों में अन्तर्जातीय अनुलोम विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। बाण के पिता की दो पत्नियाँ थी, जिसमें एक ब्राह्मणी तथा दूसरी शूद्र थी।[८२] राजस्थान से प्राप्त अनेक अभिलेखों में अनुलोम विवाहों के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। बाउक के जोधपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण

राजा हरिश्चन्द्र ने भद्रा नामक क्षत्रिय कन्या से विवाह किया था।[८३] शक्तिकुमार के आटपुर अभिलेख में अल्लट द्वारा हूण राजकुमारी हरिया देवी के साथ विवाह किये जाने का उल्लेख है ।[८४] नागेल के शासक लक्ष्मण ने एक वैश्य कन्या से विवाह किया था।[८५] इसी प्रकार ब्राह्मण मंत्री कवि राजशेखर ने चाहमान कन्या अवन्ति सुन्दरी से विवाह किया था।[८६] ये समस्त अभिलेख साक्ष्य माघोत्तर युग के है परन्तु इनका अपने पूर्ववर्ती व अनुवर्ती साक्ष्यों से जब साम्य किया जाता है तथा ये ध्यान में रखा जाए कि ये सारे साक्ष्य माघ के अपने प्रान्त से ही लिए गये तब यह स्पष्ट हो जाता है कि माघ के युग में भी यही प्रवृत्तियाँ प्रचलित रही होंगी । युआन च्वॉग कहता है कि सामान्यतः लोग अपने जाति/वर्ण में ही विवाह करते थे, परन्तु उच्च और निम्न वर्ण के लोगों का कुछ छूट थी।[८७] 'कथा सरित्सागर' में अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है । यद्यपि यह रचना ११वीं शती में लिखी गयी लेकिन यह अपनी पूर्ववर्ती परम्परा पर आधारित है ।[८८] अतः इसका साक्ष्य पूर्ववर्ती युग के लिए भी महत्वपूर्ण है ।इस प्रकार पूर्व मध्य काल में अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन था । लेकिन समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण इस प्रकार के विवाहों को बहुत अच्छी दृष्टि से नहीं देखता था।

प्राचीन भारत में स्त्रियो को समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था । लड़कियों का बालिग होने पर ही विवाह किया जाता था तथा बाल विवाह का प्रचलन नहीं था ।पूर्व मध्यकाल में व्यवस्थाकारों व टीकाकारों में विवाह की आयु को लेकर मतभेद है ।"कात्यायन के अनुसार वधू की आयु वर की आयु से तीन-चार वर्ष कम होनी चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति लड़कियों की रजस्वला होने से पूर्व ही विवाह पर जोर देती है। विष्णु स्मृति लड़की के कम से कम तीन मासिक धर्म पर होने पर ही विवाह करने की अनुमति देती है ।"[८९] मेधातिथि के अनुसार लड़की का विवाह आठ वर्ष की आयु में होना चाहिए।[९०] अभिलेखों में विवाह योग्य वर्ष का विवरण उपलब्ध नहीं होना । सोमदेव ने पुत्री के विवाह की आयु १२ वर्ष बतायी है ।[९१]परन्तु इसके साथ ही साथ यह भी देखा गया है कि सामान्य राज परिवारों की स्त्रियों का विवाह बालिग होने पर होता था । हर्षचरित में राज्यश्री पूर्ण बालिग है इसी प्रकार अन्य प्रमुख समकालीन ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रमुख महिला पात्र पूर्ण बालिग होने पर ही प्रेम या विवाह करती है।[९२] माघ के शिशुपालवध से विवाह की आयु के विषय में कोई प्रकाश नहीं पड़ता है, परन्तु अन्य समकालीन साक्ष्यों की विवेचना से यह स्पष्ट है कि लड़की की विवाहयोग्य सीमा घटती जा रही थी । पूर्व मध्यकाल में बाल विवाह की प्रथा

कम से कम ऐसे वर्गों में प्रचलित थी, जिनके सीमित साधन थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे परिवारों में चूँकि कन्या एक भार समझी जाती थी, अतः जितनी जल्दी उससे मुक्ति हो सके उचित समझा जाता रहा होगा, संयुक्त परिवार का प्रचलन था और वर की आय का प्रश्न गौण था।इसके अतिरिक्त हर्षोत्तर कालीन समाज अनेक जाति व व्यवसायिक वर्गों में विभाजित हो गया था, ऐसे में लड़कियों के लिए उचित वर मिलने की समस्या थी अतः शीघ्रातिशीघ्र उचित परिवार व वर ढूँढ़ने के प्रयासों ने भी विवाह की आयु कम कर दी।[९३] शकुन्तला राव शास्त्री का मत है कि १०वीं शती के बाद बाल विवाह का प्रचलन मुख्यतः मुस्लिम हमले के कारण हुआ[९४] उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि इस प्रथा का प्रचलन १०वीं शती के पहले ही प्रारम्भ हो गया था तथा मुस्लिम आक्रमण का सामाजिक प्रभाव ११-१२वीं शती के बाद ही देखा जा सकता है पहले नहीं। आल्टेकर महोदय का दृष्टिकोण है कि बढ़ती सती प्रथा ने बाल विवाह को प्रचलित किया क्योंकि माता-पिता बालिका को दुनिया छोड़ने के पहले गृहस्थ रूप में व्यवस्थित देखने की आत्मीय इच्छा रखते थे।[९५]

विधवा विवाह, जो कि प्राचीन काल में प्रचलित था, पूर्व मध्यकाल में अच्छा नहीं समझा जाता था। युआन च्वाँग स्त्रियों के पुनर्विवाह के अस्तित्व के अस्वीकार करता है।[९६] कात्यायन विशेष परिस्थितियों में विधवा विवाह को अनुमति प्रदान करता है, लेकिन विधवा को अपने पूर्व पति की सम्पत्ति से वंचित करता है।[९७] माघ के शिशुपालवध में विधवा विवाह का उल्लेख मिलता है लेकिन उसको अच्छा नहीं माना गया है।[९८]

इस काल में विधवाओं के लिए वैधानिक रूप से दो ही रास्ते समाज द्वारा बताये गये है। पति की स्मृति में अत्यंत कठोर, संयमपूर्ण नियमानुसार पवित्र जीवन व्यतीत करना अथवा सती होना।७वीं-८वीं शती तक आते-आते सती प्रथा का समाज में प्रचलन बढ़ गया था, जिसका प्रमाण इस युग के साहित्यिक व अभिलेखिक साक्ष्य है जो न सिर्फ सती प्रथा के उल्लेखों से भरे पड़े हैं बल्कि इस प्रथा को गौरवान्वित भी करते हैं।[९९] यह प्रथा प्राचीन काल में विद्यमान नहीं थी। इसका सर्वप्रथम अभिलेखिक साक्ष्य भानुगुप्त के सरल अभिलेख मिलता है। इसके अनुसार भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की पत्नी अपने पति के निधनोपरांत सती हो गयी थी।[१००] कालिदास ने काम की मृत्यु के उपरान्त उसकीपत्नी रति द्वारा आग

में जल कर मर जाने की इच्छा का वर्णन किया है।[१०१] इसी प्रकार हर्ष द्वारा रचित प्रियदर्शिका के अनुसार विन्ध्याकेतु युद्ध में हारकर वीरगति को प्राप्त हुआ तब इसकी पत्नी भी चिता में जलकर स्वर्गवासी हुयी।[१०२] शिशुपालवध में सती होने के अनेक वर्णन उपलब्ध होते हैं। ऐसा प्रतीत प्रतीत होता है कि सैनिकों की पत्नियाँ उनके साथ रणभूमि में जाती थी जिससे कि उनके पति के वीरगति प्राप्त करते ही वह सती हो सके।[१०३] शिशुपालवध के अनुसार युद्ध में प्राणों को त्यागने वाले किसी वीर को देखकर उसके समीप ही हथिनी पर सवार उसकी स्त्री ने अपने पति के प्रेमवश तत्काल प्राण त्याग दिये और इस प्रकार अपने पतिव्रत धर्म की महिमा से अखण्डित देवयोनि को प्राप्त कर उसने अपने प्राणप्रिय पति का आलिंगन किया।[१०४] हमारे अध्ययन काल के अभिलेखों में भी सती प्रथा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। वास्तव में यह प्रथा भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा राजस्थान और उससे लगे हुए राज्यों में विशेष लोकप्रिय थी। वि० स० ९४७ के घटियाला के देवली अभिलेख से ज्ञात होता है कि राणुक की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी संपल्लदेवी सती हो गयी थी।[१०५] जोधपुर से ११ किमी० दूरी पर स्थित पाल से लगभग १२ सती स्मारक अभिलेख प्राप्त हुए है।[१०६]

ऐसा प्रतीत होता है कि सन्यास का आदर्श, कर्म का सिद्धान्त इस प्रथा के प्रेरक तत्व रहे हैं। यद्यपि कुछ विद्वान इस प्रथा का उद्भव भारत में नहीं मानते है और कहते हैं यह प्रथा सीथियन लोगों के साथ भारत आयी और भारत के पश्चिमोत्तर हिस्सो (काश्मीर, राजस्थान, गुजरात) और विशेषकर क्षत्रिय राज-परिवारों में विशेष रूप से लोकप्रिय हुई।[१०७]

उपर्युक्त प्रमाणों से यह आभास मिलता है कि सती प्रथा मुख्य रूप से राजपूतों में प्रचलित थी। धर्मशास्त्रों का भी यह मत लगता है। अंगिरस के अनुसार ब्राह्मण पत्नी का सती होना आत्मघात के समान हैं। इससे न तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है और न उसके पति को।[१०८] परन्तु पूर्व मध्य काल के उत्तरार्द्ध में राजस्थान में राजपूतो के अतिरिक्त वैश्यों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। जोधपुर से लगभग ११ किमी० दूरी पर स्थित पाल से प्राप्त वि० स० १२४४ के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि धर्कर (वैश्य) जातीय ओर पोचस गोत्रीय समधर के पुत्र की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी सती हो गयी थी।[१०९]

परन्तु विशेष परिस्थितियों में सती न होने के भी उदाहरण मिलते हो। हर्ष ने अपनी विधवा बहन

राज्यश्री को समझा बुझाकर सती होने से रोक दिया था।[११०] रानी कैलच्य देवी के वि० सं० १२३९ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि पृथ्वी देव की मृत्यु पर इसरानी ने सती होने का निश्चय कर लिया था, परन्तु पुत्र, सचिवों और विद्वानों के समझाने बुझाने पर उसने अन्ततः अपना निर्णय बदल लिया था।[१११]चाहमान शासक सोमेश्वर की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी राज तृतीय की माता कर्पूर देवी अपने पुत्रों के हितार्थ जीवित रही और संरक्षिका के रूप में शासन किया।[११२] इस प्रकार हम पाते हैं कि सती प्रथा का भारत में प्रवेश विदेशी जातियों के साथ मौर्योत्तर युग में हुआ और धीरे-धीरे यह प्रथा पश्चिमोत्तर भारत, राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश के क्षत्रिय परिवारों में लगभग सातवीं शती के अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी। इसी पति को पुनः अगले जन्म में पाने की इच्छा, कर्म का सिद्धान्त, विधवा का कष्टपूर्ण जीवन, क्षत्रियों का शौर्यपूर्ण जीवन आदि प्रेरक तत्वों ने इस प्रथा को लोकप्रिय बनाया।

भारतीय समाज में विवाह एक धार्मिक एवं पवित्र कार्य समझा जाता था तथा विवाह के बिना जीवन अपूर्ण माना जाता था। सामान्यतः एक विवाह ही पर्याप्त माना जाता था।[११३] परन्तु राज परिवारों, धनी तथा उच्च वर्गों में बहुपत्नी प्रथा प्राचीनकाल से ही चली आ रही थी। गुप्त और गुप्तोत्तर कालीन साहित्यिक व अभिलेखिक साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि राजपरिवारों में बहुपत्नीत्व का प्रचलन था। सामन्त और धनाढ्य भी इस विषय में राजपरिवारों का अनुकरण करते थे।कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम के सहपत्नियों को प्रेम व सौहार्द से मित्रवत रहने की सलाह दी गयी है।[११४] हर्षचरित से पता चलता है कि प्रभाकरवर्धन के यशोवती के अलावा अन्य रानियाँ भी थी लेकिन यशोवती को प्रमुख रानी होने का गौरव प्राप्त था।[११५] बाण के पिता के स्वयं दो पत्नियाँ थी जिसमें एक ब्राह्मण तथा दूसरी शूद्र थी।[११६] बंगाल के राजा धर्मपाल के दो पत्नियाँ थी।[११७] शिशुपालवध में पूर्व मध्य युगीन समाज की सारी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है। बहुपत्नी प्रथा तथा सहपत्नियों में आपसी कलह, मनमुटाव ईर्ष्या, द्वेष का चित्रण माघ ने शिशुपालवध में अत्यन्त सुन्दरता से किया है।[११८] यद्यपि बहुपत्नीत्व प्रथा का समाज में सामन्तों तथा सैनिक वर्गों में प्रचलन था लेकिन एक पत्नी का आदर्श अभी भी अच्छा माना जाता था। बहुपत्नीत्व प्रथा का प्रेरक तत्व कामेच्छा ही रही है। इसी कारण समाज में प्रचलन होते हुए भी उसे सम्मान जनक स्थान नहीं मिला है।[११९]गुप्त काल और उसके परवर्ती आभिलेखीय साक्ष्यों में इस प्रथा के अस्तित्व के अनेक उदाहरण मिलते हैं। समुद्रगुप्त के अनेक रानियाँ थी। प्रतिहार बाउक के जोधपुर अभिलेख से

ज्ञात होता है कि उसके वंश के आदि पुरुष हरिचन्द्र की ब्राह्मणी और क्षत्रिय जातीय दो पत्नियाँ थी। सती स्मारक अभिलेखों से भी इस स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। पूर्व में व्यवस्थाकारों द्वारा स्थापित स-वर्ण, सजाति विवाह के सिद्धान्त को समाज में बढ़ती हुयी बहुपत्नीत्व प्रथा के परिप्रेक्ष्य में संशोधित किया गया और पूर्व मध्यकाल में व्यवस्थाकारों ने एक नये संशोधित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार पुरुष प्रथम सवर्ण कन्या से विवाह करने के उपरान्त, जो कि यज्ञ में भाग लेने सम्पत्ति में हिस्सा पाने आदि की वास्तविक अधिकारी होगी, अनुलोम क्रमानुसार अन्य विवाह कर सकता हो।[१२०] मानसोल्लास में भी राजा को क्षत्रिय वर्ण से मुख्य रानी तथा वैश्य और शूद्र वर्ण से पदरानियाँ लाने की सलाह दी गयी है, क्योंकि उसके अनुसार इन अतिरिक्त विवाहों का उद्देश्य राजा द्वारा शारीरिक सुख प्राप्त करना होता है।[१२१]

भोजन - पेय :

किसी भी सभ्य समाज के भोजन और पेय पदार्थों के निर्धारण में उस देश की भौगोलिक परिस्थितियों के अतिरिक्त संस्कृति की भी प्रमुख भूमिका होती है। भारत में भोज्य पदार्थों का देश की धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों से घनिष्ठ संबंध रहा है। साहित्यिक साक्ष्यों में क्या खाने योग्य है ? तथा क्या किस वर्ग को खाना चाहिए तथा किस प्रकार के भोजन से बचना चाहिए ? इन सब बातों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। भोजन एक तरह का धार्मिक अनुष्ठान होता था।

माघ युगीन भोज्य व पेय पदार्थो के ज्ञान हेतु पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध है। शिशुपालवध में अनेकों खाद्य पदार्थों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त हर्षचरित, कादम्बरी युआन-च्वाँग व इत्सिंग के यात्रा विवरणों से भारत में ७वीं शती के खान-पान से संबंधित तथ्यों का उल्लेख मिलता है।

भारत में प्राचीन काल से ही शाकाहारी व माँसाहारी दोनों प्रकार का भोजन प्रचति था। लंकावतार सूत्र में खाद्य पदार्थों की एक सूची है जिसमें शालि, चावल, गेहूँ, जौ तीन प्रकार की दालें, तेल, गुड़ और शक्कर शामिल है।[१२२] युआन च्वाँग का कहना है कि दूध, दानेदार चीनी, मिस्री मीठी रोटियाँ और सरसों के तेल के साथ भुना हुआ अनाज आदि तत्कालीन जनता का भोजन था।[१२३] वे कभी-कभी अवसर पड़ने पर मछली, भेड़, मृग आदि का मांस भी खाते थे।[१२४] चावल संभवतः सर्वप्रमुख अनाज था। शिशुपालवध में अनेकों स्थलों पर धान के खेतों का उल्लेख हुआ है।[१२५] युआन-च्वाँग एक विशेष किस्म

के चावल का उल्लेख करता है जिसका उत्पादन मथुरा के पास होता था।[१२६] हर्षचरित से पता चलता है कि श्री कण्ठ जनपद में चावल की अच्छी पैदावार होती थी।[१२७] युआन च्वाँग के विवरण से पता चलता है कि मगध में महाशालि नामक एक विशेष अच्छी किस्म का चावल होता था।[१२८] शालि चावल सर्वश्रेष्ठ किस्म का चावल माना जाता था उसका उल्लेख नीलमत पुराण में भी मिलता है।[१२९] कादम्बरी से पता चलता है कि रानी विलासवती की गर्भावस्था के समय दासियाँ शालि चावल ही रानी के भोजन निमित्त लाती थी।[१३०]

गेहूँ (गोधूम) अन्य प्रमुख अनाज था। युआन च्वाँग और इत्सिंग दोनों ने इसका उल्लेख किया है।[१३१] शिशुपालवध में महाकवि माघ ने गेहूँ का उल्लेख नहीं किया है जबकि धान के खेतों का अनेकों स्थान पर उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि भीनमाल और उसके आस-पास के क्षेत्रों में धान की खेती ज्यादा होती रही होगी और गेहूँ एक गौढ़ फसल होगी। धान के खेती का भी उल्लेख हुआ है।[१३२] अन्य प्रमुख दलहन फसलों में मुद्गा, आधक, मसूर, कुलक्ष्थ आदि का उल्लेख मिलता है।[१३३] शिशुपालवध में मटर का भी वर्णन मिलता है।[१३४]

सभी प्रकार के मसालों में नमक प्रमुख था। शिशुपालवध में नमक के व्यापार का रोचक वर्णन मिलता है।[१४] इसके अतिरिक्त मिर्च, लौंग, जीरा, इलायची आदि अन्य मसालों[१३६] का तथा घी व सरसों (अलसी) के तेल का उपयोग भी होता था।

मांसाहारी भोजन भी लोकप्रिय था। जानवरों का शिकार करना एक प्रमुख शौक था। शिशुपालवध व हर्षचरित में शिकार का वर्णन है।[१३७] युआन च्वाँग बैल, गधा, हाथी, घोड़ा, सुअर, कुत्ता, लोमड़ी, भेड़िया आदि का माँस प्रयोग वर्जित बताता है।[१३८] जानवरों में भेंड, बकरी, हिरन, खरगोश आदि का माँस लोकप्रिय था। हर्ष की सेना प्रयाण के समय माँसाहारी भोजन ले जाने का उल्लेख मिलता है।[१३९] दण्डी ने दशावतारचरित में भूने माँग को तैयार करने की पूरी विधि का उल्लेख किया है।[१४०]

अनेक प्रकार के फल-फूल का भी सेवन होता था। भारत की जलवायु अनेक प्रकार के फलों के उत्पादन के अनुकूल है। आम, केला, अनार[१४१] , जामुन, आँवला, नारियल[१४२] आदि फलों के उपयोग के प्रमाण मिलते हैं।

भारत में दूध व दूध से निर्मित वस्तुएँ ऋग्वेद काल से ही लोकप्रिय रही है। माघ कालीन युग में भी दूध, दही, घी, मक्खन, पनीर आदि का उपयोग होता था।[१४३]

खाने के बर्तन मिट्टी, लकड़ी व धातु के बने होते थे। युआन-च्वाँग कहता है कि हर भोजन से पहले भारतीय नहाते हैं, बर्तनों को फेंक देते हैं या रगड़कर साफ करते हैं—खाने के बाद दातुन करते हैं।[१४४] संभवत: मिट्टी के भोजन ग्रहण करने वाले बर्तन यथा कुल्हण, प्याला, सकोरा आदि फेंक दिये जाते रहे होंगे और खाना बनाने व खाने वाले धातु के बर्तन मिट्टी, राख आदि से रगड़कर साफ किये जाते रहे होंगे।

समाज में पान खाने की प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इसे स्त्री-पुरुष सभी खाते हैं। वृहत्संहिता में पान के बारे में कहा गया है कि यह प्यार को प्रोत्साहित करता हैं, शारीरिक स्फूर्ति देता है, शरीर को मजबूत तथा कफ से उठने वाली बीमारी को समाप्त करता है।[१४५] यह प्यार प्रतिष्ठा व कृपा का प्रतीक था। इसके उपयोग से होंठ लाल व स्वांस सुगन्धित हो जाती है।[१४६] लोग दुख तथा विपत्तिआदि में ताम्बूल सेवन नहीं करते थे। हर्षचरित में प्रभाकर वर्द्धन की बीमारी व उनकी मृत्यु के समय हर्ष द्वारा ताम्बुल सेवन न करने का उल्लेख है।[१४७] चन्द्रापीड़ की मृत्यु के बाद कादम्बरी ने अपने होंठों पर से पान के गहरे रंग को साफ करने का संकेत किया है।[१४८] बाण के मित्रों में एक ताम्बूल दायक था जिसका नाम चण्डक था।[१४९] स्त्री ताम्बुलदायक को ताम्बूलवादिनी कहते थे। राज्यश्री की ताम्बूल वाहिका पत्रलता विंध्य जंगल में भी उसके साथ थी। बाण ने उसे राज्य श्री की अत्यधिक स्नेह सखी कहा है।[१५०] युआन च्वाँग ने भारतीयों के पान खाने की आदत का कहीं वर्णन नहीं किया है, वह कहता है कि वे अपने दाँतों को लाल या काला रखते थे।[१५१] यह दाँतों को लाल या काला होना पान खाने का ही परिणाम है।

पेय में मदिरा पान अत्यधिक प्रचलित था। प्राय: सभी लोग इसे पीते थे। अलग-अलग जाति के लोगों के लिए अलग-अलग किस्म की मदिरा व पेय पदार्थ थे। अंगूर और गन्ने का रस ब्राह्मण और बौद्ध भिक्षु पीते थे, अंगूर और गन्ने की शराब क्षत्रिय पीते थे। वैश्य तेज शराब पीते थे लेकिन शूद्र, मिश्रित और निम्न जाति के लोग बिना किसी भेदभाव के शराब पीते थे।[१५२] हर्ष के जन्मोत्सव में मदिरा की धारा बही थी जहाँ योग्य पुरुष भी अपने को भूल गये थे।[१५३] कामरुप के राजा भाष्कर वर्मा द्वारा हर्ष को जो उपहार भेजे गये थे उनमें अधिकतर मीठे शराब की मात्रा थी।[१५४]

शिशुपालवध में पूरा दशम सर्ग मदिरा पान को समर्पित है। स्त्री, पुरुष दोनों मद्यपान करते थे।[१५५] मद्य के व्यापारी सेना के साथ चलते थे, तथा व्यापारी के मदिरा पात्र को उस्ट्रिक्ता कहा जाता है।[१५६] अच्छी मदिरा का गुण बताते हुए कहा गया है कि इसे नेत्र को सुखप्रद, नासिका को सुखप्रद, जीभ को सुखप्रद कान को सुखप्रद तथा त्वचा को सुखप्रद होना चाहिए, अर्थात् मदिरा पान से इन्द्रियों को तृप्त होना चाहिए।[१५७] मिट्टी व धातु दोनों प्रकार के मद्यपान के पात्रों का उल्लेख है।[१५८] गन्ने से मदिरा बनाने व आम के पत्तों तथा कमल से उसे सुगन्धि युक्त बनाया जाता था।[१५९] मदिरा के साथ बीच-बीच में नमकीन व चना आदि खाने का भी वर्णन मिलता है।[१६०]

माघ ने अधिक मद्य पान के नुकसान भी बताये हैं। इससे व्यक्ति न सिर्फ वमन (उल्टी) करने लगता है[१६१], अपितु अट-पट बोलने लगता है और गुप्त रहस्यों को उजागर कर देता है।[१६२]

वस्त्र :

७वीं शती में अनेकों प्रकार के पहनावे लोकप्रिय थे। ये पहनावे सिले और बिन सिले दोनों प्रकार के होते थे। युआन च्वॉग[१६३] तथा सी० वी० वैद्य[१६४] के अनुसार भारतीय लोग सिलाई नही जानते थे। परन्तु यह मत उचित प्रतीत नहीं होता है। हमारे पास इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि गुप्त काल के लोग सिले-सिलाये वस्त्र पहनते थे। बारबाण (एक प्रकार का कोट) और कंचुक जैसे सिले वस्त्रों का प्रयोग कालिदास ने अनेक स्थानों पर किया है।[१६५] बाण ने राजाओं की वेशभूषा में तीन प्रकार के पाजामों[१६६] तथा चार प्रकार के कोटों[१६७] का वर्णन किया है। ऐसे वस्त्रों की भारत में शुरुआत शक कुषाण युग के उपरान्त प्रारम्भ हुयी। ऐसे वस्त्र बिना सिलाई के संभव नहीं है।

शिशुपालवध में नारी वेशभूषा का अनेकों स्थान पर उल्लेख मिलता है। सामान्यतः नारी वेशभूषा में तीन वस्त्र शामिल थे। स्तन को ढकने के लिए चोली[१६८] नीचे पहनने वाला वस्त्र नीवी[१६९] तथा उसके ऊपर साड़ी पहनने[१७०] का उल्लेख है। ये वस्त्र रंग बिरंगे तथा सूती एवं रेशमी[१७१] होते थे।

इस युग में श्वेत रंग के वस्त्र धारण करने का विशेष प्रचलन था। युआन च्वाँग और बाण दोनों ने ही सफेद रंग के महत्व को प्रदर्शित किया है। शिशुपालवध में भी श्वेत रंग के महत्व को प्रतिपादित किया है। युआन-च्वाँग कहता है कि रंग में सूक्ष्म सफेद सम्मानित है।[१७२] चन्द्रापीड के अभिषेक समारोह

पर राजमहल सफेद रेशमी कपड़ों से सजाया गया था और जो फूल उस समय लाए गये थे वे भी सफेद ही थे ।उसका शरीर सफेद रंग के फूलों की मालाओं से पवित्र किया गया ।[१७३] हर्ष के दरबार में जाने से पहले बाण ने स्वयं सफेद रंग का दुकूल धारण कर लिया था ।[१७४]

माघ के अनुसार 'स्वच्छ निर्मल पानी से धोया हुआ शरीर, ताम्बूल राग से श्रेष्ठ वर्ण ओष्ठ, महीन तथा सफेद कपड़ा बस इतना ही विलासवती रमणियों का भूषण देता हैं ।[१७५] श्वेत वर्ण के अतिरिक्त शिशुपालवध में लाल वर्ण के कपड़ों का भी उल्लेख है ।[१७६] पोशाकें रेशम, मलमल छींट, क्षौम और दो किस्म की बढ़िया ऊन से बनी होती थी । इत्सिंग का कहना है कि कई बार बौद्ध भिक्षुओं के उपकरणों में रेशमी कपड़े का टुकड़ा भी शामिल होता था ।[१७७]

आभूषण :

प्राचीन काल से ही भारतीयों का आभूषण के प्रति विशेष लगाव रहा है । सैंधव्य सभ्यता की मोहन जोदड़ों से प्राप्त ४ १/२ सेमी लम्बी नर्तकी कांस्य निर्मित है । इसके शरीर पर वस्त्र नहीं है परन्तु बायाँ हाथ कलाई से लेकर कंधे तक चूड़ियों से भरा है । दायें हाथ में वह कंगन तथा कंयूर पहने हुए है उसके घुँघराले बाल पीछे की ओर जूड़े में बँधे हुए है तथा गले में छोटा हार तथा कमर में मेखला है ।[१७८] सातवीं शती के साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि माघ के युग में आभूषणों का निर्माण सोना, चाँदी, महंगे रत्नों तथा पुष्प आदि से किया जाता था । प्रमुख आभूषणों में मुक्ताहार[१७९], कुण्डल[१८०] , केयूर[१८१], कंकड़[१८२], करधनी[१८३] , नूपुर[१८४] (चित्र-१, २) आदि थे । शिशुपालवध में अनेकों प्रकार के हार व करधनी का उल्लेख मिलता है । मुक्ताहार उस समय का बहुत ही प्रचलित आभूषण था । शिशुपालवध में मोतियों, रत्नजरित, स्वर्ण एवं पुष्पों के हार का उल्लेख हुआ है । इसी प्रकार करधनी भी अनेकों प्रकार की होती थी । कई लड़ियों वाली घुँघरु लगी करधनी, स्वर्ण निर्मित करधनी पहनने का उल्लेख शिशुपालवध में हुआ है (चित्र-३) । स्त्री पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे ।[१८५]

प्रसाधन :

शरीर के अलंकरण हेतु अनेक प्रसाधनों का उपयोग होता था । बालों को रंगने, लिपिस्टिक (लाक्षारस)[१८६] पाउडर[१८७], काजल[१८८], सुगन्ध[१८९] तथा महावर [१९०] आदि प्रसाधन स्त्रियों में लोकप्रिय

थे। साहित्यिक साक्ष्यों एवं कलाकृतियों से केश विन्यास की विभिन्न शैलियों का पता चलता है। बाल सुखाती हुयी नायिका[१९१](चित्र-४), दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखती नायिका[१९२] (चित्र-५), के उदाहरण साहित्य के साथ-साथ कलाकृतियों में भी देखने को मिलते है। शरीर पर खुश्बूदार कुंकुम चन्दन आदि का उपटन लगाना भी लोकप्रिय था।[१९३] प्राचीन काल से ही व्यक्तिगत सफाई का स्तर काफी ऊँचा था। ७वीं शती में युआन-च्वाँग ने भारत के सामान्य वर्णन के सिलसिले में भारतवासियों द्वारा व्यक्तिगत स्वास्थ्य के सिद्धान्तों का पालन और विभिन्न प्रकार के उबटनों तथा फूलों के सामान्य प्रयोग के बारे में लिखा है।[१९४] इसी शती के उत्तरार्द्ध में ईत्सिंग ने लोगों की स्वच्छता की आदतों और व्यक्तिगत सुख सुविधाओं का विस्तृत विवरण दिया है।[१९५] मुख में स्वच्छ वायु की महक हो और बदबू न आये इसका विशेष ध्यान रखा जाता था[१९६] तथा अनेक प्रकार के दातूनों का इस्तेमाल किया जाता था।[१९७]

संदर्भ

१. भागवद् गीता ४/१३

२. हट्टन, कास्ट इन इंडिया, पृ० १९०

३. काणे, पी० वी०, धर्मशास्त्र का इतिहास, खंड १, पृ० ११९

४. कौटिल्य, अर्थशास्त्र १/३, मनुस्मृति १/८

५ कोटिल्य, अर्थशास्त्र ९/२

६ गौतम धर्मसूत्र ११/३, ११/९

७. कौटिल्य, अर्थशास्त्र ३/६

८ मनुस्मृति १/८९

९. मनुस्मृति १०/८६

१०. गौतम धर्मसूत्र १०/१-३, कौटिल्य अर्थशास्त्र ३/७

११. महाभारत भीष्म पर्व ४२/४४

१२. मनुस्मृति १/९०

१३. मनुस्मृति १२/९८

१८ बौधायन धर्मसूत्र २/१०

१५. गौतम धर्मसूत्र १०/५८

१६. मनुस्मृति १०/१२५

१७ शिशुपालवध II ४७, III ६३

१८. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० ४४३-४४

१९. पद्मनाभ, कान्हणदेव प्रबंध, ३/२५

२०. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० ४४४-४५

२१ अरोडा राजकुमार, हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल डाटा फॉम दि भविष्य पुराण १९७२, पृ० ३२

२२. ओझा गौरी शंकर हीराचन्द्र, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ० ३४

२३ एपिग्राफिक इंडिका, ३६, पृ० ४७

२४ वही, १४, पृ० १७६

२५ वही, ९ पृष्ठ ११

२६. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० ४४७ तथा आगे

२७ एपिग्राफिक इंडिका ९, पृ० १०३

२८. शिशुपालवध– वंश वर्णन संबंधी श्लोक

२९. त्रिपाठी आर० एस०, हिस्टी आफ कन्नौज, पृ० २१०

३० वही, पृ० १८०-८१

३१ वाटर्स, जिल्द १, पृ० १६८

३२. वाटर्स-I, पृ० १६८

३३ जीवनी-पृ० ७३

३४. वाटर्स-१, पृ० ४७

३५. रिडिंग : कादम्बरी-८

३६. रिडिंग : कादम्बरी-पृष्ठ ८-९

३७. वाटर्स-I, पृ० १६८, १४७

३८. हर्षचरित-I, पृ० ७४-७५

३९. शिशुपालवध १४/३८

४०. यादव, बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० १८

४१. हजरा - स्टडीज इन उप पुराण खंड २, पृ० ४९७

४२ यादव बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० १८

४३. शिशुपालवध ४/२३

४४ यादव बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० १८

४५. वाटरस, I, पृ० १६०

४६ मुकर्जी, आर० के०, एन्शियेन्ट इंडियन एजेकेशन, पृ० ६६

४७. ज्ञान पचमी कथा १, १४, ७२

४८. उपमिति भव प्रपंच कथा, पृ० ६९८

४९ तिलक मंजरी, पृ० १७-१८

५०. यादव बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० ७१

५१. कुमार संभव, VI, १२

५२ वृहत संहिता, LXXXIV, ४

५३. शर्मा दशरथ अर्ली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २५०

५४. पृथ्वीराज विजय, ५, पृ० ३७-३९

५५. राजस्थान के अभिलेखो का सांस्कृतिक अध्ययन, श्यामा प्रसाद व्यास, पृ० १२२

५६. एपिग्राफिक इंडिका ११, पृ० २२१-२२

५७. नवसहसोक चरित, ११वाँ, ७६-७८

५८ जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, १०, पृ० २४२

५९. मनुस्मृति, ९, ३७

६०. गृहस्थकांड, लक्ष्मीधर, पृ० ७४ प० पृ०

६१ मनु गृहस्थकांड में उद्धृत, पृ० ७२

६२ पृथ्वीराज विजय, ५, ८७-८९

६३ शर्मा दशरथ : अर्ली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २८८

६४. यादव, बी० एन० एस० : सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० ७०

६५. वही, पृ० ६६

६६. अभिज्ञान शाकुन्तलम, III, १२

६७. पार्वती परिणय, निर्गुण सागर प्रेस, IV पृ० ३३

६८. कादम्बरी, रीडिंग, पृ० १८०

६९. दशकुमारचरित, रायडर, पृ० १०५

७०. शिशुपालवध–माघ XVI, ४९

७१. शिशुपालवध XVI १५, ८५

७२ समुद्रगुप्त ने सिंहल तथा अन्य द्वीपों के शासकों की कन्याओं को प्राप्त किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने संभवतः सेल्यूकस की

पुत्री से विवाह युद्ध की सन्धि के रूप में किया था।

७३ शर्मा दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टी, पृ० २५३

७४. एपिग्राफिक इंडिका, २, पृ० १२

७५. एपिग्राफिक इंडिका, २६, पृ० ८०

७६. शिशुपालवध IX १७

७७. ग्रहस्थकांड, लक्ष्मीधर, प्रथम व द्वितीय भाग

७८ आयगर के वी० आर० गृहस्थ कांड, पृ० २३, २४

७९ समरानृच्चकथा, पृ० ९३-१०१

८०. यादव, बी० एस० : सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिका, पृ० ६६

८१. हजरा : स्टडीज इन दि उप पुराणास, II, पृ० ४९७

८२ हर्षचरित I, पृ० ७४

८३. एपिग्राफिक इंडिका, १८, ९५

८४. इंडियन एक्टिक्वेटी ३९, पृ० १९१

८५. पुरातन प्रबंध संग्रह, पृ० १०२

८६. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २५६

८७ हिन्दू संस्कार, आर० वी० पाण्डेय, पृ० ३०८-९, दि स्टग़ल फार एम्पायर यू० एन० घोषाल, पृ० ४८०

८८. वाटर, I पृ० १६८

८९. सिंह, एस० के० : कल्चरल हिस्टी आफ नार्दन इंडिया, एस० के० सिंह, पृ० ३५

९० मेघातिथि, ११, ४ ?

९१. भाटिया, प्रतिपाल : द परभाराज, प्रतिपाल भाटिया, पृ० २६८ पर उद्‌धृत

९२. आल्टेकर, दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ६९

९३. यादव, बी. एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० ७०

९४. शास्त्री, एस० आर० : वीमेन इन दि सैक्रेड लॉ, पृ० १७५

९५. आल्टेकर, दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० ७१

९६. वाटर्स I, पृ० १६८

९७. कात्यायन स्मृति ५७१

९८. शिशुपालवध XVI, ८१

९९ शर्मा दशरथ : राजस्थान थ्रू दि एजेज, I, पृ० ४५७

१००. कार्पस इन्सक्रिप्सन्स इंडिकेरम, III, सं० २०

१०१ कुमार संभव IV ३४

१०२. प्रियदर्शिका I

१०३ शिशुपालवध IX १३, १७, XV ९३, XVIII ६०, ६१

१०४ शिशुपालवध, XVIII, ६१

१०५. एपिग्राफिक इंडिका १९, पृ० ८-९

१०६ जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, १२, पृ० १०६

१०७. अल्टेकर, पोजीशन ऑफ वीमेन इन एन्शियेन्ट इंडिया, पृ० १५२-१५३

१०८. शर्मा दशरथ राजस्था थ्रू दि एजेज, पृ० ४५७

१०९. जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, १२, पृ० १०६

११० हपचरित, ८, २४८

१११. पृथ्वीराज चौहान एण्ड हिज टाइम्स, रामवल्लभ सोमानी, पृ० १७८

११२. पृथ्वीराज विजय, ९, १३४

११३. यादव, बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० ६८

११४. अभि० शाकुन्तलम II, १८

११५ हर्पचरित IV, पृ० २०४

११६. हर्षचरित I, पृ० ७४

११७. सिंह, एस० के० : कल्चरल हिस्टी ऑफ नार्दन इंडिया, पृ० ४१

११८. शिशुपालवध VII ७, ४५, ५२-५८, VIII, १५, १६, ३७-४४

११९. शिशुपालवध XI, १२

१२०. गृहस्थकांड लक्ष्मीधर, पृ० ४४

१२१. मानसोल्लाल III १८०८-१६

१२२. लंकावतार सूत्र, पृ० २५०

१२३. वाटर्स I, पृ० १७८

१२४. वाटर्स I, पृ० १७८

१२५. शिशुपालवध VI, ४९, XII, ४२, ४३

१२६. वाटर्स I, पृ० ३००

१२७. हर्षचरित III, पृ० १६०

१२८ जीवनी, पृ० १०९

१२९ नीलमत पुराण, श्लोक सख्या ७४८-७५० तक

१३०. कादम्बरी, पृ० १३७

१३१. वाटर्स I, पृ० १७८

१३२. शिशुपालवध, XIII.३७

१३३. आस्टांगहृदय (बाग्भट्ट) VI, श्लोक १५ और १७ से २४ तक

१३४. शिशुपालवध XIII-२१

१३५. शिशुपालवध X, ३८

१३६ शिशुपालवध X, ५०

१३७ शिशुपालवध, V, २५, २६, हर्षचरित VII, ३७८

१३८. वाटर्स I, पृ० १७८

१३९ हर्षचरित, VII, पृ० ३७७

१४० दशावतारचरित (राइडर), पृ० २१६, २१७

१४१. शिशुपालवध, XVII, १४

१४२. वही, III, ८१

१४३ वही, XI, ८ XII, ४०-४१

१४४. वाटर्स I, पृ० १५२

१४५ वृहत्संहिता

१४६. शिशुपालवध, VIII ७०, IX ६५

१४७. हर्षचरित V, २७५, ३०१

१४८. कादम्बरी (रीडिंग), पृ० १०८

१४९. हर्पचरित I, पृ० ७४

१५०. हर्षचरित VIII, पृ० ४४३, ४५२

१५१. वाटर्स I, पृ० १५१

१५२ वाटर्स I, पृ० ४३

१५३. 'सधारागृह इव सीधु प्रपाभिः।' ; (हर्षचरित IV, पृ० २२२)

१५४. अतिमधुर सामोद निर्हारिणी श्चोल्लक कलसीः ; (हर्षचरित IV, पृ० ३८८)

१५५. हर्पचरित III, पृ० १६६, नागानन्द अंक III, कादम्बरी १३६, १४९ शिशुपालवध X ७, ८, ११ आदि

१५६ शिशुपालवध XII.२६

१५७. शिशुपालवध X.३

१५८. शिशुपालवध XI/51

१५९ शिशुपालवध X.३,९,११,VIII,५२

१६०. शिशुपालवध X,१०

१६१. शिशुपालवध III ७३.

१६२ शिशुपालवध III ७३,X १२

१६३. वाटर्स I, पृ० १४५

१६४. वैद्य, सी० वी० : हिस्टी ऑफ मेडिवल हिन्दू इंडिया I, पृ० ८९

१६५ रघुवश : IV, ५५

१६६ अग्रवाल, वी० एस० : दि डीड्स ऑफ हर्ष, पृ० १८१-१८३

१६७ वही, पृ० १८४-१८५

१६८. शिशुपालवध V, २३

१६९. शिशुपालवध X, ५१,६०

१७०. शिशुपालवध VIII, ५२,X, ८३

१७१. शिशुपालवध X, ८३

१७२. वाटर्स I, पृ० १४८

१७३. रिडिग, कादम्बरी, पृ० ८४-८५

१७४. "धृत धवल दुकूल वासाः।"

(हर्षचरित, II, पृ० ९६)

१७५ शिशुपालवध VIII,७०

१७६. शिशुपालवध VIII, ६७

१७७. इत्सिंग : रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिष्ट रिलीजन एन प्रैक्टिस्ड इन इंडिया : जे तकाकुसू पृ० ६७-६८

१७८ लाल बी० बी० : दि अर्लिएस्ट सिविलाइजेशन ऑफ साउथ एशिया, पृ० १६७

१७९. शिशुपालवध III ८, VII १७, VIII ५१,X ८७

१८०. शिशुपालवध III,५

१८१. शिशुपालवध III,६

१८२. शिशुपालवध III ७, VII ४, VIII ४४

१८३. शिशुपालवध III १०, VI १४, VII ५, VIII ४५, घुंघरु वाली करधनी X ६२, ६३

१८४. शिशुपालवध VII १८

१८५. शिशुपालवध XV, ७

१८६. शिशुपालवध IX ४६, X २६

१८७. शिशुपालवध, VI ३७, IX ४६

१८८ शिशुपालवध IX ४६

१८९. शिशुपालवध VII २७

१९०. शिशुपालवध VII ६, २२, VIII १७

१९१. शिशुपालवध VIII, ६९

१९२. शिशुपालवध IX ५३, ७३

१९३ शिशुपालवध VIII ४१, IX ५१

१९४. वाटर्स I, पृ० १४७, १४८

१९५. इत्सिंग : ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया, अध्याय IV, VI

१९६. शिशुपालवध IX ५२

१९७. इत्सिंग : ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया–जे० तकाकुसु, अध्याय VIII

आर्थिक जीवन

अध्ययनकालीन स्रोतों से ज्ञात होता है कि इस युग की अर्थव्यवस्था सुदृण थी। शिशुपाल के द्वारका संबंधी विवरण[१] बाण के उज्जयिनी[२] तथा युआन च्वाँग ने कन्नौज[३] का जो वर्णन किया है उनसे यह स्पष्ट होता है कि उस युग के लोग अत्यधिक समृद्ध थे। महाकवि माघ ने द्वारिका पुरी की समृद्धि का तृतीय सर्ग में विस्तृत वर्णन किया है।उसके बाजारों में रत्नों की विक्री होती थी।[४] उसके बड़े-बड़े बाजारों में शंख, शुक्ति मोती, मूँगे, मरकत ओर हीरा बिकने के लिए सजाए जाते थे।[६]

७वीं शती में आप के मुख्य स्रोत कृषि, उद्योग, व्यापार व वाणिज्य थे।

कृषि :

भारत में जनता प्राचीनकाल से ही अधिकांशतः गाँव में निवास करती थी, और खेती से जीविका उपार्जन करती थी। इसी कारण प्राचीन लेखों में ग्राम शब्द का सदा प्रयोग मिलता है। इन कारणों से कृषि का महत्व भारत में हमेशा से रहा है। कालिदास के अनुसार राज्य के आर्थिक विकास में कृषि और पशुपालन का बहुत महत्व है।[७] कृषि के महत्व को समझते हुए ही बृहस्पति ने लिखा है कि राजा अनाज चुराने वाले से जितना अनाज उसने चुराया हो उसका दस गुना अन्न के स्वामी को दिलवाएऔर दो गुना राज्य स्वयं उससे दण्ड के रुप में वसूल करे।[८] उसने खेती के औजार या फसल नष्ट करने वाले व्यक्ति पर भारी जुर्माना करने का विधान अनुशंषित किया करने है।[९] कामन्दक के अनुसार जो व्यक्ति वार्ता अर्थात् कृषि, पशुपालन व वाणिज्य में निपुण हों वे कभी निर्धन नहीं हो सकते।[१०] इससे स्पष्ट है कि कृषि का इस काल में भी अत्यधिक महत्व था। शुक्र ने वार्ता के अन्तर्गत साहूकारा, कृषि, व्यापार और पशुपालन को सम्मिलित किया है।[११] परती भूमि में खेती करने वालों को प्रोत्साहन मिलता था। वैन्य गुप्त के गुणयदान

पत्र से पता चलता है कि कुछ लोगों ने राज्य से परती भूमि पर खेती करने की अनुमति मांगी थी क्योंकि उसका मूल्य कम होगा और भूराजस्व भी उस पर कम लिया जाएगा।[१२] इसी प्रकार ८वीं शती के शुक्रनीतिसार के अनुसार यदि कोई व्यक्ति नौतोड़ भूमि में खेती करे तो राजा को उस समय तक भूराजस्व नहीं लेना चाहिए जब तक उसका लाभ उसकी लागत से दूना न हो जाए।[१३] इसी में आगे लिखा है कि जो अनाज पूर्णरुप से पके हुए, चमकीले श्रेष्ठ, सूखे, नये अच्छे ढंग वाले हों और जिनकी गंध व स्वाद अच्छा हो उन्हें राजा को अपने भण्डार गृह में रखना चाहिए जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह आगामी तीन वर्ष तक प्रजा को खाद्यान्न दे सके।[१४] बाण भी थानेश्वर के वर्णन में वहाँ की कृषि व्यवस्था पर प्रकाश डालता है। वह कहता है, 'हलों से खेत जोते जा रहे थे। चारों ओर पौधों के खेत फैले हुए थे। खलिहानों में कटी हुई फसल के पहाड़लगे हुए थे।चलती हुए रहट से सिंचाई हो रही थी। धान मूँग और गेहूँ के खेत सब ओर फैले हुए थे।[१५]

युआन च्वाँग के अनुसार गेहूँ और चावल में पैदा होता था, अदरक, सरसों और कद्दू भी उगाये जाते थे। फलों में सबसे ज्यादा आम, खरबूजे, नारियल, कटहल, इमली, कठबेल के साथ-साथ अनार और सन्तरों की कद्र होती थी।[१६] युआन च्वाँग के अनुसार गंगा के किनारे तथा गंगा और ब्रह्मपुत्र के बीच की सम्पूर्ण जमीन काफी उपजाऊ थी।[१७] टम्प देश के निवासी अत्यधिक चावल और ईख का उत्पादन करते थे।[१८] गांधार देश में अत्यधिक फैलने वाली फसलों तथा फूलों का आधिक्य था। वहाँ के निवासी अत्यधिक गन्ना तथा मिस्री का उत्पादन करते थे।[१९] कश्मीर में अत्यधिक फलों तथा फूलों का उत्पादन होता था। तक्षशिला और सिंहापुर में खेतों की सिंचाई तथा खाद आदि देकर अच्छी फसलों का उत्पादन किया जाता था।[२०]

युवान च्वाँग के अनुसार जालंधर जनपद के लोग प्रचुर मात्रा में चावल तथा अन्य फसल, फूलों और फलों का उत्पादन करते थे।[२१] मथुरा के आस-पास की भूमि काफी उपजाऊ थी और वहाँ का प्रधान व्यवसाय कृषि था। इस क्षेत्र में सूक्ष्म धारीदार वस्त्र का उत्पादन भी होता था।[२२] थानेश्वर की जमीन उपजाऊ थी तथा फसलों का उत्पादन भी प्रचुर था, लेकिन अधिकतर लोग व्यापार करते थे तथा किसानों की संख्या कम थी।[२३] अहिच्छत्र देश की भूमि मुख्यतया कृषि के लिए उपयुक्त थी। कान्यकुब्ज के बारे

में युआन च्वाँग कहता है कि वहाँ के परिवार काफी धनी थे, फलों और फूलों का उत्पादन समयानुसार ही किया जाता था, फल और फूल प्रचुर थे।[२४] प्रयाग और कौशाम्बी की मिट्टी उपजाऊ थी और वहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था।[२५] अयोध्या की जमीन अत्यधिक अच्छी थी और वहाँ फसलों, फलों तथा फूलों का उत्पादन किया जाता था।[२६] वाराणसी के लोगों के पास अपार धन सम्पत्ति थी। वहाँ पैदावार प्रचुर मात्रा में होती थी, फल आदि के वृक्ष सघन थे और वहॉ पर काफी मात्रा में पेड़ पौधे थे।[२७] मगध देश की मिट्टी काफी उपजाऊ थी, वहाँ पर अत्यधिक मात्रा में बड़े-बड़े दाने वाले चावल उत्पन्न किये जाते थे। इस प्रकार के चावल उच्च वर्ग के लिए तैयार किये जाते थे।[२८]

७वीं शती के आर्थिक जीवन में कृषि के महत्व पर महाकवि माघ रचित शिशुपालवध से भी प्रकाश पड़ता है। महाकाव्य में कृषि से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है। भूमि को कृषि हेतु तैयार करने की प्रक्रिया में उल्लेख है किपहले भूमि पर हल चलाकर खेत जोतना चाहिए उसके पश्चात पाटा फेरकर एक समान कर देना चाहिए।[२९] बोवाई के पूर्व खेत में पानी लगा देने से अच्छी पैदावार होती है।[३०] खड़ी फसलों को जानवरों व पक्षियों से बचाने हेतु महिलाएँ उनकी रखवाली करती थी।[३१] अनाज ओसाने के लिए सही हवा चलने का किसान प्रतीक्षा करते थे।[३२] गुजरात-राजस्थान क्षेत्र धान की पैदावार अच्छी होती रही होगी। माघ ने बार-बार धान के खेतों खील लावा आदि का उल्लेख किया है।[३३] शिशुपालवध में अलसी[३४], इलायची[३५] सुपाड़ी[३६], नारियल[३७], अनार[३८], मटर[३९] आदि का उल्लेख भी हुआ है।

अध्ययन काल में वनों उपवनों का अत्यधिक महत्व था। ये न सिर्फ प्रमुख आर्थिक संसाधन थे बल्कि राजाओं के आमोद-प्रमोद व शिकार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। शिशुपालवध में ताड़ के वन,[४०] आंवले के वन[४१] व बाँस के वन[४२] का उल्लेख हुआ है।

भूस्वामित्व व भूमिदान :

प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत में भूस्वामित्व का क्या स्वरुप था इसके विषय में आर्थिक इतिहासकारों में अत्यधिक मतभेद है। भूस्वामित्व पर विभिन्न मतों को सामान्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(i) राजा का स्वामित्व (ii) व्यक्तिगत स्वामित्व (iii) सामूहिक स्वामित्व।

आधुनिक आर्थिक चिंतकों में कार्ल मार्क्स[४३] एवं विट फोगेल[४४] ने एशिया की भू स्वामित्व की समस्या का अध्ययन किया है।

कार्ल मार्क्स का विचार है कि एशिया की भूमि समस्या यूरोप की समस्या से भिन्न है। उसका विचार है कि एशिया की भू व्यवस्था वास्तव में सामूहिक स्वामित्य की व्यवस्था है। उसके अनुसार जिस प्रकार समुद्र के ऊपरी धरातल पर होने वाले परिवर्तनों से उसके गर्भ की स्थिरता पर कोई परिवर्तन नहीं होता उसी प्रकार राजवंशों के बार-बार परिवर्तन से ग्रामीण सामूहिक भू स्वामित्व अपने अडिग रुप में वर्तमान रहता है। अन्य अनेक विद्वानों ने धर्मशास्त्रों, नीति शास्त्रों आदि के आधार पर भारत में भू स्वामित्व को सामूहिक स्वामित्व माना है। पार्जिटर[४५], बसाक[४६], आर० सी० मजूमदार[४७]तथा हैनरीमैन[४८]आदि विद्वानों ने भी इसी धारण का समर्थन किया है।

विटफोगेल की विचारधारा सिंचाई के साधनों पर आधारित है। विटफोगल की धारणा है कि जो सिंचाई के साधनों का मालिक होगा वही भूमि का भी मालिक होगा। चूँकि राजा सम्पूर्ण सिंचाई के साधनों का मालिक होता था अत: वही सम्पूर्ण भूमि का स्वामी था। वी० ए० स्मिथ[४९], शामशास्त्री[५०], व्यूलर[५१], आदि विद्वान राजा के भू स्वामित्व के पक्ष में है।

एक अन्य विचारधारा के० पी० जायसवाल[५२], आर० एस० शर्मा[५३], बेडेन पावेल[५४], पी० एन० बनर्जी[५५] तथा लल्लन जी गोपाल[५६] की है। इन विद्वानों ने वैयक्तिक भू स्वामित्व की भावना को स्वीकारा है।

इन तीनों विचार धाराओं के परिप्रेक्ष्य में जब प्राचीन साक्ष्यों की विवेचना करते हैं तो ये विचार धाराएँ एकांगी प्रतीत होती हैं। क्योंकि एक विचारधारा अन्य दो विचार धाराओं को अनेदखा करती हैं। साक्ष्यों के आलोचनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि तीनों विचार धाराएँ प्राचीन काल से ही विद्यमान थी और परिस्थितियों व समय के अनुरुप कभी एक विचारधारा तो कभी अन्य विचारधारा का प्राधान्य रहा है। ऐतिहासिक काल में, जब से सामाजिक जीवन में वैयक्तिक भावना को प्रधानता दी जाने लगी तब से ही राजा के भू स्वामित्व के सिद्धान्त के साथ व्यक्तिगत, स्वामित्व का सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया जाने लगा। पूर्व मीमांसा से ज्ञात होता है कि राजा यज्ञ के पश्चात भूमि के अतिरिक्त सभीवस्तुओं का

दान कर सकता था।[५७]इस प्रकार व्यवस्थाकारों में भूमि पर राजा के सार्वभौम अधिकार को परिसीमित करने की अवधारणा लोकप्रिय हो रही थी। परवर्ती व्यवस्थाकारों ने वैयक्तिक सिद्धान्त पर विशेष बल दिया।ध्यातव्य है कि इसके साथ ही परम्परा लोकमत की प्रतिष्ठा भी बनी रही और राज्य (राजा) के भूमि स्वामित्व सिद्धान्त का परित्याग भी नहीं कर दिया गया। अर्थशास्त्र में राजा तथा व्यक्तिगत स्वामित्व में आने वाली दोनों तरह की भूमि के संकेत मिलते हैं। अर्थशास्त्र में जहाँ राजाओं को सम्पूर्ण भूमि का स्वामी तथा कृषकों से भूमि छीनने का अधिकार दिया गया है वहीं व्यक्तिगत रुप से खेती करने के उदाहरण भी मिलते हैं।[५८] धरसेन द्वितीय के ताम्रपत्र में सामूहिक स्वामित्व के संकेत मिलते हैं।[५९] नारद की व्यवस्थानुसार राजा को व्यक्तियों के गृह एवं खेत के ऊपर स्वामित्व की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अन्यथा समाज में अव्यवस्था फैल सकती है।[६०] मेधातिथि राजा को ही भूमि का स्वामी मानते हैं।[६१] परन्तु इससे उनका आशय राजा की भूमि पर सामान्य प्रभुसत्ता से है भू स्वामित्व से नहीं। राजा सिद्धान्त रुप से सम्पूर्ण भूमि का स्वामी माना जाता था परन्तु व्यवहार में उसका स्वामित्व प्रभावी नहीं था। व्यक्तिगत स्वामित्व की धारणा अन्य धारणाओं के साथ सापेक्ष थी और ७वीं शती तक आते-आते व्यक्तिगत स्वामित्व की धारणा विकसित हो रही प्रतीत होती है।

राजा सम्पूर्ण राज्य का रक्षक है और इसीलिए वह सम्पूर्ण राज्यान्तर्गत भूमि की रक्षा करता है। इस दायित्व के बदले उसे कर लगाने का अधिकार माना गया है। परन्तु इस अधिकार से राजा का कृषि भूमि पर स्वामित्व सिद्ध नहीं होता। राजा किसी किसान की भूमि केवल कर न देने की स्थिति में ही छीन सकता था। प्रजा को अपनी भूमि बेचने, दान देने तथा बन्धक के रुप में रखने का अधिकार था। ब्राह्मणों को लगातार भूमिदान मिलते रहने के कारण व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रक्रिया बढ़ती रही। भूमि पर उनके अधिकार राजकीय शासन पत्रों द्वारा जिनमें भोगाधिकार प्रदान किये गये थे, सिद्ध होते हैं।[६२] यह दान वंशानुगत तथा करमुक्त होते थे व्यक्तिगत स्वामित्व को सिद्ध करते है।

पूर्व मध्य काल में दान देने का अत्यधिक महत्व था। दान देना एक पुनीत कार्य समझ जाता था। युआन च्वॉग के विवरण से पता चलता है कि हर्ष ने अपनी सारी सम्पत्ति यहाँ तक कि सामन्तों द्वारा दी गयी सम्पत्ति भी दान में दे दी थी।[६३] इसी प्रकार शिशुपालवध में उल्लेख है कि युधिष्ठिर ने अपनी व

सामन्तों द्वारा प्रदत्त सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान दे दी थी ।[६४] शिशुपालवध के अनुसार ये दान व सिर्फ विद्वान ब्राह्मणें को दिये गये थे बल्कि ऐसे ब्राह्मणों भी दिये गये थे जो उसके पात्र नहीं थे ।[६५] मधुबन ताम्र पत्र से हर्ष द्वारा भूमि दान देने का उल्लेख मिलता है ।[६६] इस प्रकार की भूमि से समस्त अधिकार दानग्राही को मिल जाते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में कुछ लोगों द्वारा जालसाजी द्वारा भूठे दान पत्र बनाये होंगे । डॉ० व्यूलर के अनुसार हर्ष काल में छद्य ग्रामीण शासन का प्रचलन था । इन्हीं कारणों से सम्राट हर्ष को दान पत्रों पर अपनी मुहर लगानी पड़ती थी । वामरथ्य ने सोमकुण्डिका नामक ग्राम के पुराने शाही अनुदान पत्र को नष्ट करके छद्य शाही अनुदान पत्रक की शक्ति के द्वारा वहाँ की शासन का पूर्ण आनन्द उठाया ।[६७] शिशुपालवध में भी युधिष्ठिर द्वारा ब्राह्मणों को हस्ताक्षर युक्त भूमिदान पत्रक देने का उल्लेख है ।[६८]

सिंचाई व्यवस्था :

भारत में मानसून की वर्षा से खेती के लिये पर्याप्त पानी मिल जाता था । इसके अतिरिक्त नदियों से भी सिंचाई की जाती थी ।मध्य भारत, पश्चिमी भारत और दक्षिणी भारत में सिंचाई के कृत्रिम साधनों द्वारा भूमि की उर्वरता बढ़ाने के उपाय किये जाते थे ।

प्राचीन काल से ही भारतीय शासक नहर, तालाब, कुएँ, जलाशय इत्यादि के निर्माण का दायित्व वहन करते थे । महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने गिरनार में एक झील का निर्माण कराया था,[६९] बाद में रुद्रदामन[७०] व स्कन्दगुप्त[७१] ने उसी का पुनर्निमाण करवाया था । अमरकोश से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में नदियों से नहरें निकाली गयी थी ।[७२] कामन्दक ने लिखा है जिस देश में अच्छी फसलें होती हैं, जिसमें पर्याप्त खानें हैं और जो वर्षा के पानी पर सिंचाई के लिए निर्भर नहीं है उसमें जनता सुख और समृद्धि का जीवन बिताती है ।[७३] इससे स्पष्ट है कि इस युग में कृषि के लिए सिंचाई का कितना महत्व था । काश्मीर के शासक ललितादित्य ने नदियों के पानी का सिंचाई के लिए उपयोग किया था ।[७४] ९४६ ई० के एक अभिलेख में रहट और चमड़े के चरसों से सिंचाई का स्पष्ट उल्लेख है ।[७५] राजस्थान में मण्डोर की एक बावड़ी से प्राप्त वि० सं० ७४२ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण चाणक के पुत्र माधू ने इस बावड़ी का निर्माण करवाया था ।[७६] शिशुपालवध

में नाली बनाकर पानी निकालने की व्यवस्था का उल्लेख है।[७७]

उद्योग :

प्राचीनकाल से ही भारत का प्रमुख व्यवाय कृषि रहा है परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्योगों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। सातवीं शती के साक्ष्यों से उस समय के उद्योगों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। माघ और बाण के विवरणों तथा युआन च्वाँग के यात्रा वृत्तान्तों से तत्कालीन उद्योगों की अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। युआन च्वाँग के अनुसार उस समय युवाओं को पाँच प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिसमें दूसरी विद्या शिल्प विद्या थी।[७८] इस प्रकार लोग प्रारम्भ से ही विभिन्न उपयोगी कलाओं का अध्ययन करते थे।इसी कारण शिल्प और अन्य उपयोगी कलाओं में कुशल होते थे। शिल्पों का संभवतः पैतृक स्वरुप था। युआन च्वाँग के यात्रा विवरणों से ज्ञात होता है कि विशिष्ट स्थान के लोग अपनी विशिष्ट कला के प्रति निष्ठावान थे।[७९]

भारत के सर्वाधिक प्राचीन उद्योगों में वस्त्र उद्योग है। युआन च्वाँग, बाण के हर्षचरित, माघ के शिशुपालवध आदि स्रोतों से पता चलता है कि वस्त्र उद्योग ७वीं शती में अत्यधिक समुन्नत अवस्था में था। इस काल के कपड़ों की सूची में सूती, रेशमी, लाइनेन, मलमल, ऊनी आदि वस्त्र शामिल थे। बाण ने हर्षचरित में लिखा है कि राज्य श्री के विवाह के समय क्षुमा, रुई, दुकूल, लालातन्तु, मलमल और नेत्र रेशम के वस्त्र बनाये गये थे जो साँप की केंचुली के समान हल्के, केले के खम्भे के भीतरी परत के समान कोमल, साँस की हवा से भी उड़ जाने वाले एवं केवल छूकर ही अनुमान करने योग्य थे।[८०] युआन च्वाँग ने लिखा है कि भारत में रेशम, रुई, क्षुमा और ऊन के कपड़े बनाये जाते थे।[८१] हर्षचरित में रंगीन वस्त्र (पुलकबन्ध) और फूलदार रेशम (पुस्पपट्ट) का उल्लेख है।[८२] महाकवि माघ ने शिशुपालवध में यादव रमणियों द्वारा पहने गये अत्यन्त सूक्ष्म व चिकने वस्त्रों का उल्लेख किया है।[८३] इस युग में साड़ी, नीवी, दुपट्टा, लहंगा, कंचुकी आदि स्त्रियों के प्रमुख वस्त्र थे। शिशुपालवध में बनुकर द्वारा साड़ी बनाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है।[८४] इस युग के साक्ष्यों से पता चलता है कि विभिन्न नगरों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र बनाने में श्रेष्ठता प्राप्त की थी। शान्तिदेव के शिक्षा समुच्चय से हमें ज्ञात होता है कि इस समय वाराणसी श्रेष्ठ रेशम के लिए प्रसिद्ध थी। पुण्ड्र देश का क्षुमा का कपड़ा श्रेष्ठ माना जाता था। युआन

च्वॉग ने लिखा है कि मथुरा में बढ़िया किस्म का धारीदार सूती कपड़ा बनता था।[८५] उसी ने लिखा है कि काश्मीर में सफेद लिनन बनाई जाती थी। हर्षचरित से ज्ञात होता है कि इस काल में कामरुप में भी अच्छा कपड़ा बनाया जाता था। वहाँ के शासक भाष्कर वर्मा ने रेशम (जातिपट्ट), क्षुमा से बनाया कपड़ा और छींटदार कपड़े हर्ष को उपहार में भेजे थे।[८६] उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय का वस्त्र उद्योग उन्नति पर था तथा सामान्य जन से लेकर राजागण तक के वस्त्रों के उत्पादन की क्षमता तत्कालीन भारतीय वस्त्र उद्योग में थी। युआन च्वाँग के कथनानुसार उस समय लोग सिलाई नहीं जानते थे।[८७] परन्तु युआन च्वाँग का यह कथन असत्य प्रतीत होता है। गुप्त कालीन मुद्राओं, वस्त्रों यथा बारबाण (कोर) कंचुन और अजन्ता की कला से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय सिलाई का प्रचलन था।[८८] शीत ऋतु में लोग ऊनी वस्त्र धारण करते थे।शिशुपाल में शीत ऋतु में ऊनी वस्त्र ओढ़ने का उल्लेख हुआ है।[८९] मोटे सूती कपड़े से पर्दे व तम्बू बनाये जाते रहे होंगे। शिशुपालवध में कपड़े के बने तम्बू जो कि अस्थायी शिविर का काम करते थे का उल्लेख हुआ है।[९०] इन शिविरों में हल्के पर्दों का उपयोग किया जाता था जिससे कि शिविर के भीतर हवा भी आती जाती रहे।[९१]

काष्ठ उद्योग भी अति प्राचीन था। काष्ठ उद्योग का बृहत्त स्तर पर प्रयोग मौर्य काल से ही प्रारम्भ हो गया था जिसके पुरातात्विक साक्ष्य पाटलिपुत्र से मिलते हैं।[९२] काष्ठ निर्मित जहाज, रथ और बरतनों आदि के उल्लेख हमें प्राचीन काल से ही मिलते हैं।७वीं शती में रथों का युद्ध में प्रयोग सीमित हो गया थ परन्तु राजा की सवारी इसी पर निकलती थी। युद्ध स्थल में सेना के रथों की मरम्मत हेतु बढ़ई साथ में युद्ध स्थल में जाता था। शिशुपालवध में ऐसा ही एक उल्लेख मिलता है।[९३] युआन च्वाँग द्वारा काठ के चप्पलों का उल्लेख हुआ है।

भारत में चमड़ा उद्योग का इतिहास काफी प्राचीन है। चीते की खाल, हिरन की खाल और कुछ अन्य पशुओं की खालें तपस्वी काम में लाते थे। वे इनको पहनते भी थे तथा इनका आसन के रुप में भी उपयोग होता था। माघ ने नारद को सुन्दर मृग चर्म पहने हुए ही चित्रित किया है।[९४] चमड़े का उद्योग भारत में मौर्य काल से ही प्रतिष्ठित था।[९५] युआन च्वाँग के अनुसार केरल के लोग जंगली-जानवरों के बालों से सजे रहते थे।[९६] संभवत: यह बालों की आधुनिक विग से मिलता जुलता कोई चमड़े का वस्त्र

रहा होगा। युआन च्वाँग ने हर्ष द्वारा दिये गये उपहारों में केवल एक लबदा लिया था जो श्वेत चर्म से निर्मित था तथा जिसका नाम हो-ला-ली था। इसकी विशेषता यह थी कि यह वर्षा से बचाता था।[९७]

हाथी दाँत का काम भारत में काफी प्राचीन समय से ही प्रसिद्ध था। गुप्त काल में हाथी दाँत से खूँटी,[९८] पीढ़े[९९], मुहरे[१००] आदि बनाई जाती थी। हर्षचरित से पता चलता है कि हर्ष को भाष्कर वर्मा द्वारा दिये जाने वाले उपहारों में जल हस्तियों के मस्तक से निकलने वाले मुक्ताफल से जड़े हुए हाथी-दाँत के कुण्डल भी थे।जल हस्ती से तात्पर्य दरियाई घोड़े से है जिसके मस्तक की हड्डी को काटकर संभवतः गोल गुटिया या मोती बनाये थे।[१०१] हर्षचरित में बाण ने हर्ष के सिंहासन का वर्णन करते हुए बताया है कि इसके पावे हाथी दाँत से निर्मित थे।[१०२] कादम्बरी में भी कई स्थानों पर हाथी दाँत से युक्त वस्तुओं का विवरण मिलता है।[१०३]

७वीं शती तक आते-आते भारत में धातु उद्योग अत्यधिक प्रतिष्ठित हो चुका था। अभिधान रत्नमाला[१०४] और भविष्य पुराण[१०५] में धातुओं में ताँबा, पीतल, लोहा, सीसा, टिन, चाँदी और सोने के नाम दिये है। अभिधान रत्नमाला से ही हमें ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र.पीतल की वस्तुओं और बंगाल टीन की वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध थे।[१०६] युआन च्वाँग के कथनानुसार धातु पिघलाकर उनसे बर्तन बनाना कुछ परिवारों का पुश्तैनी व्यवसाय था। ये बर्तन सोने, चाँदी, ताँबे, लोहे, पीतल और कस्कुट अदि के होते थे।[१०७] लड़ाई के हथियार धातुओं को पिघलाकर बनाये जाते थे। अग्निपुराण में पाँच से अधिक ऐसे स्थानों का उल्लेख है जो तलवारें बनाने के लिए प्रसिद्ध थे।[१०८] हर्षचरित से ज्ञात होता है कि तलवारों पर ऐसा पानी चढ़ाया जाता था कि उनमें दर्पण की भाँति चेहरा भी देखा जा सकता था। ऐसा कहा जाता है कि रानी यशोमती ने अपना मुख तलवार की धार में देखा था।[१०९]

वाराणसी में युआन च्वाँग ने एक देव की मूर्ति देखी थी जो करीब १०० फीट ऊँचाई वाले मन्दिर में स्थापित थी।[११०] नालन्दा में वह एक दूसरे ताँबे की बुद्ध भगवान की मूर्ति का वर्णन करता है जो करीब ८० फीट ऊँची थी।[१११] हर्षचरित में राज्यश्री के विवाह के समय का विवरण मिलता है उसके अनुसार विवाहोत्सव हेतु देश, विदेश से चतुर व योग्य शिल्पियों के झुंड के झुंड बुलवाये गये थे उन शिल्पियों

में अनेकों सुनार थे, जो सोने को पिघलाकर अनेकों आभूषण बना रहे थे।[११२] इसी क्रम में बढ़ई, चर्मकार, अभिकल्पक, मूर्तिकार, हाथी दाँत का काम करने वाले कलाकार, रंगरेज आदि अपना-अपना कार्य करते हुए बताये गये हैं।[११३]

आभूषणों के प्रयोग के साक्ष्य भारत में सैन्धव सभ्यता के काल से ही मिलने लगते हैं। आभूषणों का प्रयोग पुरुष व स्त्री दोनों भरपूर करते थे। आभूषण बनाने की कला एक प्रतिष्ठित व्यवसाय थी। बाण के दोस्तों में एक हैरिक भी था जो हीरा काटने की कला में निपुण था।[११४] युआन च्वाँग के विवरण से इस व्यवसाय का पता चलता है। मोतियों के कण, आभूषण बनाने, मुकुट, पलंग राजगद्दी को सजाने के काम आते थे। यहाँ तक कि हाथियों को सजाने में भी इनका उपयोग होता था।[११५] बाण से पता चलता है कि चन्द्रापीड़ हीरे-मोती तथा अन्य बहुमूल्य पतथरों को पहचानने की कला में अत्यधिक निपुण था।[११६] स्वर्ण आभूषणों में मणियों को जड़ने से उनकी शोभा कई गुना बढ़ जाती थी।[११७] करधनी, हार, कर्णकुण्डल, केयूर कङ्कण आदि प्रमुख आभूषण थे। समुद्र से मोतियों के मिलने का उल्लेख माघ ने किया है।[११८] पर्वतों से बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते थे जिनका व्यापार हुआ करता था।[११९]

७वीं शती में नमक भी की प्रमुख औद्योगिक वस्तु थी। युआन च्वाँग के अनुसार नमक उद्योग सौराष्ट्र में था जहाँ नमक समुद्र के जल को छानकर बनाया जाता था।[१२०] शिशुपालवध नमक व्यापारियों का उल्लेख करता है जो गाँव-गाँव घूमकर नमक बेचा करते थे। ये नमक व्यापारी तौलने में भी कभी-कभी बदमाशी करते थे। नमक व्यापार मुख्यतः वस्तु विनिमय पर आधारित थे।[१२१]

व्यापार

यद्यपि माघ युगीन राजनीतिक परिस्थितियाँ विषम थी, देश छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था तथा उनमें आपस में सतत् संघर्ष रहता था फिर भी आन्तरिक व विदेशी व्यापार समुचित ढंग से चलता रहा। अनेक विद्वानों का मत है कि सामन्ती प्रवृत्तियों के कारण ७वीं शती में भारत का व्यापार काफी कम हो गया था, परन्तु विभिन्न प्रकार के उद्योगों के विकास से यह निर्विवाद रुप से स्पष्ट है कि इस युग में भी व्यापार तथा वाणिज्य फलता-फूलता रहा। श्रेणियों की अनेकों संस्थाएँ पृथक-पृथक स्वतंत्र रुप से कार्य करती रहीं। लेखों में हट्टमति, शौल्किक तथा तारिक नामक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है। शौल्किक बाजार

से चुँगी ग्रहण करता था और तारिक नदियों के घाट पर कर वसूल करने के लिये नियुक्त किया जाता था। दामोदर पुर के ताम्रपत्र में बाजार के निमित्त जमीन खरीदने का वर्णन मिलता है।[१२२] इसलिए हट्टिका से बाजार संबंधी कर समझा जा सकता है। वस्तुओं के क्रय-विक्रय के निमित्त स्थान-स्थान पर बाजार थे।सड़क, नदियों व समुद्र मार्ग से वस्तुओं का व्यापार हुआ करता था। युआन च्वाँग के विवरणों से स्पष्ट है कि व्यापार व वाणिज्य वैश्य जाति के लोगों का प्रमुख व्यवसाय था।[१२३] इसी चीनी यात्री के अनुसार प्रत्येक शहर में सड़क के दोनों किनारों पर दुकानें लगती थी।[१२४] सतत् युद्ध व संघर्ष के युग में व्यापारीगण सेना के साथ-साथ चलते थे तथा जहाँ भी सेना पड़ाव डालकर शिविर बनाती थी, व्यापारीगण बाजार सजा लेते थे।[१२५] ये बाजार लोगों की आवश्यकता की वस्तुएँ उपलब्ध कराते थे। युद्ध या किसी अन्य कारण से यदि व्यापारी की हानि हो जाती थी तो व्यापारी को ही इसका नुकसान उठाना पड़ता था।[१२६]

इस युग में अनेक नगर अपने वैभव, व्यापार, उद्योग व वाणिज्य के लिए प्रसिद्ध थे। नगरों का अलग-अलग महत्व था। तीर्थस्थान, राजधानी तथा व्यापारिक केन्द्रों व मार्गों में नगर बस जाते थे। जो नगर समुद्र के किनारे स्थित थे उनका वैभव व्यापार पर अवलम्बित रहता था। भीतरी देश से सामग्री समुद्र तट पर लायी जाती थी। और वहाँ से नावों द्वारा विदेशों को ले जायी जाती थी। इसी प्रकार विदेशों से वस्तुएँ बन्दरगाह पर लाई जाती थी तथा वहाँ से स्थल मार्ग द्वारा पूरे देश में पहुचायी जाती थी। समुद्र तट पर स्थित कोई नगर या बन्दरगाह अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण विशेष महत्व रखता था। बन्दरगाहों पर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। महाकवि माघ के युग में भीनमाल और गुजरात का समुद्री तट विदेशी व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। अधिकतर तटीयप्रदेश के लोग ही विदेशी व्यापार में संलग्न थे। ये व्यापारीगण अपने देश की सामग्री जिनकी विदेशों में माँग थी नाव से विदेश ले जाकर बेचते थे तथा विदेशों की वो वस्तुएँ जिनकी अपने देश में माँग थी बाहर से लाकर यहाँ बेचते थे। इस प्रकार व्यापार में वह अपनी बुद्धि व परिश्रम से अधिक लाभ कमाते थे।[१२७] माघ ने विदेशी प्रजाति के घोड़ों का उल्लेख किया है[१२८], जो कि निश्चित ही विदेशें से आते होंगे क्योंकि भारत में उन्नत किस्म के घोड़ों का अभाव था।

माघ युगीन उत्तरी भारत का केन्द्र धीरे-धीरे ऊपरी गंगा घाटी का क्षेत्र होता जा रहा था। गंगा नदी व्यापार के लिए सहायक थी क्योंकि इस युग के प्रमुख शहर गंगा घाटी क्षेत्र में ही स्थित थे। युआन च्वॉग का मत है कि प्राचीन शहरो-श्रावस्ती, कपिलवस्तु आदि का पतन हो रहा था तथा थानेश्वर व कान्यकुब्ज आदि शहर विकसित हो रहे थे। बाण कहता है कि थानेश्वर नगरी प्रार्थियों के लिए 'चिन्तामणि भूमि' तथा व्यापारियों के लिए 'लाभभूमि' थी।[१२९] मथुरा में एक प्रकार का सुन्दर बारीक और धारीदार सूती कपड़ा बनता था।[१३०] बनारस के लोगों के पास अपार धन सम्पत्ति थी और उनके घर बहुमूल्य पदार्थों से भरे पड़े थे।[१३१] कान्यकुब्ज जनपद भी दुष्प्राप्य वस्तुओं के लिए विख्यात था जो वहाँ दूर देशों से एकत्रित की जाती थी।[१३२] अयोध्या के लोगों की प्रशंसा प्रयोगात्मक शिक्षा के लिए की गयी है।[१३३] माघ द्वारा द्वारिका नगरी के वर्णन में तत्कालीन समुद्र तटीय व्यापारिक केन्द्रों का चित्र मिलता है। व्यापारीगण राज्य के लिए शुभ माने जाते थे तथा राजा स्वयं उनके महत्व को पहचानते हुए उनका अभिवादन करता था।[१३४] माघ युगीन पश्चिमी भारत उस समय बहुमूल्य मणियों व रत्नों के व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। माघ के वर्णन से स्पष्ट है कि ये रत्न पर्वतों व समुद्र से मुख्यत: प्राप्त किये जाते थे।[१३५] रत्न के व्यापारी अत्यधिक धनवान होते थे तथा सम्पत्ति को सुरक्षा हेतु बड़ी-बड़ी लोहे की तिजोरी में रखा जाता था।[१३६] युआन च्वॉग के अनुसार वलभी के लोग बड़े धनी और उन्नतिशील थे, गुर्जर तथा सूरत के लोग पेशेवर व्यापारी कहे गये हैं।[१३७] सिंधु देश में सोना और चाँदी निकलती थी। युआन च्वाँग के ही अनुसार सोना, चाँदी, कस्कुट, सफेद जस्ता और स्फटिक ऐसी वस्तुएँ भी बहुत प्रचुरता के साथ उत्पन्न होती थी। अनेक प्रकार की वस्तुओं का विनिमय तथा क्रय-विक्रय अन्य पदार्थों के साथ होता था। इस तरह भारतवर्ष एक समृद्धिशाली देश था। देश की इस अतुल सम्पत्ति का आंशिक कारण विदेशों के साथ उस समय का व्यापार था। यह व्यापार स्थल तथा जल मार्ग दोनों से होता था। युआन च्वाँग ने कपिशा का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ भारत के प्रत्येक कोने से व्यापारिक सामग्रियाँ पहुँचा करती थी। कपिशा से विदेश, ईरान तथा यूरोप तक मार्ग जाता था जिस पर भारत के व्यापारी आया जाया करते थे। काश्मीर से होकर मध्य एशिया तथा चीन तक भारत का व्यापार होता था।[१३८] जलमार्ग उन विभिन्न बन्दरगाहों से होकर जाता था जो गुजरात, मालाबार, चोल देश, आंध्र, कलिंग तथा समतट के तटों पर स्थित थे। सबसे अधिक प्रयोग में आने वाला मार्ग बंगाल की खाड़ी में ताम्रलिप्ति से था। ताम्रलिप्ति के समृद्धिशाली नगर में

अनेक बहुमूल्य पदार्थ भरे पड़े थे। चीनी यात्री इत्सिंग जब ६७३ में ताम्रलिप्ति बंदरगाह पर उतरकर पश्चिम दिशा की ओर रवाना हुआ तो कई सौ व्यापारी उसके साथ बोध गया तक गये थे।[१३९] अयोध्या के व्यापारियों का ताम्रलिप्ति तक जाने के आभिलेखिक साक्ष्य उपलब्ध है।[१४०] इत्सिंग के मार्ग वर्णन से ज्ञात होता है कि ७वीं शती के उत्तरार्ध में अनेक चीनी यात्री इसी जलमार्ग से भारत आते जाते रहे।[१४१]

इन विवरणों से स्पष्ट है कि इस युग लोगों की अवस्था अच्छी थी। माघ व बाण के साहित्य युआन च्वॉग के यात्रा वर्णन से इस बात की पुष्टि होती है। कन्नौज में समृद्धिशली कुलों की संख्या अधिक थी। ऊँची-ऊँची इमारते सुन्दर उद्यान तथा जल के सरोवर सम्पत्ति के सूचक हैं।[१४२] बाण का कथन है कि उज्जयिनी के निवासी कोट्याधीश थे।[१४३] उसके बड़े-बड़े बाजारों में शंख, शुक्ति, मोती मूँगे, मरकत तथा हीरे बिकने के लिए सजाये रहते थे।[१४४] माघ ने द्वारिकापुरी का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसके बाजारों में दुकानों पर अद्वितीय बहुमूल्य रत्नों के ढेर लगे थे। उसकी अट्टालिकाएँ, परकोटे बहुत ही ऊँचे तथा अत्यन्त चिकने (पालिशदार) थे और उन पर बनाये गये चित्र सजीव से प्रतीत होते थे।[१४५]

देश की आर्थिक उन्नति में सिक्कों का प्रमुख स्थान है। इनके द्वारा विनिमय का कार्य सुगम हो जाता है। गुप्त राजाओं का सम्पूर्ण भारत पर एक क्षत्र राज्य व समुन्नत व्यापार था जिसके कारण गुप्त कालके सर्वाधिक सिक्के प्राप्त होते है। गुप्त साम्राज्य के विघटन के उपरान्त सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया और इन राज्यों के राजाओं ने अपनी-अपनी सुविधा व सामर्थ्य के अनुरुप सिक्के ढलवाए। इन परिस्थितियों में सम्पूर्ण भारत के लिए एक मुद्रा प्रणाली न बन सकी जबकि गुप्त काल में सर्वत्र एक प्रकार व एक मूल्य के सिक्के चलते थे।

७वीं शती की मुद्राएँ गुप्त मुद्राओं की नकल थी परन्तु रुप व शुद्धता में गुप्त मुद्राओं से निम्न कोटि की थी। सोने चाँदी के सिक्कों का उपयोग बड़े-बड़े व्यापार में होता था।[१४६] छोटे व्यापार में कौडियों व वस्तु विनिमय का प्रयोग होता था।[१४७] ७वीं शती के अनेक सिक्के उत्तरी भारत में मिले हैं। डॉ० हार्नले को एक सिक्का हर्ष का मिला था जिस पर हर्षदेव खुदा है।[१४८] बंगाल में जयनाग[१४९], शशांक और समाचार देव के सोने के सिक्के मिले हैं।[१५०] शशांक के कुछ सिक्के ताँबे के थे जिन पर चाँदी

का खोल चढ़ा था, और उस पर सोने का पानी था।[१५१] शशांक ने चाँदी के के कोई सिक्के नहीं चलाये।[१५२] इस काल में चाँदी के सिक्कों का प्रचलन था। प्रभाकर वर्धन और हर्षवर्धन के चाँदी के सिक्के मिले है।[१५३] प्रभाकरवर्धन के सिक्कों पर प्रतापशील और हर्षवर्धन के सिक्कों पर शिलादित्य शब्द खुदे है। बाण ने हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन का उपनाम प्रतापशील दिया है[१५४], और युआन च्वाँग ने हर्ष का उपनाम शिलादित्य दिया है। महाकवि माघ ने वस्तु विनिमय का उल्लेख करते हुए लिखा है कि नमक का व्यापारी लोगों से अनेक वस्तुएँ लेकर बदले में नमक देता है।[१५५]

संदर्भ

१ शिशुपालवध, III ३२-६२

२. अग्रवाल वा० श० : कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, अनु० ४४

३ वाटर्स, I, पृ० ३४०

४ शिशुपालवध III, ३८

५. काले : कादम्बरी, पृ० ८९

६ काले : कादम्बरी, पृ० ८४

७. रघुवंश, XVI, २

८. बृहस्पति XVII, २३-२४

९ बृहस्पति XVII, ५

१० नीतिसार, XIV

११. शुक्रनीति सार I, ३११-१२

१२. ए० इं० XV, पृ० ११३

१३. शुक्रनीति सार IV, २४२-४४

१४ शुक्रनीति सार IV, २७-२९

१५. हर्षचरित III, १६०

१६. वाटर्स, I, पृ० १७८

१७. वही I, पृ० १७७

१८. वही I, पृ० १८१

१९. वही I, पृ० १९९

२०. वही I, पृ० २४०-२४८

२१ वही I, पृ० २९६

२२ वही I, पृ० ३०१

२३. वही I, पृ० ३१४, ३१८

२४ वही I, पृ० ३४०

२५ वही I, पृ० ३६६, ३७३

२६ वही I, पृ० ३५५

२७. वही I, पृ० १७७

२८ वही I, पृ० १७७-७८

२९. शिशुपालवध XII-२१

३०. शिशुपालवध XIV-३४

३१ शिशुपालवध XII-४२

३२. शिशुपालवध XIV-७

३३. शिशुपालवध XIII-३७

३४ शिशुपालवध III-१७

३५. शिशुपालवध III-७९

३६ शिशुपालवध III-८१

३७. शिशुपालवध III-८१

३८. शिशुपालवध XVII-१४

३९. शिशुपालवध XII-२१

४०. शिशुपालवध III-८०

४१. शिशुपालवध IV-१४

४२ शिशुपालवध XII-५१

४३. लिक्थिम जार्ज, मार्क्स एण्ड एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन, सेन्ट एंटनीज पेपर्स, न० १४

४४. विट फोगेल, ओरिएन्टल डिस्पारिज्म, अध्याय ९

४५ इं० ए०, भाग ३९, पृ० २१४

४६. वही, पृ० १९५

४७. मजूमदार आर० सी०, कारपोरेट लाइफ इन एंशियेन्ट इंडिया, पृ० १८६

४८. हैनरीमैन, विलेज कम्यूनीटीज इन ईस्ट एण्ड वेस्ट, पृ० ९१-९४

४९. स्मिथ बी० ए०, अर्ली हिस्टी ऑफ इण्डिया, पृ० १३७

५० शामा शास्त्री, कौटिल्यीय अर्थशास्त्र, पृ० १४४

५१. शर्मा, राम शरण, भारतीय सामन्तवाद, पृ० १३९

५२ जायसवाल, के० पी०, हिन्दू पालिटी, पृ० ३४३

५३ शर्मा आर० एस०, भारतीय बसन्तवाद, पृ० १३९-१६०

५४. पावेल बेडेन, इन्डियन विलेज कम्यूनिटीज, पृ० २, ३६

५५. बनर्जी पी० एन०, पब्लिक एडमिनिस्टफेशन इन ऐन्शियेन्ट इंडिया, पृ० १७९

५६. गोपाल लल्लन जी, ओवरशिप ऑफ एग्रीकल्चर लैंड इन एंशियेन्ट इन्डिया, पृ० २४०-६३

५७. पूर्व मीमांसा, ६/७/३

५८ अर्थशास्त्र, ३.९.१८

५९. हेनरीमेन, विलेज कम्युनिटीज इन ईस्ट एण्ड वेस्ट, पृ० ९१-९४

६०. नारद स्मृति, ९/४२

६१ मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका, ८/३९

६२ शर्मा आर० एस०, भारतीय सामन्तवाद, पृ० १०९

६३. बील, लाइफ ऑफ युआन च्वाँग, पृ० १८६-१८७

६४ शिशुपालवध, XIV-४०

६५. शिशुपालवध XIV, ४७

६६. एपिग्राफिक इंडिका I, नं० ११, पृ० ७२

६७. एपिग्राफिक इंडिका I, नं० ११, पृ० ७१

६८. शिशुपालवध, XIV, ३६

६९. एपिग्राफिक इंडिका, VIII, पृ० ४२

७०. एपिग्राफिक इंडिका, VIII, पृ० ४२

७१ का० इ० इं०, III, पृ० ५०

७२. अमरकोश, ९, ३६, पृ० ६७

७३. नीतिसार, VIII, ४१-४२

७४. राज तरंगिणी, IV, १९१

७५. एपिग्राफिक इंडिका VIII, पृ० १८२

७६.	एडमिनिस्टफेटिव रिपोर्ट ऑफ आक्यॉलोजिकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर १९३४, पृ० ५
७७.	शिशुपालवध XVI, ५१
७८	वाटर्स, I, पृ० १५४
७९.	वाटर्स, I, पृ० १९९, २२५, ३२२
८०	हर्षचरित, IV, पृ० २४५
८१	वाटर्स, I, पृ० १४८
८२.	हर्षचरित, I, ५६
८३.	शिशुपालवध, VIII, ६५
८४.	शिशुपालवध, II, ७४
८५.	वाटर्स, II, पृ० ३१०
८६	हर्षचरित VIII, पृ० ३८६
८७	वाटर्स I, पृ० १५१
८८.	सिंह पारसनाथ, हर्षकालीन समाज, पृ० ४९
८९	शिशुपालवध, VI, ५८
९०.	शिशुपालवध, V, २१, ६६
९१.	शिशुपालवध, V, २२
९२	आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९१२-१३, पृ० २३
९३.	शिशुपालवध XII-२५
९४.	शिशुपालवध I ६, ८
९५.	शास्त्री के० ए० नीलकण्ठ, एज ऑफ दि नन्दाज एण्ड मौर्याज, पृ० २६६
९६.	बील, I, पृ० ७५
९७.	जीवनी, पृ० १८९
९८	कामसूत्र १, ४, ५-१५
९९.	रघुवंश, १७, २१
१००.	आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट १९११-१२, पृ० ४८
१०१	हर्षचरित, VII, पृ० ३८८
१०२.	हर्षचरित, II, पृ० ११९
१०३.	कादम्बरी, काले, पृ० ९६

१०४. अभिधान रत्नमाला, II, १५-१९

१०५ भविष्य पुराण, उद्धृत परिभाषा प्रकाश, ११५

१०६ अभिधान रत्नमाला, II, १५ से आगे

१०९. वाटर्स, I, पृ० १५२, १७८

१०८. अग्निपुराण, २४५ के आगे

१०९ हर्षचरित, IV, पृ० २१६

११०. वाटर्स, II, पृ० ४७

१११. वाटर्स, II, पृ० १८१

११२. हर्षचरित, IV .पृ० २४३

११३. हर्षचरित, IV, पृ० २४३-२४५

११४ हर्षचरित, I, पृ० ७४

११५ हर्षचरित का० रा०, पृ० २१५

११६. रिडिंग : कादम्बरी, पृ० ६०

११७. शिशुपालवध, III, २-७

११८ शिशुपालवध, III, ७३

११९. शिशुपालवध, IV, ११

१२०. वाटर्स, II, पृ० २४१

१२१. शिशुपालवध, X-३८

१२२. एपिग्राफिक इंडिका, XV, पृ० १३३

१२३. वाटर्स, I, पृ० १६८

१२४. बील, II, पृ० २०५

१२५. शिशुपालवध, V २४

१२६ शिशुपालवध, XII.४८

१२७ शिशुपालवध, III, ७६

१२८. शिशुपालवध.V, १०

१२९ हर्षचरित, III, पृ० १६५

१३० वाटर्स, II, पृ० ३१०

१३१. वाटर्स, II, पृ० ४७

१३२ वाटर्स, II, पृ० ३१४

१३३. वाटर्स, II, पृ० ३६५

१३४. शिशुपालवध, III, ७६

१३५ शिशुपालवध, IV, ११, III : १९

१३६. शिशुपालवध, I, २८

१३७. वाटर्स II, पृ० २४८-४९

१३८ बील II, पृ० २०५

१३९. इत्सिंग, ए रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया, पृ० ३१

१४०. एपिग्राफिक इंडिका, II, पृ० ३४५

१४१ मजूमदार आर० सी०, स्वर्णद्वीप, पृ० ७

१४२. वाटर्स, I, पृ० ३४०

१४३ कादम्बरी, पृ० ८९

१४४ कादम्बरी, पृ० ८४

१४५. शिशुपालवध-तृतीय सर्ग

१४६. वाटर्स, I, पृ० १७८

१४७ इं० ए०, ३९, पृ० १९३-२१६

१४८. ज० रा० ए० सो०, १९०३, पृ० ५४७

१४९. एलन प्लेट, १०५

१५०, वही, पृ० १५०

१५१. सिन्हा, बी० पी० डिक्लाइन ऑफ दि किंगडम ऑफ मगध, परि० १ बी

१५२. मजूमदार, आर० सी०, हिस्टी ऑफ बंगाल, ६, पृ० ६६६

१५३. ज० रा० ए० सो०, १९०६, पृ० ८४३

१५४. हर्षचरित, IV, पृ० २०३

१५५. शिशुपालवध, X, ३८

राजनीतिक जीवन

किसी भी देश व काल का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन उस देश अथवा कालखंड की राजनीतिक परिस्थितियों के अध्ययन के अभाव में अधूरा ही रहेगा। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ एक दूसरे को प्रभावित करती है तथा दिशा निर्धारण करती हैं। ७वीं शती में, जिस समय महाकवि माघ ने शिशुपालवधन महाकाव्य की रचना की थी, वास्तव में एक युग का पटाक्षेप हो रहा था परन्तु नवीन के अभ्युदय में विलंब था। वस्तुतः राजनीतिक रूप में यह संक्रमण का काल है।

ईसा की छठी शताब्दी के मध्य (५५० ईस्वी के लगभग) शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य पूर्णरूपेण छिन्न-भिन्न हो गया था। गुप्त साम्राज्य के पतन ने एक बार पुनः भारतीय राजनीति में विकेन्द्रीकरण और विभाजन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया। अनेक स्थानीय सामन्तों एवं शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और सत्ता की दौड़ में तेजी से आगे बढ़े। इन शक्तियों में प्रमुख रूप से मैतृक, कलचुरी, गुर्जर मौखरी, परवर्ती गुप्त, वर्धन, राज वंश शामिल थे। इनके अतिरिक्त असाम, बंगाल, उड़ीसा व काश्मीर के राजवंश भी प्रमुख थे।

वलभी का मैतृक वंश :

वलभी के मैतृक वंश की स्थापना भट्टार्क नामक व्यक्ति ने की थी जो गुप्तों के समय में एक सैनिक पदाधिकारी था। ईसा की पाँचवी शती के अन्त तक उसके उत्तराधिकारियों ने सौराष्ट्र में अपना शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस वंश के प्रारम्भिक नरेश गुप्त सम्राटों के सामन्त थे। उनकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान उनका सम्बन्ध हूणों से जोड़ते हैं, जो पहले सूर्य की पूजा किया करते थे। भारत में आकर उन्होंने ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्मों को

अपना लिया। कतिपय अन्य विद्वान उन्हें स्थानीय ही मानते हैं।

मैतृक वंश के प्रारम्भिक दो राजा—भट्टार्क तथा उसका पुत्र धरसेन—अपने को सेनापति कहते है। परन्तु धरसेन के उत्तराधिकारियों को 'महाराज' अथवा 'महासामन्त महाराज' कहा गया है। इस वंश का तीसरा राजा द्रोणसिंह था। उसके विषय में यह कहा गया है कि वह अपने सार्वभौम शासक (गुप्त शासक) द्वारा महाराज के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। यह सार्वभौम शासक संभवतः बुधगुप्त था। द्रोणसिंह के बाद उसका छोटा भाई ध्रुवसेन प्रथम 'महाराज' बना। इन दोनों ने भूमि दान में दिये थे। वह अपने को 'परमभट्टारकपादानुध्यात' कहता है जिससे स्पष्ट है कि ध्रुवसेन प्रथम के समय (लगभग ५४५ ईस्वी) तक वलभी के मैतृक सम्राट गुप्त वंश की आधीनता स्वीकार कर रहे थे। ध्रुवसेन प्रथम के सोलह दान पत्र प्राप्त हुए है। इसके बाद महाराज धरनपट्ट तथा फिर गुहसेन राजा हुए। गुहसेन के दान पत्रों में 'परमभट्टारकपादानुध्यात' का प्रयोग नहीं हुआ है। इससे पता चलता है कि ५५० ईस्वी के आसपास मैतृक वंश गुप्त सम्राटो की आधीनता से मुक्त हो गया था। इसी समय गुप्तों का पतन भी हो गया था।

गुहसेन के बाद उसका पुत्र धरसेन द्वितीय (५७१-५९० ईस्वी) तथा फिर धरसेन का पुत्र शीलादित्य प्रथम धर्मादित्य (६०६-६१२ ईस्वी) मैतृक वंश में राजा हुए। चीनी यात्री ह्वेनसांग मो-ला-पो (मालवा) के राजा शीलादित्य का उल्लेख करता है जो एक बौद्ध था। इस शिलादित्य का समीकरण हम मैतृक वंशी शिलादित्य प्रथम धर्मादित्य से कर सकते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस समय तक मैतृकों का राज्य सम्पूर्ण गुजरात, कच्छ तथा मालवा तक विस्तृत हो गया था तथा वलभी पश्चिमी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बन गया था। ह्वेनसांग शिलादित्य के शासन की प्रशंसा करता है। उसके अनुसार वह एक योग्य तथा उदार शासक था। उसने एक बौद्ध मन्दिर का निर्माण करवाया था। शिलादित्य प्रथम के पश्चात खरग्रह तथा फिर धरसेन तृतीय शासक हुए। उन्होंने ६२३ ईस्वी के लगभग तक राज्य किया। इसके बाद ध्रुवसेन द्वितीय 'बालादित्य' राजा हुआ। वह हर्ष का समकालीन था। उसी के काल में ह्वेनसांग भारत आया था। वह महाराज हर्ष का दामाद था। उसने हर्ष के प्रयाग और कन्नौज के धार्मिक समारोहों में भाग लिया था। ध्रुवेसन द्वितीय ने लगभग ६२९ ईस्वी से ६४०-४१ ईस्वी तक शासन किया।

ध्रुवसेन द्वितीय के पश्चात उसका पुत्र धरसेन चतुर्थ (६४६-६५० ईस्वी) शासक बना। मैत्रक वंश

का वह प्रथम शासक था जिसने 'परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, चक्रवर्तिन जैसी सार्वभौम नरेश की उ पाधियाँ धारण की थी। उसने गुर्जर प्रदेश (भड़ौच) पर अधिकार कर लिया था। मैत्रक वंश का अन्तिम ज्ञात शासक शिलादित्य सप्तम है जो ७६६ ईस्वी में शासन कर रहा था।इस प्रकार आठवीं शदी के अन्त तक वलभी का मैत्रक वंश स्वतंत्र रूप से शासन करता रहा। अन्ततः अरब आक्रमणकारियों ने मैत्रक वंश के राजा की हत्या कर बलभी को पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उनके शासन काल में बलभी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। इसके अतिरिक्त वलभी व्यापार तथा वाणिज्य का भी प्रमुख केन्द्र था।

गुर्जर प्रतिहार वंश :

अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहार वंश था। यह वंश इतिहास में गुर्जरप्रतिहार वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश कीप्राचीनता ५वीं शती तक जाती है। पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल लेख में गुर्जर जाति का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है।[१] वाण के हर्षचरित में भी गुर्जरों का वर्णन मिलता है।[२] चीनी यात्री ह्वेनसांग कु-चे-लो (गुर्जर) देश का उल्लेख करता है जिसकी राजधानी पि-लो-मे-ली अर्थात भीनमल में थी।[३]

विभिन्न राजपूत वंशों की उत्पत्ति के समान गुर्जर-प्रतिहार वंश की उत्पत्ति के प्रश्न पर भी विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कुछ विद्वानों ने गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति को विदेशी 'खजर' नामक जाति से जोड़ा है, जो हूणों के साथ भारत में आयी थी।[४] विदेशी उत्पत्ति मत का समर्थन अन्य अनेक विदेशी व भारतीय विद्वानों ने भी किया है।[५]

इस मत के विपरीत अनेक विद्वानों की स्पष्ट धारणा है कि गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति विदेशी जाति से न होकर स्थानीय है। दशरथ शर्मा, जी० एस० ओझ, सी० वी० वैद्य आदि विद्वान गुर्जर प्रतिहारों को भारतीय मानते हैं।[६] वे इस शब्द का अर्थ 'गुर्जर देश का प्रतिहार अर्थात शासक मानते हैं। के० एम० मुन्शी ने विभिन्न उदाहरणों में यह सिद्ध किया है कि गुर्जर शब्द जाति वाचक न होकर स्थान वाचक है।[७] उनके लेखों से जो संकेत मिलते हैं उनके आधार पर हम उन्हें ब्राह्मण मूल का स्वीकार कर सकते हैं।[८] प्राचीनतम गुर्जर राज्य की स्थापना ब्राह्मण राजा हरिश्चन्द्र ने राजस्थान के जोधपुर राज्य में की थी। हरिश्चन्द्र जाति से ब्राह्मण थे तथा उन्होंने ६वीं शती के मध्य तक शासन किया था। ऐसा प्रतीत होता है

कि वह गुप्तों के बाद एक नये राज्य की स्थापना करने में सफल हुआ। उसके दो पत्नी एक ब्राह्मण व दूसरी क्षत्रिय थी। ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण प्रतिहार कहलाये तथा क्षत्रिय पत्नी जिसका नाम भद्रा था उससे हरिश्चन्द्र को चार पुत्रों का जन्म हुआ जिनके नाम क्रमश: भोगभट्ट, कक्का, रज्जिल एवं दद्दा थे।[९] हरिश्चन्द्र एवं उसके वंशजो ने मेर्ता एवं भंडोर के आस-पास लगभग ६५० ईस्वी तक शासन किया।

जयभट्ट के नौसारी से प्राप्त दान पत्र (७०६ ईस्वी) में उल्लेख है कि हर्ष ने जब वलभी के राजा ध्रुवसेन पर आक्रमण किया तो वह पराजित हुआ तथा उसने भागकर भड़ौच के गुर्जर शासक दद्द द्वितीय के दरबार में शरण ली।[१०] गुर्जर नरेश ने उसकी रक्षा की व उसे उसका राज्य वापस दिला दिया।दद्द की प्रथम ज्ञात तिथि ६२७ ईस्वी है तथा दद्द ने ६४० ईस्वी तक शासन किया। उससे तात्पर्य है कि यह युद्ध ६२९-३० से ६४० ईस्वी के बीच हुआ होगा।[११]

खैड़ा से प्राप्त दो दान पत्रों तथा संखेडा से प्राप्त तीन दान पत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि भड़ौच स्थित गुर्जर राज्य भण्डोर स्थित प्रमुख गुर्जर राज्य भिन्न था। इन साक्ष्यों से प्राप्त वंशावली से तीन गुर्जर राजाओं का उल्लेख मिलता है। सामन्त दद्द प्रथम जिसने नाग राजाओं को उखाड़ फेका था, उसका पुत्र जयभट्ट विटराग तथा उसका पुत्र दद्द द्वितीय प्रशान्त राग। डॉ० आर० सी० मजुमदार महोदय का मत है कि दद्द प्रथम जो कि भड़ौच गुर्जर राज्य का संस्थापक था का तादात्म्य हरिश्चन्द्र जो कि भण्डोर गुर्जर वंश का संस्थापक था उसके पुत्र दद्द से किया जा सकता है।[१२] साक्ष्यों से स्पष्ट है कि इस वंश का शासन कैरा व भड़ौच आदि क्षेत्र तक विस्तृत था।[१३] और यही घटना हर्ष और पुलकेशिन के बीच युद्ध का कारण बनी। इतिहासकारों का मत है कि दद्द द्वितीय पुलकेशिन द्वितीय के आधीन सामन्त रहा होगा।[१४] गुर्जर नरेश दद्द एक साधारण स्थिति का शासक था। उसका भड़ौच का राज्य आजकल के दो-या तीन जिलों के बराबर रहा होगा, तो फिर वह हर्ष जैसे शक्तिशाली शासक के विरुद्ध कैसे सफल हो सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे इस कार्य हेतु सहायता मिली होगी।चुआन च्वांग भड़ौच के जिस राज्य का उल्लेख करता है वास्तव में वह दद्द द्वितीय का राज्य रहा होगा।[१५] चुआन च्वाँग वलभी से ३०० मील उत्तर में कु-चे-लो (गुर्जर राज्य का उल्लेख करता था। चुआन च्वॉग आगे बताता है कि राजा साहसी व बुद्धिमान क्षत्रिय युवक था तथा बौद्ध धर्म में विश्वास करता था।[१६] जोधपुर से प्राप्त

घटियाल अभिलेख से प्राप्त वंशावली से पता चलता है कि हरिश्चन्द्र का पाँचवा वंशज तात नामक राजा था जिसने अपने छोटे भाई के पक्ष में राज्य त्याग कर बौद्ध धर्म को अपना लिया था ।[१७]चुआन च्वॉग ने संभवत: इसी राजा का उल्लेख किया है ।[१८]

गुहिलौत

छठी शताब्दी के मध्य गुप्त साम्राज्य के पतन के उपरान्त गुहदत्त नामक सामन्त ने पुराने उदयपुर राज्य के पश्चिमी भाग में एक छोटे से राज्य की नींव रखी थी ।इस रियासत पर काफी समय तक इस वंश के राजा, जिन्हें उसके नाम पर गुहिल या गुहिल पुत्र कहते थे, शासन करते रहे ।[१९]

गुहिल पुत्रों या गुहिलौतों की संपूर्ण वंशावली सर्वप्रथम अटपुर के शिलालेख में दी गयी है जिसकी तारीख ९७७ ईस्वी है । इस वंशावली में गुहदत्त से लेकर शक्ति कुमार तक के बीस राजाओं के नाम दिये गये हैं । अगर हम हर राजा के शासन काल की औसत अवधि बीस साल माने तो अनुमानत: गुहदत्त छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ होगा । इस तारीख की पुष्टि शील (शीलादित्य) और अपराजित के अभिलेखों से होती है जो कि इस सूची में पाँचवे और छठे नम्बर के राजा थे । क्रमश: उनकी तारीखे विक्रमी संवत् ७०३ (६४६-६४७ ई०) और विक्रमी संवत् ७१८ (६६१-६६२ ईस्वी) है ।[२०]

डी० आर० भण्डेरकर के अनुसार सन् ७२५ और ७३८ के बीच जब अरब हमलावरों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया तो इस समय खुम्माण प्रथम ने, जो इस वंश का नवां राजा था और बप्पा रावल के नाम से भी प्रसिद्ध था, अरब हमलावरों का सफलतापूर्वक मुकाबला करने में प्रसिद्ध अर्जित की ।[२१] जब कि डॉ० गौरी शंकर हीरानन्द ओझा ने इस मत का खंडन करते हुए कहा कि परम्परा के अनुरुप तादात्म्य काल भोज, जो कि अपराजित का पौत्र था, से किया है ।[२२]

बाद में चलकर गुहिलौत अपने को सूर्यवंशी क्षत्रिय मानने लगे और महाकाव्यों के नायक राम का वंशज होने का दावा करने लगे । किन्तु इसके विपरीत कुछ प्राचीन लेखों में गुहिल राजाओं को स्पष्टत: ब्राह्मण बताया गया है । इस वंश के संस्थापक गुहदत्त और बप्पा रावल को दो अभिलेखों में, जिनकी तारीख क्रमश: ९७७ और १२७४ ईस्वी है, विप्र या ब्राह्मण कहा गया है ।[२३] एक अन्य अभिलेख में, जो सन् १२८५ ईस्वी का है कहा गया है कि बप्पा ने ब्रह्म (पुरोहिताई) छोड़कर क्षत्र

(सैनिक) गौरव अपना लिया था।[२४] गुहिलों के ब्राह्मण उत्पत्ति के मत को पंडित गौरी शंकर ओझा और सी० बी० वैद्य ने स्वीकार नहीं किया है।[२५]

ऐसा प्रतीत होता है कि गुहिलौत वंश के शासक मेवाड़ के अतिरिक्त आस-पड़ोस के अन्य क्षेत्रों में भी शासन कर रहे थे। जयपुर से २६ मील दक्षिण में चत्सु नाम के कस्बे में मिले एक अभिलेख से ऐसी ही एक शाखा का पता चलता है।[२६] गुहिलौत की इस शाखा की स्थापना सातवी शताब्दी या छठी शताब्दी के अन्त में किसी भर्तृपट्ट ने की थी, जो इस अभिलेख के अनुसार 'परशुराम' के समान था, जिसमें ब्रह्म और क्षत्र दोनों गुण थे। इससे स्पष्ट होता है कि जिस तरह परशुराम जाति के ब्राह्मण थे लेकिन उनका कर्म क्षत्रियों का था, उसी तरह भर्तृपट्ट जाति से ब्राह्मण और कर्म से क्षत्रिय था। गुहिलौत वंश की ब्राह्मण उत्पत्ति के मत को बल मिलता है। भर्तृपट्ट के अगले तीन वंशजो ईशान भट्ट, उपेन्द्रभट्ट एवं गुहिल प्रथम के विषय कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।[२७]

चत्सु के गुहिल वंश के विषय में विशिष्ट जानकारी गुहिल प्रथम के पुत्र धनिक के ६८४ ईस्वी के एक अभिलेख से प्राप्त होती है।[२८] अभिलेख में वर्णन मिलता है कि धनिक ने अपनी प्रजा के उपयोग के लिए एक कुएँ का निर्माण करवाया था। इस धनिक का तादात्म्य उस गुहिल पुत्र धनिक से किया जा सकता है जिसका सन् ७२५ ई० के अभिलेख में उल्लेख है।[२९] इस अभिलेख के अनुसार धनिक, परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री धवलप्पदेव जो शायद मौर्य शासक ध्वल का ही नाम है, के सामन्त के रूप में धर्वगर्ता पर राज करता था। इससे यह बात प्रामाणिक मानी जा सकती है कि गुहिलौतों की इस शाखा के राजा उदयपुर के मौर्य शासकों के अधीन सामन्त थे।[३०]

गुहिलौत वंश परवर्ती इतिहास हमारे अध्ययन काल के लिए बहुत प्रासंगिक नहीं है।

चाप वंश :

चाप, चापोत्कट या चावोटक वंश के शासक ७२० ईस्वी से ९६६ ईस्वी तक गुजरुत और कच्छ के बीच बढ़ियार स्थित पांचाशर तथा राजपूताने में कुछ हिस्से पर राज करते थे। चापोत्कट राजा वनराज ने, जो पाँचाशर के जयशेखर का बेटा था, प्रसिद्ध नगर अणहिलपाटक (आधुनिक पटन) की सन् ७४६ में नींव डाली थी।[३१]

सन् ७३८ के एक अभिलेख में कहा गया है कि अरबों ने कच्छेल्ला, सौराष्ट्र, चावोटक, मौर्य और गुर्जर राजाओं को हराया था।[३२]

वसंतगढ़ से विक्रम संवत् ६८२ (६२५ ईस्वी) के अभिलेख से पता चलता है कि राज्जिल, वर्मलात नामक शासक का सामन्त था।[३३] माघ कृत शिशुपाल वध से ज्ञात होता है कि माघ के बाबा सुप्रभदेव राजा वर्मलात के शासन में सर्वाधिकारी के पद को सुशोभित कर रहे थे।[३४] चूँकि माघ भिन्नमाल के निवासी थे अत: स्वाभाविक है कि वर्मलात भी भिन्नमाल का शासक रहा होगा। ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्पुटक सिद्धान्त से पता चलता है कि ६२८ ईस्वी में भीन्तमाल में चाप वंश के राजा व्याघ्रमुख का शासन था जो संभवता वर्मलात का उत्तराधिकारी वरहा होगा।[३५] इससे पता चलता है कि चाप वंश के शासक ७वीं शताब्दी में राजपूताने के कुछ हिस्से पर शासन कर रहे थे। दशरथ शर्मा का मत है कि युआन च्वाँग द्वारा पी-लो-मो-लो राज्य का उल्लेख किया है वास्तव में वह भीनमाल ही है। युआन च्वाँग द्वारा लिखित युवा क्षत्रिय शासक जो साहस व बुद्धिमता के लिए प्रसिद्ध था की पहचान भण्डोर के गुर्जर शासक तात के स्थान पर भीनमाल के चाप शासक से करनी चाहिए।[३६]

परवर्ती गुप्त :

हर्ष के साम्राज्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तराधिकारी राज्य मगध था। हर्ष की मृत्यु के कुछ दिनों बाद ही हम मगध पर परवर्ती गुप्तों को राज करते हुए पाते हैं।

उत्तरगुप्त वंश का इतिहास जानने का सबसे महत्वपूर्ण साधन अभिलेख है। अफसढ़ का लेख उत्तर गुप्त वंश के आठवें शासक आदित्यसेन के समय का है तथा बिहार प्रान्त के गया जिले में अफसढ़ नामक स्थान से मिला है।[३७] इस अभिलेख में इस वंश के प्रथम शासक कृष्ण गुप्त से लेकर आदित्यसेन तक के समय का इतिहास वर्णित है। परवर्ती गुप्त वंश का दूसरा महत्वपूर्ण अभिलेख बिहार प्रान्त के माघबाद (आरा) जिले के देववर्नाक नामक स्थान से प्राप्त हुआ है।[३८] इसे परवर्ती गुप्त वंश के शासक जीवितगुप्त द्वितीय ने उत्कीर्ण करवाया था। इसमें आदित्यसेन के बाद के तीन शासकों—देवगुप्त, विष्णुगुप्त तथा जीवितगुप्त द्वितीय का नामोल्लेख मिलता है। उसके अतिरिक्त शाहपुर (पटना जिले में स्थित) तथा मन्दर (भागलपुर जिले में स्थित) से आदित्यसेन के समय के लेख

मिलते है। विष्णुगुप्त के समय का लेख मगरों से मिलता है।

चक्रवर्ती गुप्तों के साथ परवर्ती गुप्तों के सम्बन्धों के विषय में हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कह सकते हैं। परवर्ती गुप्त वंश के लेखों में चक्रवर्ती गुप्त राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता है।चक्रवर्ती गुप्त राजवंश से पृथक करने के लिए इस वंश को परवर्ती अथवा उत्तर गुप्त राजवंश कहा जाता है। परवर्ती गुप्त वंश के प्रथम शासक कृष्णगुप्त को मात्र नृपति कहा गया है जब कि इसके उत्तराधिकारी हर्षगुप्त के नाम के पूर्व केवल श्री शष्य लिखा मिलता है। यह इस बात का द्योतक है कि वे साधारण उत्पत्ति के थे। संभवत: यह वंश गुप्त सम्राटों का सामन्त था तथा गुप्त साम्राज्य के पतनोपरान्त अन्य राजवंशों के साथ यह भी महत्वपूर्ण हो गया। परवर्ती गुप्तों के मूल निवास को लेकर विद्वानों में मतभेद थे। कतिपय विद्वानों के अनुसार परवर्ती गुप्तवंश के लोग मूलत: मालवा के निवासी थे।[३९] जब कि अन्य विद्वानों के अनुसार अफसढ़ लेख के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि जीवितगुप्त ने बंगाल तथा महासेनगुप्त ने आसाम की विजय की थी। यह विजयें तभी संभव हो सकती थी जब परवर्ती गुप्त राजाओं का मूल निवास मगध हो।मालवा में रहकर यदि बंगाल और आसाम की विजय करते तो सार्वभौम शासक होते। अत: अफसढ़ लेख का अन्त:साध्य भी मगध को ही उत्तर गुप्तों का मूल निवास प्रमाणित करता है।[४०]

हर्षवर्धन के समय में माधव गुप्त मगध में उसके सामन्त के रूप में शासन करता था।[४१] अफसढ़ लेख से पता चलता है कि उसने अनेक शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी संभवत: यह उसने हर्ष के अनुचर के रूप में की होगी।[४२] हर्षचरित से पता चलता है कि जब हर्ष शशंक को दण्डित करने के लिए गया तो माधवगुप्त भी उसके साथ था।[४३] हर्ष की मृत्यु के समय (६४७ ईस्वी) तक वह मगध में उसके सामन्त के रूप में शासन करता रहा हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तर भारत में पुन: अराजकता फैली तथा संवभवत: उसने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी।

माधव गुप्त की मृत्यु के बाद उसका पुत्र आदित्यसेन मगध का शासक बना। अफसढ़ तथा शाहपुर के लेखों से मगध पर उसका आधिपत्य प्रमाणित होता है। अफसढ़ लेख में कहा गया है कि "वह इस जगत की रक्षा करता है तथा उसके श्वेतछत्र द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी सदा ढकी रहती है" तथा आदित्यसेन ने महाराजाधिराज की पद्वी धारण की थी।[४४] देवघर के एक मन्दिर पर उत्कीर्ण शिलालेख में चोल देश

पर उसकी विजय और उसके द्वारा किये गये यज्ञों का उल्लेख हैं।[४५] इस अभिलेख की प्रामाणिकता संदेहास्पद है और मात्र इसी आधार पर आदित्यसेन की चोल विजय स्वीकार कर लेना ठीक नहीं होगा।

आदित्यसेन के संक्षिप्त विवरण में उसकी तारीख ६६ पढ़ी गयी हैं, जिसे हर्ष संवत् की तारीख से जोड़ा गया है।[४६] इस प्रकार वह सन् ६७२ ईस्वी में राज कर रहा था। लेकिन तारीख का पाठ अनिश्चित है, और इससे कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि वह सातवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में गद्दी पर बैठा।

हमें आदित्यसेन के तीन उत्तराधिकारियों के नाम ज्ञात हैं, देवगुप्त, विष्णुगुप्त और जीवितगुप्त लेकिन इन राजाओं के काल की राजनीतिक घटनाओं की हमें विस्तृत जानकारी नहीं है। परन्तु यह अनुमान किया गया है कि जीवितगुप्त के काल (७२५ ईस्वी लगभग) तक आदित्यसेन द्वारा निर्मित साम्राज्य अक्षुण्ण बना रहा। बी० पी० सिन्हा के अनुसार जीवितगुप्त द्वितीय का अन्त कन्नौज नरेश यथोवर्मन ने किया और वाक्पतिराजकृता 'गौडवहो' में यशोवर्मन की जीवितगुप्त पर विजय को आधार बनाया गया है।[४७] जब कि आर० सी० मजुमदार ने इस मत को स्वीकार नहीं किया है।[४८]

हर्षोत्तर काल में मगध के इतिहास में परवर्ती गुप्त वंश का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस वंश के राजाओं ने चक्रवर्ती गुप्तों की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुसरण किया। साधारण सामन्त स्थित से ऊपर उठकर उन्होंने मगध साम्राज्य के केन्द्रीय भाग पद अपना सार्वभौम शासन स्थापित कर लिया। मगध साम्राज्य के इतिहास में उनका शासनकाल गुप्त-प्रभुसत्ता एवं परम्पराओं की निरन्तरता का प्रतीक माना जा सकता है।

मौखरी वंश :

परवर्ती गुप्तों के ही समान मौखरी भी चक्रवर्ती गुप्त वंश के सामन्त थे तथा गुप्त सत्ता के निर्बल होने पर उन्होंने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर ली थी। मौखरी लोगों का आदि निवास स्थान मगध था। उन्होंने गुप्त राजाओं की निर्बलता का लाभ उठाकर अपने लिए कन्नौज में राज्य स्थापित कर लिया और राय चौधरी के अनुसार मगध के बदले कन्नौज उत्तरी भारत के राजनीतिक जीवन का केन्द्र बिन्दु बन गया।[४९]

मौखरी लोगों की उत्पत्ति के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं है। उनका वास्तविक अथवा कल्पित मुखर नाम का एक पूर्वज हुआ था और उसी के नाम पर इस वंश का नाम मौखरी पड़ा। शुंग एवं कण्व की भाँति मौखरियों का एक गोत्र था। पतंजलि के महाभाष्य पर कैय्यट की जो टीका है उसमें तथा जयादित्य एवं वामन की 'कशिकावृत्ति' में 'मौखर्य्याः' शब्द का प्रयोग गोत्र नाम के रूप में ही हुआ है।[५०] मिट्टी निर्मित एक मुद्रा में, जो कनिंघम को गया से प्राप्त हुयी थी, मौर्यकालीन लिपि में मोखलिनम उत्कीर्ण है।[५१] इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

मौखरि लेखों तथा साहित्यिक ग्रन्थों में 'मौखरि' तथा 'मुखराः शब्दों का प्रयोग मिलता है। हर्षचरित में उन्हें 'मुखरवंश' तथा कादम्बरी में 'मौखरिवंश' कहा गया है।[५२] बराबर गुहा अभिलेख में अनन्त वर्मा अपने कुल को 'मौखरिणाम कुलम' कहता है।[५३] हरहा लेख में मौखरि राजाओं को 'मुखरुः क्षितिशाः' कहा गया है।[५४] उनके लेखों में उन्हें सूर्यवंशी क्षत्रिय कहा गया है। हरहा लेख में वर्णित है कि मौखरि वैवस्वत् के वरदान से उत्पन्न अश्वपति के सौ पुत्रों में से एक थे।[५५]

चक्रवर्ती गुप्त राजाओं के काल में मौखरि नाम के दो विभिन्न राजवंश थे। उनकी मुख्य शाखा गंगा-यमुना दोआब क्षेत्र पर शासन करती थी जिसकी बाण के कथनानुसार राजधानी कन्नौज थी।[५६] इसके अतिरिक्त एक अन्य मौखरिवंश भी बिहार में गया जिले में शासन कर रहा था। बिहार की मौखरि शाखा के तीन अभिलेख बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाओं से प्राप्त हुए हैं। इन लेखों में इस शाखा के तीन राजाओं यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा तथा अनन्त वर्मा का उल्लेख मिलता है।[५७] मौखरियों की प्रधान शाखा जो गुप्तों के सामन्त थे वास्तव में गुप्तों के पतन के उपरान्त उत्तर भारत की प्रधान शक्ति बन गयी।

हर्षचरित तथा जौनपुर, हरहा, असीरगढ़ एवं सोहनाग के लेखों द्वारा निम्नलिखित मौखरि नरेशों के नाम ज्ञात होते हैं :—[५८]

क्रमांक	**सम्राट**	**साम्राज्ञी**
१.	महाराज हरिवर्मा	भट्टारिकादेवी जयस्वामिनी
२.	महाराज आदित्यवर्मा	भट्टारिकादेवी हर्षगुप्ता

३.	महाराज ईश्वरवर्मा	भट्टारिकादेवी उपगुप्ता
४.	महाराजाधिराज ईशानवर्मा	भट्टारिकादेवी लक्ष्मीवती
५.	महाराजाधिराज शर्ववर्मा	भट्टारिकादेवी इन्द्रभट्यारिका
६.	महाराजाधिराज अवन्ति वर्मा	(उपलब्ध नही)
७.	महाराजाधिराज गुहवर्मा	भट्टारिकादेवी राज्य श्री

उक्त नरेश प्रधान शाखा के मौखरि कहे जाते हैं।उन्हें कन्नौज के मौखरि अथवा सम्राट मौखरि भी कहा जाता है। पहले तीन राजाओं और बाद के राजाओं की उपाधियों में जो फर्क है, उससे इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि ईशानवर्मन के राज्यकाल में इस वंश की सत्ता और प्रतिष्ठा बढ़ गयी थी। हरहा के लेख से ज्ञात होता है कि वह विक्रम संवत् ६११ (५५४ ईस्वी) में शासन कर रहा था।[५९] असीरगढ़ के लेख के अनुसार उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी।[६०] इससे उसकी महानता व स्वतंत्रता व्यक्त होती है। गुप्त संवत के स्थान पर विक्रम संवत का प्रयोग तथा महाराजाधिराज की उपाधि धारण से स्पष्ट हैं इस समय मौखरि वंश गुप्ताधिपत्य से पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया था। हरहा अभिलेख उसकी विजयों का विवरण इस प्रकार देता है—"उसने आन्ध्राधिपति को जिसकी सेना में सहस्त्रों मतवाले हाथी थे, जीतकर, शूलिकों को, जिनकी सेना में छलांग मारने वाले असंख्य घोड़े थे, युद्धभूमि में परास्त कर, तथा गौड़ों का स्थल-भूमि के साथ सम्बन्ध छुड़ाकर भविष्य में समुद्र का आश्रय लेने के लिए बाध्य करते हुए अपने सिंहासन को जीता था।"[६१] ईशान वर्मन के बाद मौखरियों के इतिहास के विषय में अन्य अनेक स्त्रोतों से प्रकाश पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता हो कि सर्ववर्मा के काल में मगध पर मौखरियों की सत्ता स्थापित हो गयी थी। देव बर्नाक के लेख के अनुसार सर्ववर्मा ने वारुनीक नामक ग्राम दान में दिया था जो उस समय मगध क्षेत्र में था।[६२] सर्व वर्मा अपने वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था जिसने संभवतः ५८६ ईस्वी के लगभग तक राज्य किया। सर्व वर्मा के बाद उसका पुत्र अवन्तिवर्मा शासक बना। हर्षचरित में उसके संदर्भ में कहा गया है कि उसके काल में मौखरिवंश समस्त राजाओं का सिरमौर एवं भगवान शिव के चरण चिन्हों की भाँति समस्त संसार में पूज्जित था।[६३] अवन्तिवर्मा का पुत्र और उत्तराधिकारी गुहवर्मा हुआ। हर्षचरित में कहा गया है कि वह पृथ्वी पर सूर्य की भाँति सुशोभित था।[६४] गुहवर्मा के नाम का उल्लेख किसी भी लेख में नहीं मिलता है तथा उसके

इतिहास के लिए हमें एकमात्र हर्षचरित पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसी से ज्ञात होता है कि उसका विवाह थानेश्वर नरेश प्रभाकर वर्द्धन की कन्या राज्य श्री के साथ सम्पन्न हुआ था।[६५]

नालन्दा मुद्रा लेख के साक्ष्य से प्रतीत होता है कि अवन्तिवर्मा का एक अन्य पुत्र 'सुच' (सुचन्द्रवर्मा) था।[६६] संभवत: वह गुहवर्मा से काफी छोटा रहा होगा। हर्ष की ६४७ ई० में मृत्यु के उपरान्त मौखरि राज्य का शासक बना होगा। वह उत्तरगुप्तवंशी आदित्यसेन का समकालीन था। नालन्दा मुद्रालेख में उसे महाराजाधिराज कहा गया है। आर्य मंजुश्री मूल कल्प में गुहवर्मा के बाद 'सुब्र' नामक शासक का उल्लेख मिलता है।[६७] संभवत: 'सुब्र' तथा 'सुच' एक ही व्यक्ति थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके उपरान्त मौखरियों की स्वतंत्र राजनीतिक सत्ता समाप्त प्राय: हो गयी थी, यद्यपि मनोरथ वर्मा तथा भोगवर्मा नामक दो अन्य राजाओं का उल्लेख भी साक्ष्यो से प्राप्त होता है।[६८]

हर्षोत्तर काल ही महाकवि माघ का काल है।हर्ष ने अपने शौर्य एवं विजयों के द्वारा उत्तारी भारत में राजनीतिक एकता स्थापित की थी परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उत्तरी भारत में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण एवं विभाजन की शक्तियाँ एक बार पुन: सक्रिय हो गयी। कामरूप में भाष्कर वर्मा ने कर्णसुवर्ण तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों को जीतकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। संभवत: हर्ष के सामन्त माधव गुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपना राज्य स्थापित कर लिया था। भारत के पश्चिमी तथा उत्तर पश्चिमी भागों में कई स्वतंत्र शासकों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। काश्मीर में कार्कोट वंश की सत्ता स्थापित हुयी। सामान्यत: यह काल पारस्परिक संघर्ष तथा प्रतिद्वन्द्विता का काल था।

सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात कन्नौज के शासकों में यशोवर्मा का नाम उल्लेखनीय है। कुछ जैन ग्रन्थों में उसे मौर्य वंश से संबंधित बताया गया है[६९] और कुछ विद्वानों ने उसने नाम के साथ वर्मन शब्द होने के कारण उसे मौखरिवंश से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया है।[७०] परन्तु इन दोनों मतों की प्रामाणिकता संदेहास्पद है। यद्यपि यह निश्चित है कि वह किसी कुलीन चन्द्रवंशी क्षत्रिय परिवार से संबद्ध था।[७१] यशोवर्मन काश्मीर के शासक ललितादित्य मुक्तापीड का समकालीन था और उसने ७३१ ई० में 'यू-रा-सिन' (बुद्धसेन) को अपना राजदूत बनाकर चीन भेजा था। चीनी विवरणों में उसे इ-श-फो-मो कहा गया है जो मध्य देश का राजा था।[७२]

यशोवर्मन के प्रसिद्ध राजकवि वाक्पति ने अपने संरक्षक के विजय अभियानों का यशोगान करते हुए प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो इस राजा के जीवन और शासनकाल के बारे में हमारी जानकारी का मुख्य स्रोत है ।इस काव्य का नाम 'गौड़वहो' (गौड़वध) है । काव्य के नाम से यह सर्वथा स्पष्ट है कि यशोवर्मन द्वारा गौड़ नरेश की पराजय व वध इस काव्य की प्रमुख कहानी है । परन्तु आश्चर्य का विषय है कि गौड़ नरेश का न ही नाम का उल्लेख है और काव्य के अन्त में इस घटना का मात्र संकेत किया गया है ।

गौडवहों के अनुसार, ' एक वर्षा ऋतु के उपरान्त यशोवर्मन अपनी सेना के साथ विजय के लिए निकला । सोनघाटी को पार करता हुआ वह विन्ध्यवासिनी देवी की पूजा की और उसे प्रसन्न किया । यहाँ से उसने मगध शासक पर चढ़ाई की । युद्ध में मगध राजा को मार डाला । उसके पश्चात उसने बंगदेश पर चढ़ाई की तथा उन्हें युद्ध में हटा यिा । पश्चिमी घाट के दुर्गम क्षेत्रों में उसे कर प्राप्त हुआ । वह नर्मदा नदी के तट पर आया तथा समुद्र तट से होता हुआ मरुदेश जा पहुँचा । यहाँ से वह श्री कण्ड आया तथा फिर कुरुक्षेत्र होते हुए अयोध्या जा पहुॅचा । मन्दराचल पर्वत के निवासियों ने उसकी संप्रभुता स्वीकार कर ली । उसने हिमालय क्षेत्र की भी विजय की । इस प्रकार संसार को जीतता हुआ वह अपनी राजधानी कन्नौज वापस लौट आया ।'[७३]

राज्य कवियों की परम्परा के अनुसार गौडवहो का विवरण अति रंजित प्रतीत होता है । इसमें यशोवर्मन की विजयों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया है । यह कहना कठिन है कि उसने उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व व पश्चिम के सभी राज्यों को जीत लिया था ।

यशोवर्मन की पूर्वी राज्यों की विजयों के कुछ स्वतंत्र प्रमाण उपलब्ध होने के कारण उसकी मगध व बंगाल विजय सत्य प्रतीत होती है । नालन्दा में प्राप्त एक अभिलेख में यशोवर्मन को अभिराज कहा गया है[७४], जिसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि मगध पर उसका आधिपत्य था और यहीं से उसने बंगाल परचढ़ाई करके गौड़ राजा को परास्त किया होगा । यशोवर्मन की दक्षिण विजय की पुष्टि भी चालुक्य अभिलेखों से होती है । चालुक्य शासक विजयादित्य के एक अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि संभवत: यशोवर्मा ने विजयादित्य के पिता विनयादित्य से युद्ध किया पर जिसके बारे में दोनों पक्षों ने सफलता का दावा किया था ।[७५]चालुक्य अभिलेख में राजा का नाम नहीं दिया गया है लेकिन उसे

सकलोत्तर-पथ-नाथ कह कर वर्णित किया गया है। इस युद्ध में दोनों पक्षों ने विजय का दावा किया है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उसने उत्तर भारत के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

यशोवर्मन ने ७३१ ई० में चीन दरबार में अपना दूत भेजा था। काश्मीर के राजा ललितादित्य ने ७३६ ई० में अपना दूत चीन भेजा था तथा भेजे गये पत्र में यशोवर्मन का उल्लेख अपने चित्र के रूप में किया था। सिन्ध को जीतने के बाद अरबों ने कन्नौज की ओर एक सेना भेजी जिसे संभवत: यशोवर्मन ने हरा दिया होगा। अत: गौडवहो के पारसीकों से तात्पर्य सिन्ध के अरबों से ही प्रतीत होता है।[७६]

काश्मीर नरेश ललितादित्य एवं कन्नौज नरेश यशोवर्मन में प्रारम्भ में भले ही मित्रता रही हो पर उत्तर भारत में श्रेष्ठता स्थापित करने हेतु दोनों राजाओं में युद्ध अनिवार्य था। राजतरंगिणी में यशोवर्मन और ललितादित्य के लम्बे संघर्ष तथा यशोवर्मा की पूर्ण पराजय का उल्लेख मिलता है।[७७] यशोवर्मन इस युद्ध के पश्चात जीवित रहा परन्तु उसकी शक्ति पूर्णतया नष्ट हो चुकी थी। नाममात्र के लिए उसके तीन उत्तराधिकारी भी हुए परन्तु वह इतिहास में नगण्य रहे।

यशोवर्मन का उत्थान अकस्मात उत्तर भारत के राजनीतिक क्षितिज पर ७वीं शती के अन्तिम दशक में हुआ और ८वीं शती के पूर्वार्द्ध में अचानक ही उसका पतन हो गया। वह एक महान योद्धा और सम्राट था जिसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाकर उत्तर भारत में एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों का सम्मान करता था। यशोवर्मन शैव मतावलम्बी था तथा वाकपति के अतिरिक्त अपने युग का महान विद्वान और मालती माधव 'महावीर चरित', और उत्तर रामचरित का रचयिता भवभूति भी उसके दरबार में था।[७८]

सातवीं-आठवीं शती के राजनीतिक परिदृश्य के सिंहावलोकन के उपरान्त तत्कालीन शासन व्यवस्था पर भी एक नजर डालना उचित होगा। महाकवि माघ रचित शिशुपालवध मूलत: भक्ति काव्य है परन्तु इसमें तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को देखा जा सकता है। अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त देश तथा उनमें आपसी संघर्ष के परिणाम स्वरुप व्याप्त अराजकता, शूरवीरता की परम्परा, शक्तिशाली राजा के अधीन अनेक माण्डलिक राजाओं की उपस्थित का विवरण शिशुपालवध में अनेकों स्थान पर मिलता है।

सातवीं शती में जो शासन प्रणाली उत्तरी भारत में प्रचलित थी वह सामान्यत: गुप्तकालीन शासन पद्धति ही थी जिसमें समय व परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार आवश्यक परिवर्तन कर लिए गये थे।

भारतीय अर्थशास्त्रीय परम्परा में राज्य के सप्ताङ्गों का विवरण उपलब्ध है—(१) राजा (२) अमात्य (३) जनपद या राष्ट्र (४) दुर्ग (५) कोष (६) सेना (७) मित्र।[७९] इसमें शासक को ही सर्वोच्च माना गया है। कौटिल्य ने तो राजा को ही संक्षिप्त राज्य कहा है।[८०]

शासन का उच्चतम अधिकारी राजा होता था। वह 'परमभट्टारक' 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'सम्राट' चक्रवर्ती तथा 'सार्वभौम' आदि उपाधियों से विभूषित होता था।[८१] राजा देवता माना जाता था और अनेक देवताओं के गुण उसमें निहित हैं ऐसा माना जाता था। बाण ने सम्राट हर्ष के साथ अपनी पहली मुलाकात का उल्लेख करते हुए हर्षचरित में लिखा है कि 'वे सभी देवताओं के सम्मिलित अवतार थे।[८२] उदयगिरि अभिलेख में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय को स्वयं चाप्रतिरथ (साक्षात अप्रतिरथ अर्थात विष्णु) कहा गया है।[८३] इसका तात्पर्य हुआ कि ७वीं शती के राज्यों का स्वरूप मुख्यत: राजतन्त्रात्मक था तथा राजा के दैवीय उत्पत्ति में विश्वास किया जाता था।

राजा शासन के सर्वोच्च शिखर पर आसीन होता था तथा शासन प्रबंध में सक्रिय रूप से भाग लेता था। राजा कार्यपालिका का प्रधान अध्यक्ष, न्याय का प्रधान न्यायधीश तथा सेना का सबसे बड़ा सेनापति हुआ करता था। राजा शासन सम्बंधित सभी मामलों में अंतिम अधिकारी होते थे तथा उनके निर्णय के विरुद्ध कहीं भी अपील संभव नहीं थी। राजा निरंकुश होते थे पर सामान्यत: प्रजा के हितों का ध्यान रखते थे। सम्राट के पूरी शासन व्यवस्था के केन्द्र बिन्दु होने के कारण यह आवश्यक था कि वह शासन के कार्यों में अत्यधिक रूचि लें जिससे कि भ्रष्टाचार एवं अधिकारियों की शिथिलता पर अंकुश लगाया जा सके। अध्ययन काल में राजत्व संबंधी आदर्श अत्यन्त ऊँचे थे। प्रजा की रक्षा करना राजा का सर्वप्रमुख कर्तव्य समझा जाता था। शिशुपालवध के दूसरे सर्ग के ग्यारहवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव जी से मंत्रणा करते समय यह कहते हैं कि "सात्वती का पुत्र (शिशुपाल) जो मेरे साथ द्रोह करता है—इससे मुझे तनिक भी खेद नहीं है (प्रत्युत्) वह जो सर्वसाधारण को जो बुरी तरह दु:ख देता है इससे मुझे पीड़ा पहुँचाता हैं।"[८४] शासकों की शक्ति सिद्धान्त: अनियंत्रित थी तथापि उन्हें अनेक सामन्तीय व नैतिक मर्यादाओं के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता था। अत: शासकों के लिए सर्वथा निरंकुश

और स्वेच्छाचारी होना संभव नहीं था। लोकप्रिय शासकों के नेतृत्व में प्रजा सुख और सन्तोष का अनुभव करती थी। गुहिलवंशी शीलादित्य की लोकप्रियता से प्रभावित होकर देश के विभिन्न भागों के व्यापारी वर्ग उसके राज्य में निवास करने लगे थे।[८५] एक अभिलेख में शीलादित्य को पृथ्वी विजेता, शत्रुओं को जीतने वाला, देव ब्राह्मण और गुरुजनों को आनन्द देने वाला कहा गया है।[८६] कथाकोष के अनुसार स्वेच्छाचारी शासकों के राज्यों में भले पुरुष निवास नहीं करते थे।[८७] युआन च्वाँग सूचित करता है कि हर्ष का सम्पूर्ण दिन तीन भागों में विभक्त था। एक भाग में वह प्रशासनिक कार्य करता था तथा शेष दो भागों को धार्मिक कार्यों में व्यतीत करता था। वह थकता नहीं था और इन कार्यों के लिए दिन उसे अत्यन्त छोटा पड़ता था।[८८] वास्तव में भारत में प्राचीन काल से ही 'प्रजापरिपालकत्व' तथा प्रजा हित राजा का महत्वपूर्ण कर्तव्य स्वीकार किया गया है। कौटिल्य का कथन है कि राजा को प्रजा के सुख में अपना सुख और उसके हित में ही अपना हित समझना चाहिए।[८९] अशोक के अभिलेखों में भी इसी प्रकार का संकेत है।[९०]

राजा प्रजा हितार्थ राज्य का भ्रमण करते थे जिससे कि शासन तंत्र प्रभावी बना रहे तथा अधिकारियों व कर्मचारियों के भ्रष्टाचार व निरंकुशता पर नियंत्रण किया जा सके। इस संबंध में महाराज अशोक का उदाहरण प्रसिद्ध है। अशोक की भाँति हर्ष भी अपने राज्य में दूर-दूर तक भ्रमण करता था। युआन च्वांग के यात्रा विवरणों से पता चलता है कि हर्ष ने अपनी पूर्वी भारत यात्रा के समय कजंगल (राजमहल) में अपना दरबार किया था।[९१] राजा गण बड़ी शान शौकत के साथ भ्रमण करते थे। उनके साथ उनके सामन्तगण और सेना भी साथ चलती थी। सम्राट के ठहरने के लिए अस्थायी विश्राम गृह बनाये जाते थे जिन्हें 'जयस्कंधावार' कहते थे। वाण जब महाराज हर्ष के दरबार में सर्वप्रथम लाया गया था तब सम्राट हर्ष जयस्कंधावार में ठहरा था जो राप्ती (अजिरावत्ती) नदी के तट पर मनिपुर नामक ग्राम में स्थित था।[९२] शिशुपालवध में महाकवि माघ ने भी अस्थायी शिविरों का उल्लेख किया जिसमें राजा अपने सामन्तगण एवं सेना के साथ ठहरते थे।[९३]

माघ रचित शिशुपालवध ७वीं शती के उत्तरार्द्ध की रचना होने के कारण अपने युग की अनेक राजनीतिक विशिष्टताओं को संजोए हुए है। माघ ने सिर्फ एक महान कवि थे वरन् एक उच्चकोटि के विद्वान भी थे, उनके ग्रन्थ से स्पष्ट है कि वह शासन कला के सैद्धान्तिक व यथार्थवादी पक्षों की विशद

विवेचना में पारंगत थे। राजा के छोटे-मोटे कर्तव्यों से लेकर सेना की छोटी-छोटी बातों तक का उल्लेख शिशुपालवध में हुआ है। राजनीति के पारिभाषिक शब्दों का कवि ने अनेकों अवसरों पर प्रयोग किया हैं। सप्ताङ्ग सिद्धान्त[९४], छह गुण,[९५]तीन शक्ति, तीन उदय तथा अंग पञ्चक,[९६] बारह प्रकार के राजाओं[९७] आदि पारिभाषिक शब्दों की चर्चा की गयी है।

राज्य के शासन में सामन्तों की विशेष भूमिका थी। शिशुपालवध में अनेक राजाओं का उल्लेख है जो सर्वोच्च राजा के अधीन कार्य करते थे।[९८] सामन्तों के साथ जुड़ी राजनीतिक व्यवस्था की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में गंभीर मतभेद है। बी० एन० एस० यादव ने भारत में सामन्तवाद का अंकुरण प्राक गुप्ताकालीन साक्ष्यों में मानते हैं।उनका विचार है कि सामन्ती व्यवस्था का बीजारोपण शक-कुषाण युग में माना जाना चाहिए।[९९] सामन्ती व्यवस्था का अभिलेखों में स्पष्ट परिचय सर्वप्रथम प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है।[१००] प्रयाग प्रशस्ति में स्वयं सामन्त शब्द अप्रयुक्त है परन्तु इससे स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त का साम्राज्य सामन्तवादी व्यवस्था पर एक संघ राज्य था जिसमें महाराजाधिराज के अधीन अनेक महाराज और महाराजाओं के अधीन अनेक राजा होते थे। अधीन राजा सम्राट का सर्वकरदान, आज्ञाकरण, प्राण्यमागमन, आत्मनिवेदन, कन्योपायनदान जैसी नीतियों के द्वारा प्रसन्न करते थे।[१०१] एस० आर० गोयल ने सिद्ध किया है कि स्वयं समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में अपने अधीन अनेक राजवंशों को स्थापित किया था।[१०२] उसके बाद अधीन राजाओं की संख्या क्रमशः बढ़ती गयी। स्कन्दगुप्त के कहौम अभिलेख में कहा गया है कि उसके सभामण्डप में सैकड़ों राजा उपस्थित होकर सर झुकाते थे।[१०३] गुप्तों के पतन के फलस्वरुप सामन्ती व्यवस्था और सबल हो गयी। प्रांतीय शासक जिनका कार्यकाल संभवतः सम्राट की कृपा पर निर्भर करता था, सम्राटों के दुर्बल होने के कारण महाराज उपाधिधारी बन गये और उनके पद आनुवांशिक भी हो गये। एक मैत्रक अभिलेख में कहा गया है कि इस वंश के तीसरे सदस्य ध्रुवसेन को अखिल भूमण्डल के स्वामी ने स्वयं आकर महाराज पद पर अभिषिक्त किया था।[१०४] इसके अतिरिक्त गुप्त काल में ब्राह्मणों को जागीरें देने की प्रथा धीरे-धीरे बढ़ती गयी। इसके परिणामस्वरुप ऐसे ब्राह्मण जिनके पास काफी बड़ी जागीर थी धीरे-धीरे राजा बन बैठै। डॉ० गोयल ने ध्यान दिलाया है कि मध्य प्रदेश के परिव्राजक और एरण के विष्णु वंश के आदि पुरुष इसी प्रकार के वेदपाढी और मूलतः अपने जातीय कर्म में रत ब्राह्मण थे, परन्तु उनके उत्तराधिकारी धीरे-धीरे राजा बन बैठे।[१०५]

हमारे अध्ययन काल में सामन्ती व्यवस्था का जो रूप विकसित हुआ उसका परिमार्जित रूप बाण के हर्षचरित व माघ के शिशुपालवध में मिलता है। वाण ने हर्षचरित में सामन्तों के अनेक प्रकारों जैसे— सामन्त, महासामन्त, आप्त सामन्त, प्रधान सामन्त, शत्रु सामन्त, प्रति सामन्त और सम्राट से उनके संबंधों का विवरण दिया है।[१०६] हर्षचरित से पता चलता है कि सम्राट पुश्यभूति महासामन्तों को परास्त करके उनसे कर वसूला करते थे।[१०७] ऐसे सामन्त कराधिकृत सामन्त कहलाते थे। इसी प्रकार राज्यवर्धन जब हूणों से युद्ध करने हेतु प्रस्थान कर रहा था तो चुने हुए सामन्तों को उनके साथ भेजा गया था।[१०८]महाकवि माघ ने द्वितीय सर्ग के नौवें श्लोक में कराधिकृत राजाओं का उल्लेख किया है।[१०९] इसी प्रकार शिशुपालवध के पंचम अध्याय के बारहवें व तेरहवें श्लोक में अनुगामी राजाओं का उल्लेख है।[११०] शिशुपालवध के अन्य अनेक सर्गो में भी तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरुपों सहायक राजाओं व सामन्तों का उल्लेख हुआ है। शिशुपालवध के चौदहवें सर्ग में ऐसे राजाओं का उल्लेख है जो युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ के समय धन व रत्न आदि भेंट करते हैं।[१११] पराजति राजाओं से सम्राट द्वारा आवश्यकता पड़ने पर अन्य कार्य भी लिए जाते थे।[११२]

अर्थशास्त्र के अनुसार सम्प्रभुता सहायता के बिना सम्भव नहीं है, अर्थात् राजा को मन्त्री की सलाह आवश्यक है। कौटिल्य के अनुसार मन्त्रियों की नियुक्ति आवश्यकतानुसार की जानी चाहिए। कामन्दक के अनुसार बारह मन्त्री होने चाहिए। हमारे अध्ययन काल में भी प्रशासन चलाने में मन्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था। मन्त्री को सचिव अथवा अमात्य कहा जाता था। युआन च्वाँग के अनुसार हर्ष को कन्नौज के दरबारियों व मन्त्रियों ने थोनी के नेतृत्व में शासन ग्रहण करने के लिए आमंत्रित किया था।[११३] इससे यह पता चलता है कि मन्त्रि व उच्च अधिकारीगण विपरीत परिस्थितियों में उत्तराधिकार जैसे महत्वपूग्र प्रश्न पर भी निर्णय करते थे। सम्राट हर्षवर्धन का प्रधान सचिव उसका ममेरा भाई भांडी था। हर्ष का संधि-विग्रहक अवंती था जिसने उनकी आज्ञा से देश के समस्त राजाओं के लिए इस आशय की घोषण की थी कि या तो वे सम्राट की अधीनता स्वीकार करें या युद्ध के लिए तैयार हो जावे।[११४]

विस्तृत साम्राज्य और धीमे यातायात के साधनों के कारण यह आवश्यक था कि प्रशासनिक केन्द्रों का विस्तार किया जाए जिससे कि सम्पूर्ण राज्य पर प्रभावी ढंग से शासन किया जा सके। इसलिए दूरस्थ स्थिति प्रान्तों के लिए गवर्नर नियुक्त किये जाते थे।[११५] शिशुपालवध के चौदहवे सर्ग के

तैतालीसवें श्लोक में विवरण मिलता है कि विजयी राजा पराजित राज्यों को सीमा विभाजन इस प्रकार करते थे जिससे कि साम्राज्य में स्थिरता बनी रहे।[११६]

हमारे अध्ययन काल में मंत्रियों का प्रशासनिक व्यवस्था में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान था। राजा उनसे मन्त्रणा करते थे। परन्तु उनकी सलाह मानने के लिए बाध्य नहीं थे। शिशुपालवध में उल्लेख है कि राजा को मन्त्रियों की सलाह अवश्य लेनी चाहिए।[११७] इसी प्रकार मन्त्री द्वारा उचित सलाह न देने पर उसे निकालने का अधिकार भी राजा को था।[११८] शिशुपालवध के रचयिता महाकवि माघ के पूर्वज स्वयं भीनमाल के राजा वर्मलात की मन्त्रिपरिषद के सदस्य थे। कवि वंश वर्णन के अनुसार सुप्रभदेव, जो कि माघ के पितामह थे, राजा वर्मलात के यहाँ सर्वाधिकारी के पद पर कार्यरत थे। राजा वर्मलात सुप्रभेदव की मन्त्रणा को बुद्ध के उपदेशों की भाँति बिना संकोच या अनुरोध के स्वीकार करते थे।[११९] वसंतगढ़ से प्राप्त शिलालेख से पता चलता है कि राजा वर्मलात का समन्त वज्रभट्ट सत्याश्रय का पुत्र रज्जिल उस प्रदेश का स्वामी था।[१२०] राज्यों के प्रशासन में मंत्री, संधि विग्रहिक तथा सेनापति प्रमुख भूमिका निभाते थे। संधि विग्रहिक युद्ध व शान्ति मंत्री होता था।

अध्ययन काल के साक्ष्यों में दूतक नामक एक पदाधिकारी होता था। यह पद किसी अत्यधिक विश्वासपात्र व्यक्ति को ही दिया जाता था। कभी-कभी यह पद राजकुल के किसी राजकुमार को भी दिया जाता था। इसके कार्यों के विषय में अलग-अलग साक्ष्य मिलते हैं। परन्तु वर सन्धि विग्रहिक का कार्य निश्चित रूप से करता था। उसका उद्देश्य अपने सम्राट के हितों का ध्यान में रखते हुए अन्य राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देना होता था। हर्षचरित से पता चलता है कि आसाम नरेश भाष्कर वर्मा ने हर्ष साथ मित्रतजा को प्रगाढ़ करने हेतु एक दूत भेजा था।[१२१] शिशुपालवध के सोलहवें सर्ग में शिशुपाल के दूत के उल्लेख है जो सही समय पर सही उत्तर देने में समर्थ था तथा द्विअर्थी (प्रिय तथा अप्रिय) बातों का विशेषज्ञ था। वह कूटनीति विशेषज्ञ था।[१२२]

गुप्तोत्तर काल युद्ध व संघर्षों का काल था। छोटे-छोटे राजा, महाराजा, सामन्त आपस में सदैव संघर्षरत रहते थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में बड़ी और सुसंगठित सेना समय की आवश्यकता थी। सम्राट अपने अधीनस्थ राजाओं को भयाक्रांत रखने तथा विदेशी राजाओं से अपने राज्य की सुरक्षा हेतु सेना के संगठन व भर्ती पर विशेष ध्यान देते थे। युआन च्वाँग के अनुसार सम्राट हर्ष की सेना में साठ

हजार हाथी तथा एक लाख घोड़े थे ।[१२३] ये संख्याएँ कुछ अतिश्योक्ति प्रतीत हो सकती है क्योंकि इसके अतिरिक्त पैदल सेना, रथ भी संभवता रहे होंगे । परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि सम्राट हर्ष की अपनी निजी सेना के अतिरिक्त उसमें सामन्तों व अधीनस्थ राजाओं की सेना भी सम्मिलित रही होगी । हर्ष चरित में भी हर्ष की विशालकाय सेना का उल्लेख मिलता है ।[१२४]

शिशुपालवध में सेना व सेना प्रयाण का चित्रात्मक वर्णन मिलता है । शिशुपालवध के वर्णन से स्पष्ट है कि इस युग में सेना में सम्राट की निजी स्थायी सेना के अतिरिक्त सामन्तों, अधीनस्थ राजाओं द्वारा लायी गयी सैनिक शक्ति भी सम्मिलित होती थी ।[१२५] यद्यपि महाकाव्य में चतुरंगिणी सेना का वर्णन मिलता है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हस्ति सेना की प्रमुख भूमिका थी तथा रथ सेना का महत्व कम हो गया था । घुड़सवार सेना का महत्व के दृष्टिकोण से हस्ति सेना के उपरान्त दूसरा स्थान था । डॉ० आर० पी० त्रिपाठी ने विभिन्न सर्गों में उल्लेख के आधार पर ऐसा ही निष्कर्ष निकाला है ।[१२६] महाकाव्य शिशुपालवध के पाँचवें सर्ग में जिसमें सेना प्रयाण व सेना के ठहरने का वर्णन है, रथ सेना का उल्लेख सिर्फ एक श्लोक में हुआ है जबकि हस्ति सेना का २३ श्लोकों में तथा घुड़सवार सेना का उल्लेख ९ श्लोकों में हुआ है ।[१२७] युद्ध के वर्णन में हस्ति सेना की भूमिका का उल्लेख २६ श्लोकों में हुआ है जो कि सेना के अन्य अंगो की तुलना में हस्ति सेना के महत्व को प्रदर्शित करता है ।[१२८] वाण के हर्षचरित से पता चलता है कि हर्ष जब सम्राट सेना के निरीक्षण हेतु निकलते तो वह हथिनी पर सवार थे ।[१२९] हस्ति सेना की बढ़ती हुई भूमिका का आकलन महापद्म नन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य व सम्राट हर्षवर्धन की सेना के तुलनात्मक अध्ययन से किया जा सकता है । महापद्मनन्द की सेना में ८०,००० घोड़े, २ लाख पैदल सैनिक, ८००० रथा तथा ६००० हाथी थे ।[१३०] चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में पैदल सेना ६ लाख, ३० हजार घोड़े तथा ९००० हाथी तथा रथ थे ।[१३१] युआन च्वाँग सूचित करता है कि हर्ष ने अपनी सेना में वृद्धि की तथा हस्ति सेना की संख्या ६० हजार तथा घुड़सवार सेना १ लाख तक पहुँच गयी थी ।[१३२]

तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि नन्द नरेश की सेना में ८००० रथ तथा ६००० हाथी थे । जब कि हर्ष की सेना में ६०,००० हाथी थे तथा रथ सेना इतनी सीमिति थी कि युआन च्वाँग ने उसकी संख्या का उल्लेख भी नहीं किया है । इसी प्रकार मौर्य नरेश की सेना में ३० हजार घोड़े तथा हाथी मात्र ९००० थे, अर्थात् घुड़सवार सेना और शस्ति सेना में ३.५ : १ का अनुपात था जबकि हर्ष की सेना का अनुपात

१.५ : १ था। टी० वी० महालिंगम के अनुसार हर्ष के शासन काल के उपरान्त हिन्दू चतुरंगिनी सेना में रथों का उपयोग अत्यधिक सीमित हो गया था।[१३३] इसी प्रकार हर्ष के मधुवन ताम्रपत्र अभिलेख में नाव, हाथी तथा घोड़ों का उल्लेख है परन्तु रथों का उल्लेख नहीं है।[१३४] जे० सरकार का मत है कि ८वीं शती के उपरान्त रथों का प्रयोग युद्ध में समाप्त प्राय: हो गया था। युद्ध में राजाओं की विजय का मुख्य आधार हस्ति सेना ही हुआ करती थी।[१३५] कामन्दक नीतिसारके अनुसार युद्ध कला में पारंगत तथा युद्ध सामग्री से पूर्णत: सुसज्जित एक हाथी ६००० घुड़सवार सेना के बराबर होता था।[१३६] उपरोक्त वर्णन अतिश्योक्ति पूर्ण प्रतीत होता है परन्तु यह हस्ति सेना की प्रमुख भूमिका को रेखांकित करता है। जीवित गुप्त के देव-बरर्नाक अभिलेख में महत्व के दृष्टिकोण से हस्तिसेना का सर्वप्रथम उल्लेख हुआ है उसके उपरान्त घुड़सवार तथा पैदल सेना का वर्णन मिलता है।[१३७] इसी प्रकार सोमदेव सूरी के नीतिवाक्यामृत अनुसार हस्ति सेना का सेना के अन्य अंगों की तुलना में महत्वपूर्ण स्थान था तथा यही राजा की विजय का आधार थी।[१३८] वर्णन से पता चलता है कि एक हाथी एक हजार लोगों को युद्ध में उलझाये रखता था तथा सैकड़ों घावों के उपरान्त भी वह विचलित नहीं होता था।[१३९] हस्ति सेना दुर्गों के युद्ध में प्रमुख भूमिका निभाती थी।

हस्ति सेना के उपरान्त घुड़सवार सेना का प्रमुख स्थान था। अच्छी नस्ल के घोड़े भारत में नहीं मिलते थे, तथा उनको बाहर से मँगाना पड़ता था। महाकवि माघ ने पाँचवे सर्ग के दसवें श्लोक में आरट्ट (अरब) देश में उत्पन्न श्रेष्ठ नस्ल के घोड़ों का उल्लेख किया है।[१४०] इसी प्रकार चौवनवें श्लोक में बल्खदेश के घोड़ों का उल्लेख किया है।[१४१] हर्षचरित में बाण ने घुड़साल का वर्णन किया है जिसमें विदेशी नस्ल के घोड़ों की भरमार थी।[१४२] पूर्व मध्यकाल में हस्ति सेना का प्रमुख स्थान होने का कारण संभवत: यह था कि भारत में अच्छी किस्म के हाथी बहुतायत में उपलब्ध थे जब कि अच्छी नस्ल के घोड़ों की पूर्ति विदेशों से ही होती थी। चूँकि पूर्वमध्यकाल संघर्ष व युद्धों का युग था तथा विदेशी व्यापार का पतन हो गया था ऐसी परिस्थितियों में अच्छे घोड़ों का मिलना कठिन था। कुछ विद्वानों के अनुसार हस्ति सेना पर अत्यधिक निर्भरता तथा घुड़सवार सेना की उपेक्षा भारत की तुर्कों के हाथ पराजय का प्रमुख कारण थी।[१४३]

पूर्व मध्यकाल व्यक्तिगत साहस व शौर्य का युग था। इस युग में युद्ध का सर्वमान्य तरीका आमने

सामने का युद्ध ही था। शिशुपालवध में पैदल सेना का पैदल सेना के साथ, घुड़सवार सेना का घुड़सवार सेना के साथ, हस्ति सेना का हस्ति सेना के साथ तथा रथों का रथों के साथ युद्ध का वर्णन मिलता है।[१४४] नैषाध्यचरित में उल्लेख है कि नल की सेना में यद्यपि अनेक तलवार चलाने में कुशल योद्धा थे लेकिन वह अपने सामने के युद्ध में माहिर थी।[१४५] शिशुपालवध में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है जब आमने-सामने योद्धागण क्रोध के आवेश में वेग के साथ एक दूसरे के सम्मुख पहुँचकर और हथियार छोड़कर एक दूसरे का हाथ पकड़कर मल्लों की भाँति मुक्केबाजी करते हुए बाहु युद्ध करने लगे।[१४६] लाखों-लाख की सेनाएँ जब इस प्रकार युद्ध करती भी तो अत्यधिक जान माल की हानि होती थी और क्रोध में अपने-पराया तक का भेद मिट जाया करता था। इस प्रकार के युद्ध में व्यक्गितम शूरवीरता, स्वाभिमान व साहस ही निर्णायक तत्व हुआ करते थे, युद्ध रणनीति, कौशल व सोच समझ कर की गयी कार्यवाई का स्थान युद्ध में गौढ़ हो गयां था। इस प्रकार आमने सामने का युद्ध प्राचीन काल से लेकर पूर्व मध्य काल तक प्रचलित था यद्यपि कभी-कभार कूटनीति, रणनीति के अन्य तत्व भी अपनी भूमिका निभाते थे।[१४७]

पूर्व मध्यकाल के युद्ध में जहाँ आमने सामने बाहु युद्ध से ही विजय-पराजय का फैसला होना हो, मृत्य.दर अत्यधिक ज्यादा रही होगी। युद्ध में कवच का इस्तेमाल किया जाता था। शिशुपालवध में युद्ध स्थल में राजा लोगों छिद्र रहित कवच का उल्लेख मिलता है जिसने बाहर की तरफ नुकीली सुइयां जड़ी रहती थी।[१४८] इस प्रकार के कवच से रक्षा तो होती ही होगी साथ ही मल्ल युद्ध में भी यह अत्यधिक उपयोगी होते रहे होंगे।

दुर्गों की प्राचीन काल से ही राज्य की सुरक्षा में विशेष महत्व रहा है। आक्रमणकारी सेना का उद्देश्य शत्रु की घेराबंदी करके रसद आपूर्ति बन्द कर देना होता था। रसात्मक सेना दुर्ग के भीतर अपने को सुरक्षित रखती थी। दुर्ग के भीतर रसद सामग्री, पानी व जानवरों के लिए चारा की व्यवस्था रहती थी। शिशुपालवध में चेदि राजधानी महिष्मती का घेरा डालने का व उसकी रसद आपूर्ति बन्द कर देने का आग्रह बलराम जी करते हैं।[१४९] इस युद्ध में आक्रमणकारी सेना से रक्षा के दृष्टिकोण से पहाड़ियों पर स्थित दुर्गों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। पहाड़ी पर स्थित दुर्ग पर आक्रमण न सिर्फ दुष्कर कार्य होता था बल्कि इस दुर्ग का रक्षण भी आसान होता था क्योंकि दुर्ग में ऊपर बैठे रक्षक गण नीचे से चढ़कर

आने वाले आक्रमणकारियों को न सिर्फ ठीक से देख सकते थे बल्कि इन पर आसानी से प्रत्याक्रमण भी किया जा सकता था। शिशुपालवध में हाथी पर सवार सैनिकों की तुलना पर्वत के दुर्गों से की गयी है जो कि लोगों को नीचे देख रहे थे तथा निर्भय होकर उन पर विपुल बाण वर्षा कर रहे थे।[१५०]

युद्ध में तलवार, धनुषबाण, भाला, चक्र आदि हथियारों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। भारत में प्राचीन काल से ही धनुष बाण सेना के प्रमुख अस्त्र रहे हैं। महाभारत व रामायण के युद्धों में धर्नुविद्या ने ही युद्ध का निर्णय किया था। यूनानी विवरणों में भारतीय धर्नुविद्या की अत्यधिक प्रशंसा की गयी है।[१५१] घोड़े पर सवार होकर धनुष बाण का उपयोग भारत में शक-कुषाणों के आगमन से शुरु होता है।[१५२] धर्नुविद्या में ७वीं शती तक युद्धों में प्रमुख भूमिका निभाती रही यद्यपि पूर्व मध्ययुगीन अनेक प्रवृत्तियों यथा शूरवीरता का एक संस्था के रूप में उभार, आमने सामने के बाहु युद्ध, आदि ने तलवार के प्रचलन को बढ़ावा दिया। हर्षचरित में धनुष विद्या को युद्ध का प्रमुखतम शस्त्र माना गया है।[१५३] प्राचीन काल में युद्ध कला धर्नुविद्या ही कहलाती थी। शिशुपालवध में तलवार व धनुषबाण के युद्ध में उपयोग के अनेकों उद्धहरण मिलते हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ८वीं शती के आसापास और उसके उपरान्त तलवार की युद्ध में निर्णायक भूमिका होती थी। नैषाध्यचरित में तलवार को युद्ध का श्रेष्ठतम शस्त्र माना है।[१५४] इसी प्रकार १०वीं शती के उपरान्त अन्य अनेक साक्ष्यों में चमकती तलवारों को ही सेना का प्रमुख अस्त्र माना गया है।

पूर्व मध्यकाल में गुप्तचर व्यवस्था राजनीति व शासन व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग थी। शुक्रनीतिसार के अनुसार जो राजा गुप्तचर व्यवस्था को अनदेखा करता है वह म्लेच्छ है।[१५५] शिशुपालवध में अनेक स्थलों पर गुप्तचर व्यवस्था का महत्व प्रतिपादित किया गया है। बलराम जी कहते हैं कि मन्त्रभ करने के बाद विलम्ब करना हितकर नहीं है क्यों कि भेद के शत्रुओं के गुप्तचर द्वारा जान लेने का खतरा बना रहता है।[१५६] इसी प्रकार शत्रु पर आक्रमण करने के पहले उसके विषय ने सारी बातें अर्थात् अच्छाइयों व कमजोरियों को जान लेना चाहिए।[१५७] महाकवि माघ ने गुप्तचरों के महत्व को अत्यधिक रेखांकित करने हुए लिखा है कि राजा की नीति योग्य गुप्तचरों से रहित होने पर सुशोभित नहीं होती।[१५८] गुप्तचरों की भूमिका मात्र जानकारी एकत्र करना न होकर अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। गुप्तचरों को शत्रु पक्ष का विश्वास अर्जित करके राजा आदि के कुछ लेखों को प्रकट करके शत्रु के अमात्य

व कर्मचारियों के बीच वैमनस्य पैदा कर देना चाहिए।[१५९] गुप्तचरों का काम गुप्त संदेशों को पहुँचाने का भी होता था।[१६०] गुप्तचर व्यवस्था का युद्ध संचालन में संभवतः ९वीं तथा १०वीं शती के आसपास महत्व कम हो गया था। एक ऐसे युग में जब शौर्य व शूरवीरता समाज का प्रमुख तत्व है तथा कूटनीति व रणकौशल का युद्धों में महत्व कम हो गया हो, यह काफी स्वभाविक प्रतीत होता है।

किन्हीं भी कारणों से गुप्तचर व्यवस्था की भूमिका का युद्ध व शासन में महत्व कम होने के अत्यधिक दूरगामी परिणाम हुए। पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द्र एवं बंगाल के लक्ष्मणसेन तथा इनके साथ भारत को इसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी क्योंकि ये राजागण देश की सुरक्षा में सक्षम थे परन्तु तुर्कों के विषय में सही जानकारी के अभाव में असफल सिद्ध हुए।१२वीं शती में गुजरात के शासक वास्तुपाल ने कुशल गुप्तचर व्यवस्था का गठन किया था।[१६१] कहा जाता है कि उसने अपने कुशल गुप्तचरों के द्वारा पड़ोसी शत्रु राजाओं पर श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी जो कि शौर्य के नशे में गुप्तचरों के संगठन को सही महत्व नहीं देते थे।[१६२]

शिशुपालवध में सेना प्रयाण का विस्तृत उल्लेख मिलता है। सेना में राजाओं के साथ उनकी रानियाँ, दास-दासियाँ, प्रेमिकाएँ एवं गणिकाओं के जाने का उल्लेख मिलता है।[१६३] नित्यप्रति की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापारीगण भी सेना के साथ चलते थे। वह अपने सामान ऊँटो[१६४] व बैलगाड़ियों[१६५] पर लादे रहते थे।जहाँ सेना अपना पड़ाव डालती थी, व्यापारीगण वहाँ अपनी दुकान सजा लेते थे। सेना के प्रस्थान के साथ व्यापारीगण भी प्रस्थान करते थे।

सेना में भोग विलास की प्रवृत्तियाँ अत्यधिक बढ़ गयी थी। प्राचीन काल में भी हरम की स्त्रियाँ सेना के साथ जाती थी लेकिन यह प्रवृत्ति पूर्व मध्यकाल में अत्यधिक बढ़ गयी प्रतीत होती है। शिशुपालवध में इनका विस्तृत उल्लेख मिलता है। शिशुपालवध के पंचम सर्ग से लेकर दशम सर्ग तक इन्हीं प्रवृत्तियों का वर्णन कवि ने किया है।[१६६] हर्षचरित से पता चलता है कि सामान्य जनता को सेना प्रयाण से काफी कष्ट होता था क्योंकि उससे उनकी फसलों को नुकसान पहुँचता था।[१६७] शिशुपालवध के विवरण से पता चलता है कि सेना प्रयाण से रास्ते में पड़ने वाले गाँवों को परेशानी उठानी पड़ती थी।[१६८]

पूर्व मध्यकालीन सेना अधीनस्थ राजाओं द्वारा लायी गयी तथा सम्राट की स्थायी सेना को

मिलाकर बनती थी। भिन्न-भिन्न सामंतों के प्रति निष्ठावान सैनिकों का एक संगठित रूप में लड़ना अत्यधिक कठिन था। इसी प्रकार अपेन शौर्य और व्यक्तिगत साहस के मद में डूबे तथा आपस में शत्रुता रखने वाले क्षत्रियों का एक निश्चित इकाई के रूप में संगठित होना संभव नहीं था। सेना में सैनिकों के अतिरिक्त दास, नौकर, दासियाँ, गणिकाएँ व्यापारी आदि इतने अधिक लोग होते थे कि सेना एक भीड़ का समूह दिखती थी न कि अनुशासित सैनिकों की सेना। ऐसी सेनाओं को न तो शीघ्र ही इकट्ठा किया जा सकता था और न ही किसी त्वरित कार्यवायी के लिए ये उपयोगी थी। इसीलिए पूर्व मध्यकालीन सेनाओं की वास्तविक शक्ति उनकी संख्या के मुकाबले काफी कम होती थी।

शूरवीरता पूर्व मध्यकाल की सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों का एक प्रमुख अंग थी। ११वीं शती के मध्यकालीन यूरोप की भी यह प्रमुख विशेषता थी। विभिन्न विद्वानों ने इसको भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ ने इसे सामन्तीय गरिमा, कुछ ने इसे एक सैनिक संस्था, जबकि कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार यह जीवन का दृष्टिकोण था।[१६९]

शौर्य की परंपरा भारत में प्राचीन काल से ही थी। रामायण एवं महाभारत शौर्य गाथाओं में ओत प्रोत है। उत्तरी भारत के प्रारम्भिक साम्राज्यों में संतुलित व संयमित शूरवीरता के लक्षण दिखते हैं। अर्थशास्त्र शौर्य व साहस को कूटनीति के उपरान्त द्वितीय स्थान देते हैं।[१७०] गुप्त अभिलेखों में नियंत्रित शौर्य का उल्लेख मिलता है।[१७१] हर्षचरित में भी नियंत्रित शौर्य के ही आदर्श को श्रेष्ठ माना गया है।[१७२] शिशुपालवध भी शूरवीरता एवं साहस के विवरणों से भरा है।शिशुपाल के द्वितीय सर्ग में उद्धव व बलराम दो राजनीतिक परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते है। जहाँ उद्धव कूटनीति के माध्यम से शिशुपाल की समस्या को निबटाना चाहते हैं तो वही बलराम उस पर सीधे आक्रमण कर उसे समाप्त कर देना चाहते है।[१७३] बलराम कूटनीति की शास्त्रीय परम्पराओं की आलोचना करते हैं।[१७४] वह शत्रु के विपत्ति में होने पर उस पर आक्रमण करने को उचित नहीं मानते हैं उनका मत है कि शत्रु जब अपनी शक्ति के सर्वोच्च शिखर पर हो तभी उस पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर देना चाहिए क्योंकि राहु चन्द्रमा को पूर्णमासी को ही ग्रसता है।[१७५] बलराम के अनुसार राजनीति का सार अपनी शक्ति में विस्तार तथा शत्रु का विनाश है। वह कूटनीति, मन्त्रिगण, गुप्तचर आदि में विश्वास नहीं करते हैं।[१७६] महाकाव्य युद्ध को महिमामण्डित करता है। शिशुपालवध के अनुसार—रणभूमि में वीर सैनिक की मृत्यु होने पर स्वर्ग की

अप्सराएँ उपभोग करने को मिलेंगी, तथा इस लोक में कीर्ति व्याप्त होगी।[१७७] एक स्वाभमिनी पुरुष के लिए आत्मसम्मान से बढ़कर कुछ भी नही है और वह शत्रु की उपस्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता।[१७८] वीर सैनिक रणभूमि में बंदी बनाये जाने की अपेक्षा प्राण न्यौछावर करना अधिक उचित समझते थे।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि महाकवि पूर्ण मध्यकालीन शूरवीरता की परंपरा का उल्लेख तो किया है परन्तु वह व्यक्तिगत रूप से इसके विरुद्ध थे। बलराम निश्चित रूप से युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं परन्तु उद्धव पूर्व से चली आ रही अर्थशास्त्रीय परम्परा के पोषक है। विजयाभिलाषी राजा को अपने में बुद्धि तथा उत्साह दोनों को रखने का प्रयत्न करना चाहिए।[१७९]

संदर्भ

१. ऐहोल प्रशस्ति

२ हर्षचरित्र–

३. युआन च्वॉग टैवेल्स इन इण्डिया, वाटर्स, पृ० २४९-५०

४ कैम्पबेल बाम्बे गजेटियर, खंड I, पार्ट I, पृ० ४७१-७८

५ स्मिथ अर्ली हिस्टी ऑफ इण्डिया, पृ० ३४०, डी० आर० भण्डारकर, आर० एस० त्रिपाठी-हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० २२१ आदि।

६. ओझा गौ० ही०, राजपूताना का इतिहास, खण्ड ६.पृ० १५५, वैद्य सी० वी० हिस्टी ऑफ मेडिवल हिन्दू इण्डिया, खंड छ, पृ० ३२, शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, पृ० ४७२-४८५

७. मुंशी के० एम०, द ग्लोरी दैट वाज गर्जुरदेश, पृ० ४

८. जोधपुर व घटियाल अभिलेख देखे मजूमदार आर० सी० ए० ड०, XVIII, पृ० ८७, मुन्शी देवी प्रसाद व कीलहार्न जे० आर० ए० एस०, १८९५, पृ० ५१

९. एपिग्राफिक इंडिका, XVIII, पृ० ८७

१०. इंडियन एक्टिक्वेरी, XIII, पृ० ७७-९

११ चट्टोपाध्याय सुधाकर अर्ली हिस्टी ऑफ नार्थ इण्डिया, पृ० ३०४

१२. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० ६६-६७

१३. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० ७४, १७६-१७७

१४. पुरी, वी० एन०, दि हिस्टी ऑफ गुर्जर प्रतिहार, पृ० ४३

१५. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० ६६-६७
१६. बील, खंड II, पृ० २६९
१७. एपिग्राफिक इंडिका, IX, न० २, पृ० २७९
१८. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १७५
१९. इण्डियन एक्टिक्वेरी, १९१०, पृ० १९१
२० मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १७९
२१. इण्डियन एक्टिक्वेरी, १९१०, पृ० १९०
२२ ओझा, गौ० ही०, हिस्टी ऑफ उदयपुर, खंड I, पृ० १०२
२३ शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २३४
२४. आबू अभिलेख १२८५ ईस्वी, पंक्ति ९
२५ बनर्जी, ए० सी०, राजपूत स्टडीज, पृ० ८ प० पृ०
२६. एपिग्राफिक इंडिका, XII, पृ० १०, प० पृ०
२७. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २११
२८ भारत कौमुदी, I, पृ० २६७
२९. एपिग्राफिक इंडिका, XX, पृ० १२२, प० पृ०
३० मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग , पृ० १८२
३१. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १८३
३२. मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १८३
३३. एपिग्राफिक इंडिका, खंड IX, पृ० १८९
३४. शिशुपालवध कवि वंश वर्णन, पृ० ५३८-५९
३५ शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २२८
३६. शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० २२८
३७. का० इ० इ० III, पृ० २०२
३८ का० इ० इ० III पृ० २१३
३९. गांगुली डी० सी०, जे० वी० ओ० आर० एस० XIX, पृ० ४०२ ; मुखर्जी आर० के० हर्ष पृ० ६०-६७
४०. सिन्हा बी० पी०, डिक्लाइन ऑफ दि किन्गडम ऑफ मगध, पृ० ३१२-३१९

चट्टोपाध्याय सुधाकर, अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ० २४४

४१. मजुमदार आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १४३

४२. का० इं० इ० III, पृ० २०२

४३ चटर्जी, गौ० भ०, हर्ष, पृ० २५-२६

४४. का० इ० इ० III, पृ० २०२

४५. का० इं० इ० III, न० ४६-४८, पृ० २१३

४६. का० इं० इ० III, न० ४६-४८, पृ० २१०

४७. सिन्हा बी० पी०, डिक्लाइन ऑफ दि किन्गडम ऑफ मगध, पृ० ३१२-३१९

४८ मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० १४५

४९ राय चौधरी, एच० सी०, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट इंडिया, पृ० ४२४

५०. एपिग्राफिक इंडिका, XII. पृ० ११०

५१. का० इं० इ०, खण्ड ३ की भूमिका, पृ० १४

५२. चटर्जी गौरी शंकर, हर्षवर्धन, पृ० १०

५३. का० इं० इ०, खंड ३, न० ४८-५१, पृ० २२१-२२८

५४ एपिग्राफिक इंडिका, XIV, पृ० १२०

५५. एपिग्राफिक इंडिका, XIV, पृ० १२०-१२१

५६. हर्षचरित

५७. का० इं० ई०, खंड ३, लेख न० ४८-५१

५८. मजूमदार आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० ७६-७७

५९ ए० इं०, खण्ड १४, पृ० ११०

६० का० इ० इ०, खण्ड ३, न० ४७

६१. ए० इ०, खण्ड १४, पृ० ११० व आगे

६२ चटर्जी गौ० शं०, हर्षवर्द्धन, पृ० २०

६३. हर्षचरित, ४, २४१

६४. हर्षचरित, ४, २४१

६५ हर्षचरित, ४, २५३

६६ इ० ई० , खण्ड १४, पृ० २८४

६७. मजुमदार आर० सी० , श्रेणी युग, पृ० ८१

६८ वही, पृ० ८१

६९. त्रिपाठी, आर० एस० , हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० १९४

७०. कनिंघम, आके० सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट XV, पृ० १६४

७१ गौडवहो, श्लोक १०६४-६५

७२. स्टीन, राजतरंगिणी, भूमिका, पृ० ८९

७३ गौडवहो

७४ एपिग्राफिक इडिका, XX, ३७

७५. इण्डियन एक्टिक्वेरी, XL II (१९१३) पृ० २४९

७६. मजुमदार आर० सी० , श्रेणी युग, पृ० १४८

७७. राजतरंगिणी - १३४-१४६

७८. त्रिपाठी आर० एस० , हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० २०८-२११

७९. अर्थशास्त्र ६, ११

८०. अर्थशास्त्र ८, २

८१. 'परमभट्टारक महाराजाधिराज'—श्री हर्ष के लिए इस उपाधि का प्रयोग स्वयं उनके लेखों में किया गया है, परमेश्वर उपाधि का प्रयोग पुलकेशिन के लिए चालुक्य लेखों में (   ) तथा श्री हर्ष के लिए हर्षचरित में पाया जाता है।

८२. हर्षचरित २, पृ० १२२

८३. एपिग्राफिक इंडिका, १८, पृ० ९९-११४

८४ शिशुपालवध २/११

८५. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, २, पृ० ३११-२४

८६. इंडियन एक्टिक्वेरी, १०, पृ० २४

८७. शर्मा दशरथ, रा० थ्रू० ए० , पृ० ३०८

८८. वाटरर्स, I, पृ० ३४४

८९ अर्थशास्त्र II, १, IV, ३

९०. एपिग्राफिक एक्टिक्वेरी, II, पृ० ४५४

९१. वाटर्स, II, पृ० १८३

९२. हर्षचरित २, पृ० ९८

९३ शिशुपालवध १२/४, १२/६३

९४. शिशुपालवध २/९३

९५. शिशुपालवध २/२६

९६. शिशुपालवध २/२८

९७. शिशुपालवध २/८१

९८. शिशुपालवध ५/१२, १३

९९. यादव, बी० एन० एस० सोसायटी एन्ड कल्चर इन नार्दर्न इण्डिया, पृ० १३६

१००. सरकार डी० सी० सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० २६३

१०१ गोयल, एस० आर०, ए हिस्ट्री ऑफ दि इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० १२८

१०२. गोयल, एस० आर०, ए हिस्ट्री ऑपु दि इम्पीरियल गुप्ताज, पृ० १५५

१०३. सरकार डी० सी०, सेलेक्ट इन निस्क्रप्शन्स, पृ० ३१६

१०४. गोयल वही, पृ० ३५७

१०५. गोयल वही, पृ० २९९-३००

१०६. अग्रवाल वासुदेव शरण, दि डीड्स ऑफ हर्ष, पृ० २५६

१०७. हर्पचरित III, पृ० १७१

१०८. हर्षचरित V, २५८

१०९ शिशुपालवध २/९

११०. शिशुपालवध ५/१२-१३

१११. शिशुपालवध १४/३९-४०

११२ शिशुपालवध १४/४२

११३. वील, I, पृ० २१०

११४. हर्षचरित VI, पृ० ३४३-४४

११५. त्रिपाठी आर० एस०, हिं० आ० क०, पृ० १३५

११६. शिशुपालवध १४/४३

११७. शिशुपालवध २/१२

११८ शिशुपालवध २/५६

११९. शिशुपालवध कविवंश वर्णन

१२०. एपिग्राफिक इंडिका, IX, पृ० १९१

१२१. हर्षचरित VII, पृ० ३८२

१२२. शिशुपालवध १६/१

१२३. वाटर, I, पृ० ३४३

१२४ हर्षचरित, VII, ३६९-३८०

१२५. शिशुपालवध, V, १२-१३, ५८, XII ३३

१२५.अ. शिशुपालवध, XVI, ६९

१२६. त्रिपाठी आर० पी०, स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो-इकानॉमिक हिस्टी ऑफ इण्डिया, पृ० -१२५-२६

१२७ शिशुपालवध, V

१२८ शिशुपालवध, XVIII, २६-५१

१२९. हर्षचरित VII.पृ० ३६९

१३० त्रिपाठी, आर० एस०, हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० १३१

१३१. थापर रोमिला, अशोक एण्ड दि डिक्लाइन ऑफ दि मौर्थीज, पृ० ११९

१३२ वाटर I, पृ० ३४३

१३३ महालिंगम टी० वी० एडमिनिस्टेशन एण्ड सोशल लाइफ अन्डर विजय नगर, I, पृ० १५१

१३४. एपिग्राफिक इण्डिका I, संख्या ११, पृ० ७२

१३५. सरकार जे०, सम आस्पेक्ट्स ऑफ मिलिटी थिन्किंग एण्ड प्रैक्टिसस मेडिवल इंडिया, क्वाटरली रिव्यू ऑफ हिस्टारिकल स्टडीज (कलकत्ता), XI, पृ० १०

१३६. कामन्दक नीतिसार, XVI, पृ० ११

१३७ का० इ० इं०, III, पृ० २१३

१३८. नीति वाक्यामृत, XXII, पृ० २-३

१३९. वही, पृ० ३

१४०. शिशुपालवध V १०

१४१. शिशुपालवध V ५४

१४२. हर्षचरित II, पृ० १०६

१४३. चक्रवर्ती पी० सी०, दि आर्ट ऑफ वार इन एन्शियन्ट इंडिया, पृ० १९३

१४४. शिशुपालवध XVIII -१

१४५ नैपाध्यचरित XIII, २२

१४६. शिशुपालवध XVIII.१२

१४७. चक्रवर्ती पी० सी०, दि आर्ट ऑफ वार इन एन्शियेन्ट इंडिया, पृ० ११९

१४८ शिशुपालवध XVII, ५१

१४९. शिशुपालवध II, ६४

१५०. शिशुपालवध XVIII, २४

१५१ एरियन (मैक्रिन्डल) XVI

१५२. मजुमदार बी० के०, मिलिटी सिस्टम इन एन्शियेन्ट इंडिया, पृ० ८५

१५३ यादव, बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० २१६

१५४. नैपधीयचरित XI, १७२

१५५. शुक्रनीति सार

१५६ शिशुपालवध II २९

१५७. शिशुपालवध II १११

१५८. शिशुपालवध II ११२

१५९. शिशुपालवध II ११३

१६०. शिशुपालवध II ११४

१६१. हम्मीरमदमर्दन, I, पृ० ६

१६२ हम्मीरमदमर्दन, I, पृ० ६-७

१६३. शिशुपालवध, V सर्ग

१६४. शिशुपालवध V ६५-६६

१६५. शिशुपालवध, V ६२-६४

१६६. शिशुपालवध V-X

१६७. हर्षचरित VII ३७३-३७६

१६८. शिशुपालवध XII ३६

१६९ यादव बी० एन० एस० , सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० २०१

१७०. अर्थशास्त्र, पृ० ४१२

१७१ का० इ० इं० , III, न० १३, न० १७, पृ० ५५, ७८

१७२. हर्पचरित, काणे, पी० वी० , पृ० ३१

१७३ शिशुपालवध II

१७४ शिशुपालवध II, २६

१७५. शिशुपालवध II, ६१

१७६. शिशुपालवध II, ५६

१७७. शिशुपालवध XVIII, ६०, ६१, ६२

१७८. शिशुपालवध V, ४२

१७९. शिशुपालवध II, ७६, ८९

अध्याय - षष्ठम्

धार्मिक जीवन

भारत में मनुष्य के वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में धर्म की प्रारम्भ से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अतः किसी युग विशेष के सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन में तत्कालीन धार्मिक स्थिति का अध्ययन आवश्यक है। भारत में धार्मिक चेतना ने जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों को न्यूनाधिक रूप में प्राचीन काल से ही प्रभावित किया है।

शिशुपालवध का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन महाकाव्य में वर्णित व प्रतिबिम्बित धार्मिक विचारों के अध्ययन के बिना अपूर्ण है। धार्मिक विचारों का अध्ययन उस युग की धार्मिक अवस्था के परिप्रेक्ष्य में ही करना होगा। माघ के युग में धार्मिक दृष्टि से भारत की दशा आश्चर्यकारक थी। बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म तथा उनके अनेक धार्मिक सम्प्रदाय भारतवर्ष में प्रचलित थे। इसी काल में अनेक सम्प्रदाय अस्त हुए और अनेकों का प्रादुर्भाव तथा विकास हुआ। बौद्ध धर्म का पतनोन्मुख होना, जैन धर्म का सीमित क्षेत्र में फैलाव तथा हिन्दू धर्म में शैव, वैष्णव व शाक्त सम्प्रदायों का उदय इस युग की विशेषता कही जा सकती है। इसी प्रकार उस युग में भिन्न-भिन्न परस्पर विरोधी दार्शनिक मतों का भी अविर्भाव हुआ। इसी युग में प्रसिद्ध विद्वान शंकराचार्य हुए, जिन्होंने भारत में दार्शनिक क्रांन्ति कर दी।

यद्यपि माघ का आविर्भाव ईसा की सातवीं शती में हुआ था, परन्तु उनके युग की धार्मिक स्थिति व दार्शनिक परम्पराओं के अध्ययन के लिए गुप्तोत्तर युग से मु० गौरी के आक्रमण के पूर्व के समय को एक युग के रूप में माना जा सकता है। ऐसा इसलिए भी आवश्यक है कि धार्मिक परम्पराओं की जड़े समाज व परिस्थितियों में काफी गहरे होती है, उनके आविर्भाव व पतन में समय लगता है। सातवीं-आठवीं शती की धार्मिक परम्पराओं के सूत्र को पाँचवी-छठी शती तक कम से कम ढूढ़ना ही

होगा और साथ ही उनके परवर्ती शताब्दियों में विकास को ध्यान में रखना होगा। माघ कृत शिशुपालवध व आभिलेखिक साक्ष्यों से ७वीं शती की धार्मिक स्थिति पर काफी प्रकाश पड़ता है।

ईस्वी सन् ६०० से लेकर १००० तक भारतवर्ष में तीन धर्म—वैदिक, बौद्ध और जैन—मुख्यतः पाये जाते हैं। शिशुपालवध में भी इन्हीं धर्मों का उल्लेख मिलता है। सातवीं शती के प्रारम्भ काल में यद्यपि बौद्ध धर्म की अवनति हो रही थी तो भी उसका प्रभाव बहुत कुछ था, जैसा कि युआन-च्वाँग के यात्रा विवरण तथा बाण के हर्षचरित से पता चलता है। अतः हम बौद्ध धर्म का विवेचन पहले करते हैं।

बौद्ध धर्म

भारतवर्ष का प्राचीनतम धर्म वैदिक था, जिसमें यज्ञ-याज्ञादि की प्रधानता थी और बड़े-बड़े यज्ञों में पशु हिंसा भी होती थी। माँस-भक्षण का प्रचार भी बढ़ा हुआ था। जैनों और बौद्धों के जीव दया सम्बंधी सिद्धान्त पहले से ही उपनिषदों में विद्यमान थे,[१] परन्तु उनका लोगों पर विशेष प्रभाव न था। शाक्य वंशी राजकुमार गौतम (महात्मा बुद्ध) ने बौद्ध धर्म की स्थापना की और उसके प्रचार बढ़ाने का बीड़ा उठाया और उनके उपदेश से अनेक लोग बौद्ध धर्म ग्रहण करने लगे, जिनमें बहुत से राजा, राजवंशी, ब्राह्मण, वैश्य आदि भी थे। दिनो-दिन इस धर्म का प्रचार बढ़ता गया और मौर्य वंशी सम्राट अशोक ने उसे राजधर्म बनाकर यज्ञादि में पशुहिंसा की भर्त्सना की।[२] अशोक के प्रयत्न से बौद्ध धर्म का प्रचार केवल भारतवर्ष तक ही सीमित न रहा, बल्कि भारत के बाहर लंका तथा उत्तर पश्चिमी प्रदेशों में उसका प्रचार और भी बढ़ गया। बौद्ध भ्रमणों और भिक्षुओं के श्रम से शनैः-शनैः उसका प्रचार तिब्बत, चीन, मंचूरिया, मंगोलिया, जापान, कोरिया, थाईलैंड, बर्मा आदि क्षेत्रों तक फैल गया।[३]

अनेक राजाओं से संरक्षण पाकर बौद्ध धर्म तेजी से बढ़ा। समय-समय पर बौद्ध भिक्षुओं में मतभेद होते रहे जिनके कारण बौद्ध धर्म में अनेक सम्प्रदायों का उदय हुआ। इन भेदों को दूर करने के लिए बौद्ध भिक्षुओं की महासभाएँ भी समय-समय पर होती रही, परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों मतभेद भी बढ़ते गये। चीनी यात्री इत्सिंग के समय में बौद्ध धर्म के १८ भेद हो चुके थे।[४]

बौद्ध धर्म का इस प्रकार ७वीं शती से धीरे-धीरे पतन होना शुरू हो गया, यद्यपि इसके कारण पहले से ही विद्यमान थे, और १२वीं शती के आस-पास यह धर्म लगभग अपनी जन्मस्थली से विलुप्त हो

गया। बौद्ध धर्म का इस प्रकार विलुप्त होना एक महत्वपूर्ण धार्मिक-सामाजिक परिवर्तन की ओर संकेत करता है।[५]

बौद्ध धर्म अनेक छोटे-छोटे सम्प्रदायों जैसे वज्रयान, सहजयान तथा कालचक्रयान आदि में विभाजित हो गया था जिनमें छोटी-छोटी बातों को लेकर संघर्ष था।[६] इसके अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुओं में बाह्य आडंबर की अधिकता हो जाने के कारण भी जनता की उन पर से श्रद्धा उठती गयी अब बौद्ध भिक्षु वैसे सदाचारी व महात्मा नहीं रहे थे। उनमें भी अधिकार, लिप्सा, धनलिप्सा आदि दोष आ गये थे। वे मठों और विहारों में आराम से रहने लगे थे। उन्हें जनता के सुख-दुख का ध्यान ही नहीं रहा। बू-स्टोन (Bu-ston) के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि ८वीं शती के उपरान्त बौद्ध मठों व विहारों में भ्रष्टाचार व्याप्त था।[७] तांत्रिक परम्पराओं ने बौद्ध धर्म को न सिर्फ अत्यधिक कर्ममांडी बनाया बल्कि उसे जनता से विमुख कर दिया। नष्ट होता हुआ बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म पर भी गहरा प्रभाव डाले बिना नहीं रह सका। हिन्दू धर्म ने सतत् प्रयास के द्वारा बौद्ध धर्म को समाहित करने की चेष्टा की। महात्मा बुद्ध को विष्णु का अवतार बताने की अवधारणा की शुरुआत छठीं शती से प्रारम्भ हो गयी थी।[८] यह परम्परा परवर्ती युग में धीरे-धीरे बलवती तथा लोकप्रिय होती गयी। क्षेमेन्द्र ने ११वीं शती में अपने ग्रन्थ दशावतारचरित में बुद्ध को विष्णु का अवतार माना है।[९] इसी प्रकार नैषाध्यचरित (१२वीं शती) में बुद्ध को विष्णु का अवतार माना गया है।[१०] जयदेव के गीत गोविन्द में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।[११] हिन्दू बौद्ध धर्म की बढ़ती एकरुपता व समरसता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उड़ीसा में जगन्नाथ मंदिर है, जिसका निर्माण १२वीं शती में हुआ था तथा जिसमें जगन्नाथ की विष्णु के बुद्ध अवतार के रूप में उपासना की जाती है।[१२] इस प्रकार हिन्दू धर्म गुप्तोत्तर युग में बौद्ध जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहा। दोनों धर्मो में इतनी समानताएँ बढ़ गयी की बौद्ध और हिन्दू दंत कथाओं में भेद करना कठिन हो गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लोग बौद्ध धर्म को छोड़कर हिन्दू धर्म का, जिसमें सब प्रकार की स्वतंत्रताएँ थी, आश्रय लेने लगे। बौद्ध धर्म का अहिंसावाद यद्यपि मनमोहन था परन्तु क्रियात्मक नहीं रह गया था। पूर्व मध्यकाल में राजाओं को युद्ध करने पड़ते थे तथा जनता भी मांसाहार छोड़ना पसन्द नहीं करती रही होगी। हिन्दू धर्म में अहिंसा पर इतना अधिक जोर नहीं था। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल से ईश्वर पर विश्वास रखती आर्य जाति का चिरकाल तक अनीश्वरवाद को

मानना कठिन था। इसी तरह बौद्धों का वेदों पर अविश्वास हिंदुओं को बहुत खटकता था।कुमारिल तथा अन्य ब्राह्मणों ने बौद्धों के इन दोनों सिद्धान्तों का जोरो से खण्डन प्रारम्भ किया। उनका यह आन्दोलन बहुत व्यापक था तथा इसका परिणाम भी बहुत प्रबल हुआ। कुमारिल के बाद ही शंकराचार्य के आ जाने से इस आंदोलन ने और भी जोर पकड़ा।[१३] हर्षोत्तर युग में विभिन्न राजपूत राजवंशों ने भी हिन्दू धर्म को संरक्षण व राज्याश्रय प्रदान किया। बौद्ध धर्म राज्य की सहायता पाकर जिस प्रकार आगे बढ़ा था उसके अभाव में तथा अन्य कारणों से उसका पूर्ण मध्यकाल में पराभव हो गया।

इस बात का आभास शिशुपालवध से भी होता है। इस सम्पूर्ण महाकाव्य में बौद्ध दर्शन के अनीश्वरवादी सिद्धान्त का उल्लेख मात्र एक-दो स्थान पर ही हुआ है।[१४] महात्मा बुद्ध का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इसका एक कारण तो बौद्ध धर्म का पतन है, परन्तु प्रमुख कारण माघ का वैष्णव होना तथा भगवान श्रीकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति है, क्योंकि बौद्ध धर्म ७वीं शती के उत्तरार्द्ध में पतनोन्मुख है लेकिन अभी उसका ठीक-ठाक अस्तित्व था जैसा कि युआन च्वाँग, इत्सिंग तथा बाणभट्ट की रचनाओं से पता चलता है।[१५] युआन च्वाँग के यात्रा विवरण से पता चलता है कि उसके समय में वैदिक धर्मावलम्बियों की संख्या बढ़ने और बौद्धों की घटने लगी थी।[१६] बाणभट्ट के कथन से पता चलता है कि थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्द्धन के ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्द्धन ने अपने पिता के देहांत होने पर राज्य सुख को छोड़कर बौद्ध भिक्षुक होने की इच्छा प्रकट की थी और ऐसा ही विचार उसके छोटे भाई हर्ष का भी था, जो कई कारणें से फलीभूत न हो सका। हर्ष भी बौद्ध धर्म के प्रति गहरी रूचि रखता था तथा उसने उस धर्म व चीनी बौद्ध यात्री युआन च्वाँग को संरक्षण प्रदान किया था।[१७] इन बातों से निश्चित है कि ७वीं शती में राजवंशों में, वैदिक धर्म के अनुयायी होने पर भी, बौद्ध धर्म की ओर सद्भाव अवश्य था। नाना सम्प्रदायों में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना प्रचलित थी। बाण ने हर्ष के राज दरबार में बौद्ध, जैन, पाशुपत, वेदान्ती और ब्रह्मचारियों की भीड़ देखी। दिवाकर मित्र के आश्रम में बाण ने विभिन्न सम्प्रदायों का सह अस्तित्व बताया है।[१८] वि० सं० ८४७ (ई० सं० ७९०) के शेरगढ़ (कोटा राज्य) के शिलालेख से पाया जाता है कि नागवंशी देवदत्त ने कोशवर्द्धन पर्वत के पूर्व में एक बौद्ध मंदिर और मठ बनवाया था जिससे अनुमान होता है, कि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था।[१९] १२वीं शती के अंत तक मगध और बंगाल को छोड़कर भारतवर्ष के शेष भागों में बौद्ध धर्म प्रायः नष्ट हो चुका था और वैदिक-पौराणिक धर्म ने

उसका स्थान ले लिया था।

जैन धर्म

जैन धर्म बौद्ध धर्म से कुछ पूर्व भारतवर्ष में प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध धर्म की तरह जैन धर्म भी दो मुख्य भागों दिगंबर और श्वेतांबर में विभक्त हो गया था। यद्यपि बौद्ध मत की अपेक्षा जैन मत का प्रादुर्भाव पहले हुआ था, तथापि उसका बौद्ध धर्म के समान प्रचार नहीं हुआ। इसके कई कारण हैं। बौद्धमत के सिद्धांत शीघ्र ही प्राकृत भाषा में लिखे गये और जैन सिद्धान्त दीर्घकाल तक ग्रंथरूप में परिणत नहीं किये गये। ऐसा माना जाता है कि ई० सन् की ५वीं शती के मध्य में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने वलभी की धर्म परिषद में उनके धर्मग्रंथों को लिपिबद्ध कराया।[२०] बौद्ध भिक्षुओं का जीवन जैन साधुओं की अपेक्षा अधिक सरल और कम कठोर एवं तपस्यामय होता था, जिससे भी लोगों का आकर्षण बौद्धमत की ओर अधिक हुआ। फिर जैन धर्म को राजधर्म बनाकर उसका प्रचार करने वाले राजा कम मिलें, जैसे कि बौद्ध धर्म को अशोक और कनिष्क आदि मिले थे। इन कारणों से जैन धर्म का प्रचार बहुत शनैः-शनैः हुआ परन्तु जहाँ बौद्ध धर्म का देश से पलायन हो गया जैन धर्म पश्चिमी व उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत में लोकप्रिय बना रहा। हमारे निर्दिष्ट काल में जैन धर्म का प्रचार आंध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, राजपूताना, गुजरात, मालवा, मध्य भारत में लोकप्रिय था।

हमारे अध्ययनकालीन युग में राजस्थान तथा गुजरात में जैन सूरियों और साधुओं के सतत प्रयास के फलस्वरूप जैन धर्म का अत्यधिक प्रचार प्रसार हुआ और जैन धर्मानुयायियों की संख्या में वृद्धि हुई। राजस्थान में विचाराधीनकाल में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों का प्रचलन था। यह तथ्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि राजस्थान के नरेश और पदाधिकारी प्रमुखतया हिन्दू धर्म के उपासक थे। फिर भी उन्होंने जैन धर्म के प्रति परम्परागत सहिष्णु भाव और उदार दृष्टिकोण अपनाकर इसकी समुन्नति में योगदान दिया। इस काल में अनेक गच्छों की स्थापना हुयी और इस क्षेत्र में अनेक प्रमुख नगर जैन धर्म के महत्वपूर्ण केन्द्र बने। जैन विद्वान हरिभद्र सूरी के प्रयासों से चित्तौड़ जैन धर्म के मुख्य केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। उनके प्रवचनों से लोग अत्यधिक प्रभावित हुए। हरिभद्र सूरी ने अनेकांतजय पताका, धर्म बिन्दु प्रभूति ग्रंथों की रचना कर उनके माध्यम से जैन सिद्धान्तों को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया।[२१] इसके उपरान्त वि० सं० ८३५ में उद्द्योतन

सूरि ने 'कुबलयमाला' और सिद्धर्षि सूरि ने वि० सं० ९६२ में 'उपमितिभव प्रपंच कथा' की रचना की।[२२]

प्रतिहार प्रशासन कालान्तर्गत जैन धर्म की अत्यधिक प्रगति हुयी। अनेक प्रतिहार शासकों ने जैन धर्म को प्रश्रय प्रदान किया। नागभट्ट प्रथम का जैन साधु यक्षदेव से प्रगाढ़ सम्बन्ध था।[२३] वत्सराज के शासन काल में अनेक जैन उपदेशकों द्वारा जैन धर्म की प्रगति के लिये काम किया गया।[२४] उसी समय ओसियां (जोधपुर संभाग) में महावीर स्वामी का मन्दिर निर्मित हुआ।[२५] नागभट्ट द्वितीय के काल में बप्पभट्ट अत्यधिक प्रभावशाली जैन सूरि थे। उन्हें जैन साहित्य में नागभट्ट द्वितीय के मित्र और आध्यात्मिक गुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[२६] मिहिरभोज के शासन काल में बप्पभट्टि के शिष्य नन्न सूरि और गोविन्द सूरि का इस क्षेत्र में विशेष सम्मान था।[२७] प्रतिहारों की भण्डोर शाखा का नरेश कक्कुक यद्यपि ब्राह्मण धर्मानुयायी था तथापि उसने रोहिंसकूप में जैन मन्दिर का निर्माण करवाया और इसके प्रबन्ध का उत्तरदायित्व गोष्ठिकों को सौंपा।[२८]

हस्तिकुण्डी के राष्टकूटों के शासनकाल में भारवाड़ क्षेत्र में जैन धर्म अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। हस्तिकुण्डी से प्राप्त वि० सं० ९७३ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि विदग्ध ने एक जैन मन्दिर का निर्माण कराया था।[२९] कामयक, बयाना, त्रिभुवनगिरि तथा मेवाड़ के गुहिलों ने भी जैन धर्म को प्रश्रय दिया था। भर्तृपट्ट ने गुहिल विहार का निर्माण करवाया था ओर आदिनाथ की मूर्ति स्थापित की थी।[३०] इसके अतिरिक्त समय-समय पर चाहमान, परमारतथा चालुक्य नरेशों ने भी जैन धर्म को राज्याश्रय प्रदान किया।

शिशुपालवध में उन्नीसवें सर्ग में महावीर स्वामी का उल्लेख मिलता है परन्तु उनको जैन धर्म के संस्थापक के रूप में न दिखाकर कृष्ण के अवतार के रूप में दिखाया गया है।[३१] वास्तव में ७वीं शती से हिन्दू धर्म ने सतत् प्रयास के द्वारा नास्तिक धर्मों को समाहित करने की चेष्टा की, और इसी प्रक्रिया में बुद्ध व महावीर को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया। शिशुपालवध मूलत: एक भक्ति काव्य है जिसमें माघ ने वासुदेव कृष्ण को अपना अराध्य मानकर उनका गुणगान किया है। अत: अन्य देवी-देवताओं व महापुरुषों का चित्रण सापेक्ष रूप में निम्नतर ही किया गया है। युआन च्वाँग के भारत प्रवास के समय जैन धर्म के दोनों सम्प्रदाय श्वेताम्बर व दिगम्बर लोकप्रिय थे।[३२] इसी प्रकार बाण ने भी

हर्षचरित में दिवाकर मित्र में आश्रम में उनकी उपस्थिति को बताया है।[३३]

७वीं शती के आते-आते जैन संघों में भी बौद्ध संघों की भाँति अनेक बुराईयाँ आ गयी थी। इन कमियों को दूर करने के लिए चित्तौड़ के हरिभ्रद सूरी (७००-७७०) ने विधि चैत्य आंदोलन का सूत्रपात किया। उनका उद्देश्य जैन संघ तथा जैन साधुओं के जीवन में व्याप्त बुराइयों को दूर करना और जैन धर्म में नवचेतना का संचार करना था। इसके लिए उन्होंने जैन धर्म का युक्ति-युक्त पालन करने पर बल दिया। उन्होंने निग्रन्थों व जैन साधुओं का एक स्थान पर ठहरना, किसी राजा, व्यक्ति अपना चल अथवा अचल सम्पत्ति से सम्बन्ध जोड़ना तथा बाह्य कर्मकाण्ड में रुचि लेना जैन धर्म के नियमों के विरुद्ध बतलाया। उनके उपदेश सम्पूर्ण मानव जाति के लिए थे। हरिभद्र सूरि द्वारा चलाया गया यह आन्दोलन उनकी मृत्यु के पश्चात उनके शिष्य उद्योतन सूरि तथा सिद्धर्षि सूरि के नेतृत्व में आगे बढ़ा।[३४] इस विधि आन्दोलन को आगे की शताब्दियों में खतरगच्छ के आचार्यों, जिनेश्वर सूरी, जिनवल्लभ आदि महापुरुषों ने नेतृत्व प्रदान किया जिसका परिणाम हुआ कि जैन धर्म ने राजस्थान व गुजरात के ब्राह्मण मतावलम्बी राजाओं ने भी इसे राज्याश्रय प्रदान किया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि नास्तिक सम्प्रदायों में जहाँ बौद्ध धर्म भारत से लुप्त हो गया वहीं जैन धर्म ने देश में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया।

ब्राह्मण धर्म :

यद्यपि माघ का उद्देश्य शिशुपालवध के द्वारा वासुदेव कृष्ण की उपलब्धियों व महत्ता का वर्णन करते हुए उनकी आराधना करना है, तथापि शिशुपालवध में तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित अन्य देवी देवताओं के भी उल्लेख बहुतायत में मिलते हैं। भारतीय वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में धर्म की सर्वदा सर्वाधिक महत्ता रही है। ७वीं शती का जनजीवन भी इसका अपवाद नहीं है। शिशुपालवध के अध्ययन से पता चलता है कि हमारे अध्ययन काल में प्रमुखतः पौराणिक धर्म का ही प्रचलन था। विचाराधीन काल में त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव भक्ति का तत्कालीन जीवन में प्रमुख स्थान था। इनके अतिरिक्त गणेश, सकन्द, सूर्य इत्यादि अन्य पौराणिक देवताओं एवं शक्ति के विविध रूपों की भी आराधना प्रचलित थी। पूर्वगामी युगों के समान इस काल में लक्ष्मी, विष्णु की अर्द्धांगिनी तथा पार्वती, शिव भार्या के रूप में आराध्या थी (चित्र-६, ७)।

हमारे अध्ययन काल में वैष्णव धर्म अत्यधिक लोकप्रिय था। वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार गुप्त काल में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा था। अधिकाँश गुप्त शासकों के अभिलेखों व मुद्राओं पर उन्हें 'परम भागवत' कहा गया तथा इनका राजचिन्ह विष्णु वाहन गरुड़ था।[३५] शिशुपालवध महाकाव्य की मुख्य कथावस्तु में श्रीकृष्ण के चेदिवंशीय नरेश शिशुपाल परविजय को दर्शाया गया। श्रीकृष्ण विष्णु का अवतार माना जाता है। प्रो० गोविन्द चन्द पाण्डे के मतानुसार शिशुपालवध वास्तव में एक भक्ति काव्य है। जिसके द्वारा महाकवि माघ नेअपने अराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अपनी गहन भक्ति का परिचय दिया है।

वैष्णव सम्प्रदाय में इस काल में अवतारवाद एक प्रमुख अवधारणा थी।अवतार का तात्पर्य है कि जब ईश्वर, मानव अथवा किसी अन्य जीव का रूप ग्रहण करता है और पृथ्वी पर तब तक निवास करता है, जब तक कि उस लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए जिस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उस ईश्वरीय शक्ति ने वह रूप ग्रहण किया था। अवतारवाद की अवधारणा का शास्त्रीय निरूपण भगवत गीता तथा पुराणों में किया गया है। यद्यपि पुराणों से विषणु के विभिन्न अवतारों के विषय में विस्तृत विवरण प्राप्त होते है। परन्तु उनमें अवतारों की संख्या को लेकर एकरूपता नहीं है। भागवत पुराण में ही अलग-अलग स्थानों पर बाइस, तेईस और सोलह अवतारों का उल्लेख किया गया है।[३६] सामान्यत: विष्णु के दस अवतारों का उल्लेख मिलता है। ये दस अवतार है—मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, परसुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि है (चित्र-८, ९)।[३७]

बुद्ध को हिन्दुओं के अवतारों में स्थान देने से निश्चित है कि बौद्ध धर्म का प्रभाव हिन्दू धर्म पर पड़ गया था। अत: उसके प्रवर्तक विष्णु के अवतारों में सम्मिलित कर लिए गए।

'शिशुपालवध' महाकाव्य में विष्णु के विभिन्न अवतारों का विस्तार से उल्लेख मिलता है। विभिन्न अवतार जिनका उल्लेख शिशुपालवध महाकाव्य में मिलता है। वह है कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, मोहिनी, दत्तात्रेय, परसुराम, राम तथा श्रीकृष्ण।[३८] शिशुपालवध के पन्द्रहवें सर्ग के तीसवें श्लोक में गोवर्धनधारी कृष्ण का उल्लेख मिलता है (चित्र-१०)।

पूर्व मध्यकाल में वैष्णव धर्म की लोकप्रियता गुप्त काल की ही भाँति बनी रही। समसामयिक अभिलेख विशेषत: राजस्थान से प्राप्त दान शासनों से संकेत मिलता है कि राजस्थान में अनेक वैष्णव देवालयो तथा विष्णु की विविध रूपी प्रतिमाओं का निर्माण होता था।[३९]

वि० सं० ८७२ के एक 'बुचकला अभिलेख' में विष्णु मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है।[४०] बाउक के वि० सं० ८९४ के जोधपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में विष्णु की उपासना लोकप्रिय थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राजस्थान में भगवान विष्णु के आदि वाराह और नरसिंह रूप लोकप्रिय थे।[४१] आठवीं नौवीं की शेषशायी विष्णु मूर्तियाँ कोटा और हर्षनाथ से प्राप्त हुई। इस काल में विष्णु और उनके अवतारों की प्रतिमाएँ शास्त्रीय विधि तथा धार्मिक परम्परा अनुसार निर्मित होती थी।ओसियॉ के एक मंदिर के गर्भ गृह से सभामंडप की ओर निकले हुए दो स्तम्भों पर विष्णु की दो गरुड़ासीन चतुर्भुज प्रतिमाएॅ उत्कीर्ण है। इनमें से एक अपने हाथों में शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण किए है किन्तु दूसरी के दो हाथों में हल एवं मूसल है। ये प्रतिमाएँ स्पष्टतः वासुदेव एवं संकर्षण की है। स्थापत्य शैली की दृष्टि से यह मंदिर नवीं दसवीं शताब्दी का हो सकता है।[४२]

कृष्ण और उनके बाल लीलाओं का विस्तृत वर्णन से पता चलता है, कि कृष्ण की बाल रूप में पूजा सातवीं शदी के पहले ही शुरू हो गई थी। अतः कुछ विद्वानों द्वारा यह कहना कि 'विक्टोरियन मिशन' के ६३० ई० में भारत के बाद ईसाई धर्म के प्रभाव स्वरूप ऐसा हुआ, सही प्रतीत नहीं होता।[४३] कृष्ण की बालकाल की घटनाओं का उल्लेख शिशुपालवध में भी मिलता है।[४४]

दिवाकर मिश्र के आश्रम में, बाणभट्ट ने जिस विद्वत सभा का रूप प्रस्तुत किया उसमें १९ धार्मिक मत या दार्शनिक सिद्धांतों का उल्लेख किया है। वैष्णव धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय भागवत तथा पंचरात्र के वर्णन से पता चलता है, कि ये सम्प्रदाय सातवीं सदी में लोकप्रिय था।[४५]

शिशुपालवध में विष्णु के राम अवतार स्वरुप की भी चर्चा की गई है।[४६] प्रभावती गुप्ता संभवतः राम भक्त थी। कालीदास ने भी अपने ग्रंथों में दशरथ पुत्र राम का उल्लेख किया है। बाण ने भी राम और रामायण दोनों का उल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि राम की पूजा गुप्त काल या उससे पहले ही जनमानस में लोकप्रिय हो गई थी। आठवी शती में राम की भक्ति एंव प्रशंसा में 'महावीर चरित' तथा 'उत्तर रामचरित' नामक ग्रंथों की रचना की गई। इन नाटकों में राम को त्रिविक्रम के अवतारके रूप में दिखाया गया। त्रिगुणों तथा आगे कहा गया है कि जो मन से इनके नामों का उच्चारण करेगा उसको अमरत्व की प्राप्ति होगी।[४७]

हमारे अध्ययन कालीन समय से यद्यपि राम अवतार की कोई प्रतिमा प्राप्त नहीं है। परन्तु राम

भक्ति के प्रचलन में कोई सन्देह व्यक्त नहीं किया जा सकता। शिशुपालवध में वाराह अवतार नरसिंह अवतार, वामन अवतार, मोहनी अवतार, दत्तात्रेय अवतार, परसुराम अवतार, राम अवतार तथा कृष्ण अवतार का उल्लेख मिलता है।[४८] इन अवतारों का उल्लेख अन्य समकालीन साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों में भी मिलता है।

सातवीं शती में भास्कर वर्मन जो कामरुप नरेश और शैव भक्त था, के परिवार में विष्णु उपासना के साक्ष्य मिलते है। संभवत: वह महापरशुपत सम्प्रदाय में विश्वास करता था, जिसके अनुयायी वामन पुराण के अनुसार शिव और विष्णु दोनों की समान रुप से आराधना करते है।

शैव धर्म

यद्यपि शिशुपालवध महाकाव्य श्रीकृष्ण की उपलब्धियों पर समर्पित है, तथापि इसमें शैव भक्ति के भी उल्लेख मिलते है।अनेक शिव संबंधित पौराणिक कथाओं का उल्लेख शिशुपालवध में अनेक स्थानो पर हुआ है।[४९]

शैव धर्म पूर्व मध्य काल में अत्यन्त लोकप्रिय था। यद्यपि गुप्त राजा परम भागवत वैष्णव धर्म अनुयायी थे। परन्तु इस युग में शैव धर्म भी अत्यधिक लोकप्रिय था। गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल के राजाओं के अभिलेखों से शैव धर्म की लोकप्रियता का पता चलता है। उसकी पुष्टि कालीदास की रचनाओं से भी होती है। जिसमें शिव को सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता व संहारकर्त्ता के रूप में सर्वोच्च देव के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[५०] मौखरी राजाओं ने शैव धर्म को संरक्षण दिया तथा अनेक मौखरी नरेश शैव धर्म के अनुयायी थे। 'हरहा अभिलेख' से पता चलता है कि सूर्य वर्मन, (मौखरी नरेश) ने भगवान शिव को समर्पित एक मंदिर का जीर्णोद्वार कराया और जो बाद में क्षेमेश्वर देव के मंदिर के रूप में लोकप्रिय हुआ।[५१]

बाण द्वारा शिव के बार-बार उल्लेख से प्रतीत होता है कि वह शैव भक्त था उसने हर्षचरित का प्रारम्भ भगवान शंभु की आराधना से किया। जो कि शिव का ही दूसरा नाम है। इसी प्रकार जब वह हर्ष की सभा के लिए प्रस्थान कर रहा था। तब उसने अपने कल्याण हेतु शिव की आराधना की।[५२]

पुष्यभूति जो कि वर्द्धन साम्राज्य का संस्थापक था कट्टर शैव था,[५३] हर्ष स्वयं ऐसा प्रतीत होता है

कि प्रारम्भ में वह शैव भक्त था और बाद के समय में वह बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय की ओर झुक गया। बासखेड़ा, मधुबन ताम्रपत्र अभिलेख उसे परम महेश्वर के रूप में उद्धृत करते है।[५४]

इसी प्रकार हर्षवर्द्धन के सोनी ताम्रपत्र अभिलेख में एक साँड़ का चित्र उत्कीर्ण है, जो संभवत: हर्ष की शिव के प्रति भक्ति भाव को प्रदर्शित करता है।[५५] हर्ष के एक मात्र प्राप्त स्वर्ण मुद्रा पर शिव और पार्वती को नंदी पर बैठा दिखाया गया है।[५६]

वल्लभी के लगभग अधिकांश शासक शैव धर्मानुयायी थे।[५७] शशांक (गौड़ नरेश) शैय भक्त था।[५८] हर्ष चरित से पता चलता है, कि भास्कर वर्मन भी शैव भक्त था।[५९] शैव धर्म की लोकप्रियता से संबंधित अभिलेखिक व साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि ह्वेनसाँग के यात्रा वर्णन से भी होती है। ह्वेनसाँग के यात्रा विवरणों से पता चलता है कि शैव धर्म जालन्धर, अहिच्छत्रा, कन्नौज, वाराणसी तथा पश्चिमोत्तर भारत में लोकप्रिय था।[६०] यद्यपि ह्वेनसाँग ने शैव उपासना का उल्लेख राजस्थान में नहीं किया है तथापि पुरातात्विक साक्ष्यों से इस बात की पुष्टि होती है, शैव धर्म पूर्व मध्यकाल में राजस्थान में अत्यन्त लोकप्रिय था। मन्डोर से प्राप्त विक्रम संवत् ७४२ के एक अभिलेख का प्रारम्भ 'ॐ नमो शिवाय' से होता है।[६१] बाउक के वि० सं० ८९४ के 'मण्डोर अभिलेख से ज्ञात होता है कि शिलुक ने सिद्धेश्वर महादेव के मंदिर का निर्माण कराया था।[६२] मेवाड़ अपने अनेक शैव मंदिरों के कारण प्रसिद्ध था। एक लिंग शिव का मंदिर परम्परा अनुसार इस मंदिर का निर्माण बप्पा रावल ने कराया था।[६३] इसी प्रकार अजमेर संभाग के नासून से प्राप्त वि० सं० ८८७ के अभिलेख में ईसान भट्ट के शासन काल में गोडास्वामी द्वारा शिव मूर्ति स्थापित किए जाने का उल्लेख है।[६४]

कल्याणपुर से प्राप्त सातवीं शताब्दी के एक अभिलेख का प्रारम्भ भगवान शिव की स्तुति से होता है। तदुपरांत सूचित किया गया है कि महाराज पद्रद के शासन काल में एक धर्म परायण व्यक्ति ने पर्याप्त धनराशि व्यय करके वहाँ शिव सदन का निर्माण कराया था। कदछी के समय इसी स्थान से प्राप्त एक अभिलेख के प्रारम्भ में शिव की स्तुति की गई। अभिलेखानुसार बोड़ी नामक भद्र महिला ने एक शिव मंदिर का निर्माण कराया था। उसने मंदिर के पुर्नसंस्करादि के निमित्त ४० द्रम्भ प्रदान किए थे।[६८]

इस युग में शिव की अर्द्धनारेश्वर के रुप में भी उपासना की जाती थी। अर्द्धनारीश्वर मूर्ति में दक्षिणांभ भगवान शिव का और बामांग पार्वती का होता है। छोटी सादड़ी के वि० सं० ५४७ के एक

अभिलेख में अर्द्धनारेश्वर मंदिर निर्मित किए जाने का उल्लेख है।[६६]

समकालीन अभिलेखिक व साहित्यिक साक्ष्यों में शिव के अनेक नामों का उल्लेख मिलंता है। यथा—जियम्बक, महाकाल, पशुपति, शंकर, त्रिलोचन, शंभू, परम महेश्वर, महाशैव, हर, रुद्र, ईश, भूतनाथ, उमापति[६७] आदि। हमारे अध्ययन काल में के शैव मत के सभी प्रमुख सम्प्रदाय विद्यमान थे। यथा शैव सिद्धान्त लकुलेश पाशुपत, कापालिक और कालमुख इनमें लकुकेश पशुपत का सर्वाधिक उल्लेख हुआ है। विशम्भर शरण पाठक ने श्री कंठ नामक व्यक्ति को पाशुपत सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना है।[६८] शैवागमो से इसकी पुष्टि होती है। परन्तु इनमें श्री कण्ठ की पहचान शिव से की गई। अभिलेखों में इस धर्म के प्रवर्तक एवं प्रथम आचार्य लकुलीश बताए गए है। सामान्यतः लकुलीश मतावलम्बी आचार्यों को पाशुपताचार्य कहा गया है। पुराणों में लकुलीश को भगवान शिव का अवतार बताया गया है।[६९] लकुलीश के चार शिष्यों कुसिक, गर्ग, मित्र और कौरुस्य नाम के चार शिष्य हुए है।[७०] जिनसे पशुपत सम्प्रदाय की शाखा, प्रतिशाखाएँ, गोत्र इत्यादि बने। पशुपत अनुयायी, द्वैतवादी है। इन्होंने पाँच सिद्धान्तों को स्वीकार किया है।१. कार्य २. कारण ३. योग ४. विधि ५. दुखान्त। इन सिद्धान्तों (पंचार्थिक) की परिवर्ती भाष्यकारों ने अपने-अपने विचारों के अनुसार प्रतिपादित किया।[७१]

शैवो के अन्य दो सम्प्रदायो कापालिक और कालमुख का उल्लेख भी हमारे अध्ययन काल के विवरणों में मिलता है। कापालिक और कालामुख के अनुयायी शिव के भैरव और रुद्र रूप की उपासना करते है। इन दोनों में विशेष भेद नहीं है। इस सम्प्रदाय के लोग मरने वाले मनुष्य की खोपड़ी में खाते है। श्मशान की राख से शरीर मलते है तथा उसे खाते भी है। एक डण्डा और मद्य पात्र अपने पास रखते है और पात्र स्थित देवता की पूजा करते है। इन बातों को वे एहलोक व परलोक में इच्छापूर्ति का साधन समझते है। 'शंकर दिग्विजय' में माधव ने शंकर के एक कापालिक से मिलने का उल्लेख किया है। बाण ने 'हर्षचरित' में भी एक भयंकर कापालिक आचार्य का वर्णन किया है। भवभूति ने 'मालती माधव' में खोपड़ी की माला पहने हुए कापाल कुण्डला की नाम की एक स्त्री का वर्णन किया है। इन दोनों सम्प्रदायों के साधुओं का जीवन बहुत भयंकर था।[७२]

लकुलेश मत के आचार्य योगिक क्रियाओं में दक्ष माने जाते थे। सातवीं शताब्दी के झालरा पाटन का 'वाराह मूर्ति अभिलेख' लकुलीश ईसान मणि का उल्लेख करता है।[७३] प्रतिहार शासक भोज

ने प्रभास राशि नामक पशुपता को गोष्ठियों के निमित्त कुछ धन दिया था। इस तथ्य का उल्लेख हर्ष सं० २९९ के 'कामा अभिलेख' में हुआ है।[७४]

'शिशुपालवध' में महाकवि माघ ने अत्यधिक भक्ति भाव से श्रीकृष्ण की उपलब्धियों तथा शिशुपाल पर विजय का वर्णन किया। अत: इस ग्रंथ में शैव धर्म से संबंधित जिन पौराणिक कथाओं का उल्लेख मिलता है। उसमें शिव के बहुत अधिक महिमा मण्डित नहीं किया गया है।महाकवि ने 'शिशुपालवध' में अनेक पौराणिक कथाओं के माध्यम से भगवान शिव पर भागवान विष्णु एवं उनके अवतारों की श्रेष्ठता स्थापित की है। ऐसा संभवत: उनके परम वैष्णव भक्त होने के कारण हुआ। इसके अतिरिक्त महाकवि माघ ने अपने प्रतिद्वन्द्वी कवि भारवि के आराध्य भगवान शिव पर श्रेष्ठता स्थापित कराकर अपने महाकाव्य को श्रेष्ठतर बनाने की चेष्टा की है। श्रीकृष्ण ने नरसिंह अवतार में जिस हिरण्यकश्यप का वध करा है उसको शिव का वरदान था। विष्णु के रामावतार द्वारा जिस राक्षस रावण का वध हुआ उसको भी शिव का आर्शीवाद प्राप्त था। 'शिशुपाल वध' के द्वितीय सर्ग के ६१वें श्लोक में पौराणिक कथा का उल्लेख है कि शिव वाणासुर का पक्ष लेकर युद्ध करने लगे किन्तु भगवान श्रीकृष्ण के सामने उनकी शक्ति नहीं चली और वे पराजित हो गए।[७५] इसी प्रकार शिशुपाल वध के ग्यारहवें अध्याय के ५६वें श्लोक में वर्णन मिलता है कि कठिन तपस्या से तुष्ट श्रीशंकर जी से वरदान पाकर जगत को पीड़ित करने वाले वृत्तासुर को मारने के लिए श्री विष्णु भगवान की आज्ञा से महर्षि दधीचि से इन्द्र ने उनकी हड्डी माँगी और लोकोपकारार्थ की गई इन्द्र की याचना को स्वीकार कर महर्षि ने जब योग बल से शरीर त्याग कर दिया तब इन्द्र ने उनकी हड्डियों से वज्र बनाकर वृत्तासुर को मारा।[७६] शिशुपालवध में शिव पुत्र गणेश का भी उल्लेख मिलता है।[७७] तथा दूसरे पुत्र कार्तिकेय का उल्लेख अन्य समकालीन ग्रंथों में हुआ है। कादम्बरी में कार्तिकेय को युद्ध के देवता के रूप में चिंहित किया गया है।[७८]

शक्ति पूजा :

केवल परमात्मा के भिन्न-भिन्न नामों को ही देवता मानकर उनकी पृथक-पृथक उपासना प्रारम्भ नहीं हुई किन्तु ईश्वर की भिन्न शक्तियों एवं देवताओं की पत्नियों की भी कल्पना की जाकर उनकी पृथक-पृथक पूजा की जाने लगी। 'शिशुपालवध' में लक्ष्मी, सीता, पार्वती आदि देवियों के उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य भयंकर एवं रुद्र शक्तियों का उल्लेख किया गया है यथा—काली,

चामुण्डा आदि ।[७९] भारत मे देवी पूजन का प्रमाण सैन्धव काल से ही प्राप्त होते है ।[८०] कालान्तर में शनैः-शनैः देश के अन्य भागों में वैष्णव, शैवादि मतों की लोकप्रियता के साथ शक्ति पूजा का प्रचार-प्रसार हुआ । गुप्त काल में शाक्त मत अन्य मतों की भाँति जनप्रिय हो गया था । हमारे अध्ययन काल में शक्ति पूजा के प्रमाण साहित्यिक विवरणों, पुरातात्विक अभिलेखों, मंदिरों तथा मूर्तियों के रूप में प्राप्त होते है । मारकाण्डेय पु.राण के देवी महात्म्य हिस्से में देवी के अनेक रूपों व जन्मों का वर्णन मिलता है । जो उन्होंने राक्षसों को मारने के लिएधारण किये थे ।[८१] पूर्व मध्य काल में ऐसा प्रतीत होता है कि शाक्त धर्म में देवी का रौद्र रूप अत्यधिक लोकप्रिय था । बाण भट्ट के 'चण्डी शतक' में चण्डी की प्रशंसा में सौ से अधिक श्लोकों का वर्णन है । 'कादम्बरी' में देवी चण्डी के मंदिर का विस्तृत वर्णन मिलता है ।[८२] इसी प्रकार वाणभट्ट जब हर्ष के दरबार में जा रहा था तो वह एक बगीचे से गुजरा जो देवी चण्डिका के (चित्र-११) कारण अत्यधिक पवित्र माना जाता था तथा वृक्षों पर काव्यायनी देवी की मूर्ति उत्कीर्ण थी, जिसमें पथिक नमस्कार करते थे ।[८३] ह्वेनसॉग के जीवन चरित्र को पढ़ने से पता चलता है कि डाकू लोग दुर्गा की पूजा करते थे और नर बलि देते थे और ह्वेनसाँग इन लोगों से अपनी जान बहुत मुश्किल से बचा पाए थे ।[८४] दण्डी की दुर्गा में महान आस्था थी । वो विन्ध्य वासिनी देवी का उल्लेख करता है ।[८५]

पूर्व मध्यकाल में राजस्थान में शक्ति पूजा का प्रमाण अभिलेखों, मंदिरों तथा मूर्तियों के रूप में प्राप्त होते है । रैढ़ उत्खनन से मातृदेवी की अनेक मृण्मूर्तियाँ प्राप्त है, जो उस युग में शक्ति पूजा के प्रचलन की प्रचायक है ।[८६] सम्भर के उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों से शक्ति उपासना का उल्लेख मिलता है ।[८७] पॉचवी शती से हमें शक्ति पूजा के अभिलेखीय प्रमाण प्राप्त होने लगते है । गंगधार (झालावाड़ के निकट) के मालव संवत् ४८० के एक अभिलेख में विष्णु की पूजा के अतिरिक्त मातृका भवन निर्माण का उल्लेख हुआ है ।[८८] मालव संवत् ५४७ के भ्रमर माता (छोटी सावली उदयपुर संभाग) अभिलेख का मंगलाचरण असुर संहारिणी, शूल धारिणी दुर्गा की आराधना से संबंधित है ।[८९] गोढ़ मंगलोद (जोधपुर संभाग) से प्राप्त ७वीं शती एक अभिलेख में वाग्वेश्वरी सरस्वती की प्रार्थना की गई । तत्पश्चात् यह अभिलेख दाहिमा ब्राह्मणों की कुल देवी दधिमति के भवन का उल्लेख करता है । इस भवन का निर्माण गोष्ठियों द्वारा कराया गया था ।[९०]

'शिशुपालवध' महाकाव्य के संभावित रचना स्थल बसन्तगढ़ से प्राप्त वर्मलाद के वि० सं० ६८२ के अभिलेख में छेमकरी दुर्गामाता छिमारिया की वंदना की गई है ।[९१] छिमारिंका सुस्वास्थ्य की

अधिष्ठात्री देवी मानी जाती थी। सामौली (मेवाड़) के वि० सं० ७०३ के एक अभिलेख से विदित होता है कि वटपुर से आए हुए व्यापारियों के एक समूह ने अरण्य वासिनी देवी के मंदिर का निर्माण कराया था।[९२] वसुन्धरा (डूंगरपुर के समीप) नामक स्थान पर वसुन्धरा देवी का मंदिर है।इस स्थान से ७वीं शती का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस लेख का प्रारम्भ देवी वंदना से प्राप्त होता है।[९३] जोधपुर में माण्डौर रेलवे स्टेशन के निकट अष्ट मात्रिका सहित गणेश की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित है। आर० सी० अग्रवाल ने इन मूर्तियों का समय ७वीं शती का उत्तरार्ध माना है। मात्रका मूर्तियों में शिशुविहीन मात्रिकाओं की स्थानक मुद्रा तथा उनके हाथों की संख्या विशेष उल्लेखनीयं है।[९४] राजस्थान में शक्ति पूजा की प्राचीन परम्परा महाकवि माघ के परिवर्ती काल में भी अबाध गति से चलती रही। वि० सं० ९०० के दौलतपुरु ताम्रपत्र में प्रतिहार सम्राट नागभट्ट, भोज तथा महेन्द्र पाल आदि के लिए भगवती भक्त आदि का प्रयोग हुआ है।[९५] ताम्रपत्र के ऊपर स्थानक मुद्रा में चतुर्भुजी देवी की आकृति उत्कीर्ण है।देवी के दोनों ओर चरणों के पास एक सिंह अंकित है।संभवत: उक्त प्रतिहार शासक इस देवी के उपासक थे। राजस्थान में चाहमानों एवं परमारों के शासन काल में भी शाक्त धर्म का महत्व पूर्ववत बना रहा। वि० सं० ७४९ के एक लेख में शकराय माता के एक मंदिर का अग्रिम भाग स्थानीय गोष्ठियों द्वारा बनाए जाने का विवरण प्राप्त होता है।[९६] वास्तव में पूर्व मध्यकाल में सभी प्रमुख देवी की आराधना शक्ति अर्चनो से की जाती थी। विश्व के पालक विष्णु की शक्ति श्री या लक्ष्मी मानी गयी है। सावित्री और सरस्वती का संबंध ब्रह्मा से माना जाता था। शिव की शक्ति पार्वती मानी गयी है।

अन्य देवगण :

महाकवि माघ का प्रमुख उद्देश्य श्रीकृष्ण की उपलब्धियों का महिमा पूर्ण वर्णन है। परन्तु शिशुपाल वध में अन्य अनेक देवताओं के साथ कुछ गौण देवताओं का भी उल्लेख हुआ है– यथा गणेश, स्कन्द, सूर्य, कार्तिकेय आदि।[९७]

गणेश को विनायक, गणाधिप, एकदन्त, लम्बोदर, गजानन इत्यादि नामों से सम्बोधित किया जात है (चित्र-१२)।[९८] पौराणिक आख्यानों के अनुसार गणपति शिव के द्वितीय पुत्र है। जो विघ्नों को दूर तथा जीवन को मंगलमय करते हैं। पंचायतन पूजा में गणेश को विष्णु, शिव, सूर्य तथा दुर्गा के बाद स्थान दिया गया है। यद्यपि शुभ कार्यों में उनकी अर्चना सर्वप्रथम की जाती है। राजस्थान और प० भारत में गणेश पूजन की परम्परा हमारे अध्ययन कालीन साहित्यक ग्रंथों व अभिलेखिक साक्ष्यों से प्रमाणित होती

है। समसामयिक अभिलेखों से गणेश भक्ति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। खण्डेले से प्राप्त वि० सं० ८६४ के एक अभिलेख में गणपति का उल्लेख है।[९९] कुकुण्ड के 'घटियाला अभिलेख' (८६१ वि० सं०) का प्रारम्भ विनायक वंदन से होता है तथा सर्वश सिद्ध की कामना की गई है। घटियाला स्तम्भ के शीर्ष पर चतुद्रिक मुख किए हुए गणपति की चार मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई है।[१००] चालुक्य जयसिंह सिद्धराज के 'साम्बर अभिलेख' का मंगल काव्य 'श्री गणेशाय नमः' है।[१०१] गणेश की संकिशा टीला (एटा जिला उ० प्र०) तथा भूमरा (म० प्र०) से प्राप्त मूर्तियाँ जो कि ५, ६वीं शदी की प्रतीत होती है। प्राचीनतम् मानी जा सकती है। अलरा (बन्नू जिला पाकिस्तान) से मिट्टी पर उत्कीर्ण गणेश की मूर्ति विसंभवतः उसी समय की है।[१०२] काबुल से प्राप्त गणेश प्रतिमा पर दो लाइन का अभिलेख भी सुरक्षित है। लिपि के आधार पर इस प्रतिमा को छठी सातवी शताब्दी में रखा जा सकता है। अभिलेख में लिखा है कि यह प्रतिभा महाविनायक की है और इस प्रतिमा की स्थापना साही खिग्गल ने की थी।[१०३] शिशुपालवध के परिवर्ती काल में भी गणेश पूजा लोकप्रिय और राजस्थान में दसवीं, ग्यारहवीं शताब्दी की गणपति पूजा के अनेक उल्लेख मिलते है।

गणेश की भाँति स्कण्द कार्तिकेय भी शिव पार्वती के पुत्र माने गए है। यद्यपि शिशुपालवध में इनका उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु पूर्व मध्यकाल के अनेकों साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से स्कण्ड कार्तिकेय की पूजा, देवताओं की सेना का नायकत्व करने के कारण हिन्दू धर्म के लोकप्रिय देवताओं में स्कन्द का परिगणन हुआ है।

दार्शनिक सिद्धान्त :

हमारा निर्दिष्ट काल दार्शनिक दृष्टि से उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुचा हुआ था। इस समय से पूर्व भारत में दर्शन के छः प्रसिद्ध सम्प्रदायों न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा का पूर्ण विकास हो चुका था। महाकवि माघ के काल से पूर्व की छहों सम्प्रदायों के मुख्य-मुख्य सूत्रग्रंथों का निर्माण हो चुका था और इन पर पौराणिक तथा उपयोगी भाष्य भी लिखे जा चुके थे। महाकवि माघ न सिर्फ एक महान कवि थे, अपितु वह महान पंडित व ज्ञानी थे। उनकी विद्वता के दार्शनिक पहलू पर विचार करने से पता चलता है कि वे प्रकाण्ड दार्शनिक थे।

सांख्य :

सांख्य दर्शन में प्रकृति ही जगत का मूल है और सत, रज तथा तम इन त्रिगुणों के योग से सृष्टि तथा उसके सब पदार्थों का विकास हुआ है । आत्मा ही पुरुष है । वह अकर्त्ता, साक्षी और प्रकृति से भिन्न है । आत्मा या पुरुष अनुभवात्मक है । सांख्य के अनुसार परमात्मा कोई नही है । हमारे निर्दिष्ट काल में इस सम्प्रदाय के अधिक ग्रंथ नहीं मिलते परन्तु यह सम्प्रदाय लोकप्रिय रहा होगा । महाकवि माघ ने 'शिशुपालवध' के प्रथम सर्ग में महर्षि नारद द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति के प्रसंग में उक्त सिद्धान्त की बातें बतलाई है । उसमें श्रीकृष्ण को प्रकृति के विकारों से परे स्थित पुरुष कहा गया है ।[१०४] इसी प्रकार चर्तुदश सर्ग के श्लोक १९ में इस दर्शन के सिद्धांत प्राप्त होते है । इस श्लोक में यह संकेत किए गए है कि पुरुष (आत्मा) स्वयं कोई कार्य नहीं करता, किन्तु बुद्धि करती है, किन्तु बुद्धि के साथ अभेद मानने से तथा उसकी वृत्तियों को अपनी वृत्तियाँ मानने से ही उसे (आत्मा में) सुख, दुःख आदि का अनुभव होता है ।[१०५] सांख्य सम्प्रदाय का प्रचार परिवर्ती काल में भी था ।

योग :

योग वह दर्शन है, जिसमें चित्त को एकाग्र करके ईश्वर में लीन करने का विधान है । योग दर्शन में आत्मा और जगत के संबंध में सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन किया है । योग दर्शन के अनुसार ईश्वर नित्य, मुक्त, अद्वतीय और त्रिकालातीत है । संसार दुःखमय और हेय है । योग सम्प्रदाय के अनुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिपेस ये पाँच प्रकार के क्लेश मनुष्य को होते है और कर्मों के फलानुसार उसे दूसरा जन्म लेना पड़ता है । इनसे बचने और मोक्ष प्राप्त करने का उपाय योग है । शिशुपाल वध' काव्य के चतुर्थ सर्ग में ५५वे श्लोक में 'रैवतक पर्वत' के संदर्भ में कहा गया कि इस पर्वत पर समाधि धारण करने वाले योगी लोग मैत्री आदि चित्त वृत्तियों को जानकर तथा अविद्या आदि पाँच क्लेशों को नष्ट कर सभी योग को प्राप्त लिए है ।[१०६] प्रकृति तथा पुरुष के परस्पर पार्थक्य को समझकर मोक्ष प्राप्त करते है । उक्त पद में योग के अनेक परिभाषिक शब्दों का प्रयोग कर कवि उक्त सिद्धांत की अपनी गंभीर विद्वता का उदाहरण प्रस्तुत करता है । इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग के श्लोक ६०, ६२, ६४ में भी योग के सिद्धांत के संबंध में बातें लिखी है ।[१०७]

पूर्व मीमांसा :

कुछ विद्वानों का मत है कि पहले मीमांसा का नाम न्याय था। वैदिक वाक्यों के परस्पर समन्वय और समाधान के लिए जैमिनी ने पूर्व मीमांसा में जिन सूक्तियों एवं तर्कों का व्यवहार किया। वे पहले न्याय के नाम से प्रसिद्ध थे। मीमांसा सिद्धांत कर्मकाण्ड का प्रतिपादक है और वेद के क्रियात्मक भाग की व्याख्याकरता है। इसमें यह काण्ड संबंधी मंत्रों में विनयोग, विधि आदि का भली प्रकार प्रतिपादन किया गया है। इसमें यज्ञ, बलिदान एवं संस्कारों पर विशेष जोर दिया गया है। अत: मीमांसक, पौर्षेय और अपौर्षेय सभी वाक्यों को कार्य विषयक मानते है। मीमांसा में आत्मा, ब्रह्म, जगत आदि का विवेचन नहीं है। यह केवल वेद व उसके शब्द की नित्तता का प्रतिपादन करता है। इसके अनुसार वेद मंत्र ही देवता है। सांख्य और पूर्व मीमांसा दोनों अनेश्वरवादी है। वेद की प्रामाणिकता भी दोनों मानते है। भेद यही है कि सांख्य वेद का प्रत येक कल्प में नवीन प्रकाशन मानता है और मीमांसक उसे नित्य कहते है। जैमिनी के सूत्रों पर सबसे प्राचीन भाष्य 'सबरस्वामीका' उपलब्ध होता है। जो संभवत: ५वीं शदी में लिखा गया है। सातवीं शदी में मीमांसक विद्वान कुमारिल भट्ट का उदय हुआ।[१०८] उसने विपरीत परिस्थितियों में वेदों की प्रामाणिकता स्थापित करने का प्रयास किया और बौद्धों की अहिंसा की लहर के विरुद्ध कर्मकाण्ड को भी पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया। उसने मीमांसा पर कातंत्रवार्तिक और श्लोक वर्तिक श्लोक लिखे। जिनमें उसने वेद की प्रामाणिकता स्वीकार न करने वाले बौद्धों का खण्डन किया।[१०९] शिशुपालवध काव्य के चतुर्दश सर्ग के २० वे श्लोक में याज्या, अनुवाक्या और ऋस द्वारा होता तथा प्रशास्ता द्वारा योग की बात कही गयी है। तथा पूर्व मीमांसा के परिभाषिक शब्द द्वत्य देवता आदि की चर्चा हुई है।[११०] इसी प्रकार उक्त सर्ग के बाइसवें श्लोक में महाकवि माघ के पूर्व मीमांसा विपयक प्रगाढ़ ज्ञान की ओर संकेत मिलता है।[१११]

उत्तर मीमांसा :

उत्तर मीमांसा या वेदान्त दर्शन का सातवीं सदी में सबसे अधिक विकास हुआ। व्यास के वेदान्त सूत्र बहते पहले लिखा जा चुका था। शंकराचार्य ने इस युग में धार्मिक व दार्शनिक क्रांति पैदा कर दी। बौद्धों और जैनों के नास्तिक वाद को वो नष्ट करना चाहते थे। परन्तु साथ ही यह जानते है थे कि

कुमारिल भट्ट की भाँति बहुत सी बातों में जनता के विरुद्ध होने से कुछ नहीं हो सकता। उन्होंने वेदान्त के अद्वैतवाद एवं मायावाद के सिद्धांत का प्रबलता ओर विद्वता से पालन किया। वे अद्वैतवाद के प्रवर्ताचार्य थे।[११२] शिशुपालवध के प्रथम सर्ग के ३२वें श्लोक में उत्तर मीमांसक सिद्धांत का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग के श्लोक ६५ में श्रीकृष्ण की सृष्टि का मूल कारण तथा परमब्रह्म बताकर इस सिद्धांत की ओर संकेत किया है।[११३]

भारत की धार्मिक परम्परा में अनेक विविधताएँ दृष्टिगत होती है। इस देश की धार्मिक परम्पराओं में आर्य, द्रविड़, निसात, किरात सरीखे अन्यान्य संसकृतियों का समन्वय होता है। भारत में सामान्यत: वैदिक युग से दो प्रकार के दैवीय शक्तियाँ वैदिक देवता और लोक देवता के रूप में स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। इन दोनों के परस्पर आदान-प्रदान तथा मेल जोल की प्रक्रिया का उनमेष भी होता है। लौकिक देवी देवताओं में मुख्य रूप से नाग, यक्ष, किंट. गंधर्व एवं दिगपाल (चित्र-१३) आदि देवी देवता थे।महाकवि माघ ने 'शिशुपाल वध' नामक महाकाव्य में श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन किया है। परन्तु उनके ग्रंथ में अनेकों लौकिक देवी देवताओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वास्तव में लौकिक देवताओं की उपासना जनमानस में व्याप्त थी। महाकवि माघ ने सूर्य (चित्र-१४), कुबेर, यम, अप्सरा, विद्याधर, गंधर्व आदि की उपासना का उल्लेख किया है।

गुप्त काल भारतीय इतिहास का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। गुप्तकालीन शासक अपने कला एवं साहित्य के प्रति प्रेम तथा धार्मिक उदारता के लिए भारतीय इतिहास में अमर है। कालिदास ने 'मेघदूत' में यक्ष विरह का हृदयास्पर्शी चित्र खींचा है जो अपने निवास स्थल अलकापुरी से बाहर कर दिया गया। कुबेर की यक्षश्वेर भी कहा गया है जिसकी राजधानी अलकापुरी है (चित्र-१५)।[१३०]

गुप्त युग में कुबेर की पूजा मान्यत: प्रचलित थी। कुबेर के उपासकों का विश्वास था कि प्रसन्न होने पर वह धन आदि द्वारा संतुष्ट कर देगा। गुप्त कालीन शिल्पियों ने अनेक यक्ष-यक्षीय आकृतियाँ गढ़ी है। हेनरीक जिमर ने अजन्ता में कुछ यक्षों का उल्लेख किया है जो गुप्तकालीन है। अजन्ता में विहार की दीवारों पर अनेक देवी देवताओं का चित्रण किया गया है।इसमें यक्ष, यक्षीय, नागराज, अप्सरा आदि भी चित्रित है।[११५] वोगिल ने भी अजन्ता में बुद्ध के साथ यक्षों के चित्रण की बात कही है।[११६]

भारत कला भवन की बलुआघाट पत्थर निर्मित कुबेर प्रतिमा (छठी, सती ईसवी) बड़े उदर द्विभुजी एवं उत्कतिकासन में है। उनके बाएँ हाथ में थैला एवं दायाँ अभय मुद्रा में है। प्रतिमा सुन्दर केश विन्यास, कुण्डक हार आदि से आभूषित है।

ह्वेनसाँग ने हारिति, वैश्रवण, मैत्रेय, मंजूश्री, यम आदि का वर्णन किया है। इसी क्रम में इत्सिंग ने भी हारिति, चर्तुमहारुजिक, यम आदि का वर्णन किया है।[११७] हर्षकालीन समाज में इनकी पूजा प्रचलित थी। इसके पर्याप्त साक्ष्य है। शिव राममूर्ति के अनुसार कादम्बरी के रचयिता बाण ने नाग, देव, असुर यक्ष, किंनर, गरुड़, सर्प आदि का उल्लेख किया है जो उनकी लोकप्रियता का परिचायक है। लेखक के वर्णानुसार गंधर्व और उनके राजा चित्ररथ का उल्लेख भी वाण की पैनी दृष्टि से अछूता नही रहा।[११८] महाकवि माघ ने प्रथम सर्ग के ४४वें श्लोक में इन्द्र, यम, वरुण तथा कुबेर आदि चार दिक्पालों का देवताओं के रूप में उल्लेख किया। इसी प्रकार महाकवि माघ ने दिग्गज विद्याधर आकाशगामी देव तथा अर्द्ध देवों का वर्णन भी किया है।[११९]

पूर्व मध्यकाल में गुर्जर, प्रतिहार तथा राजपूत राजाओं ने कला को प्रश्रय दिया और इन शासकों ने अनेकों वैदिक देवी-देवताओं के साथ लौकिक देवी देवताओं की भी मूर्तियाँ निर्मित कराई।

संदर्भ

१. पाण्डे, गो० च०, स्टडीज इन द ओरिजिन ऑफ बुद्धिस्म, पृ० ५१२-५९५

२ हुल्स, ई सी० आई० आई, १, पृ०

३. पाण्डे, गो० च०, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० १५९-१६५

४ इत्सिंग, रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया एण्ड दि मलय आर्कियेलागो– जे० ए० ताकाकुशु

५ यादव, बी० एन० एस०, सोसाइटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इंडिया, पृ० ३४५

६ वही, पृ० ३४४

७ बु-स्टोन, Tr. obermiller II, पृ० १७१

८ मिश्र, आर० सी०, डिक्लाइन ऑफ बुदिस्म, पृ० १३५

९. क्षेमेन्द्र– दशावतारचरित, पृ०

१०. श्रीहर्ष– नैषाध्यचरित

११ जयदेव– गीत गोविन्द

१२. महताब, हरे कृष्ण, द जगन्नाथ ऑफ उड़ीसा, पृ० २०

१३ पाण्डे, गो० च०, शंकराचार्य विचार और संदर्भ, पृ० १९

१४ माघ– शिशुपालवध २/२८

१५. पाण्डे, गो० च०, शंकराचार्य विचार और संदर्भ, पृ० १७

१६ नील, रेकार्डस ऑफ वेस्टर्न वर्ल्ड, २, पृ० २७०

१७. बाण हर्षचरित, ६, पृ० ३१७-३२१

१८. पाण्डे, गो० च० – शंकराचार्य-विचार और संदर्भ, पृ० १७-१८

१९. इण्डियन एक्टिक्वेरी, १४, पृ० ४५-४६

२०. मजूमदार, आर० सी० : श्रेणी युग, पृ० ४६६-४६७

२१ शर्मा दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, पृ० ४१६-१७

२२. व्यास एस० पी०, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ९२

२३. शर्मा दशरथ, रा० थ्रू० ए०, पृ० ४२०

२४ वही, पृ० ४१९-२०

२५. ए० एस० आई० रिपोर्ट १९०८-९, पृ० १०८

२६. शर्मा दशरथ, रा० थ्रू० ए०, पृ० ४१६

२७. जैन के० सी० जैनिज्म इन राजस्थान, पृ० १९

२८. एपिग्राफिक इंडिका, ९, पृ० २७७-८०

२९ एपिग्राफिक इंडिका, १०, पृ० २४

३०. दशरथ शर्मा, रा० थ्रू० ए०, पृ० ४२१

३१. शिशुपालवध XVII.११२

३२ वाटर्स, II पृ० ११०, १८७

३३. बाण, हर्षचरित, VIII, ४२२

३४. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेसीज, पृ० २५१- २५३

३५. गोयल एस० आर०, ए हिस्टी ऑफ दि इम्पीरियल गुप्तज, पृ० १३५-१३९

३६. बनर्जी, जे० एन० : पुराणिक एण्ड तांत्रिक रिलीजन, पृ० ४६

३७. गोयल श्री राम : रिलीजियस हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० २१७

३८ शिशुपालवध I ३४-३९, XIV ७१-७८

३९ व्यास श्याम प्रसाद–राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७५

४०. एपिग्राफिक इंडिका, ९, पृ० १९८-२००

४१ वही, १८, पृ० ९७

४२. भाण्डारकर, आर० जी०, वैष्णव, शैव अन्य धार्मिक सम्प्रदाय, पृ० ५२

४३ भण्डारकर आर० जी०, 'वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक सम्प्रदाय', पृ०

४४. शिशुपालवध–V ६९, X ३

४५. हर्षचरित, VIII, पृ० ४२२-४२३

४६ शिशुपालवध– १/६७-६८

४७ सिंह एस० के० कल्चरल हिस्टी ऑफ नार्दन इण्डिया– पृ० ७५

४८. शिशुपालवध–I ३४, XIV ७१-८१

४९. 'शिशुपालवध'– I ४९, II ६१, XI ५६, XIII १९, XVII ५४

५०. रघुवंश–६/३४, १८/२४, शाकुन्तलम–१/९, कुमार संभवम् ६/७६

५१ एपिग्राफिक इंडिका, XIV पृ० १२०

५२. बाण, हर्षचरित–II, पृ० ४३

५३. बाण, हर्षचरित–III, पृ० ८४

५४. सिह, एस० के० कल्चरल हिस्टी ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ० ६४

५५. सी० आई० आई० III, पृ० २३१

५६. जे० एन० एस० आई०, भाग XXVII पृ० १०३-१०६

५७. एंडियन एक्टिक्वेटी, IX, पृ० २३८

५८. एपिग्राफिक इण्डिका, VI, पृ० १४३

५९. वाण, हर्पचरित VII, पृ० २१७

६०. वाटर्स, I, पृ० ८, २५७, २५९, २६२, ३३१, ३५२ II पृ० ४७

६१. एडमेनेस्टिल रिपोर्ट ऑफ द आर्कलॉजिकल डिपार्टमेन्टल जोधपुर १९३४, पृ० ५

६२. एपिग्राफिक इण्डिका, १८, पृ० ९५

६३. शर्मा, दशरथ, रा० थ्रू० ए०, पृ० ३७४

६४. पी० आर० ए० एस० डब्लू० सी०—१९२०-२१, पृ० ५६

६५ व्यास श्याम प्रसाद 'राजस्थान के अभिलेखों का सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ६९

६६ वही, पृ० ७०

६७. सिंह, एन० के०—कल्चरल हिस्टी ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ० ६९-७०

६८. नागरीय प्रचारणीय पत्रिका, पृ० ६३, अंक ३, ४

६९. वायु पुराण अध्याय-३३, लिंग पुराण अध्याय-२४

७०. लिग पुराण—२४/१३१

७१. 'सुभानी राम वल्लभ ऐतिहासिक शोध संग्रह, पृ० १२७-४०

७२ ओझा गौरी शंकर हीराचन्द्र 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', पृ० १८

७३ ए० एस० आई० II, पृ० २६६

७४ व्यास, श्याम प्रसाद 'राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७१

७५. शिशुपालवध—२/६१

७६. शिशुपालवध—११/५६

७७. शिशुपालवध—१/७

७८. कादम्बरी, पृ० १७

७९. 'शिशुपालवध'—१७/४४, १८/५०

८०. लाल बी० बी०, 'न्यू लाइट ऑन द इण्डस सिवलाइजेशन', पृ० ९२

८१. मारकण्डेय पुराण अध्याय (८१-९३)

८२. परब : कादम्बरी, पृ० ३३४-३५१

८३ हर्षचरित घ्ट९८

८४. जीवनी, पृ० ८६-८७

८५. दशकुमार चरित, पृ० १५१-१५२

८६ पुरी, के० एन०, रैढ़ उत्खनन वृत्त, पृ० २६

८७. मरुभारती, ३, १, पृ० २३

८८. फ्लीर, गुप्ता अभिलेख, पृ० ७४-७५

८९ आर्केयोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया रिपोर्ट १९२९-३०, पृ० १८७

९० एपिग्राफिक इंडिका ११, पृ० २९९

९१. एपिग्राफिक इंडिका ९, पृ० १८७-८९

९२. एपिग्राफिक इंडिका-२०, पृ० ९७-९९

९३. ओझा, गौरी शंकर हीरानंद, 'डूंगरपुर राज्य का इतिहास', पृ० १८-१९

९४. मरुभारती, ३, पृ० २३

९५. एपिग्राफिक इडिका ५, पृ० २०८

९६. व्यास श्याम प्रसाद, 'राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन', पृ० ८७

९७ शिशुपालवध– १/६०

९८. अमरकोश, स्वरादि खण्ड, श्लोक-२८

९९. विसम्भरा, २,४, पृ० १७

१०० एपिग्राफिक इण्डिका-९, पृ० १७९

१०१. वही, पृ० २८०

१०२. गेटी ए, गणेश, पृ० २६

१०३ एपिग्राफिक इण्डिका ३५, पृ० ४७

१०४. 'शिशुपालवध'–I, २३

१०५. वही, XVI, १९

१०६. 'शिशुपालवध'–IV, ५५

१०७. वही, XIV ६०, ६२, ६४

१०८. पाण्डे, गो० च०, शंकराचार्य विचार और संदर्भ, पृ० १३

१०९. ओझा गौही, 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' पृ० ७४

११०. 'शिशुपालवध-–XIV, 20

१११. 'शिशुपालवध'–XIV, २२

११२. पाण्डेय गो० च०, 'शंकराचार्य विचार और संदर्भ', पृ० १३-१७

११३. 'शिशुपालवध'–I ३२ XIV ६५

११४. कालिदास–मेघदूतम, पूर्व मेघः, ७

११५. गुप्ते रमेशंकर, महाजन बी० डी०, एलौरा एण्ड औरंगाबाद केल्स, पृ० ३८

११६ वोगल, बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया सीलोन एण्ड जावा, पृ० ६२

११७. भट्टाचार्या बी०, दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइक्यानोग्राफी, पृ० ३५

११८. सी० शिवराम मूर्ति, साउथ इण्डियन पेन्टिंग, पृ० २५

११९. 'शिशुपालवध'–१/४४, १७/६४-६६

अध्याय - सप्तम्

शिक्षा, साहित्य व कला

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के विकास व प्रगति के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था होना प्रथम आवश्यकता है। शिक्षा की समुचित व्यवस्था न होने पर समाज को न ही प्रतिभाशाली नेतृत्व मिलता है न ही प्रजा अपने लक्ष्यों व हितों के प्रति जागरुक होती हैं। ऐसा समाज समुद्र में दिशा विहीन जहाज की तरह होता है जो लक्ष्य के अभाव में डगमगाकर अन्त में समुद्र में ही डूब जाता है।

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से ही शिक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। मनुष्य के सामाजिक-धार्मिक जीवन को शिक्षा व्यवस्था के साथ जोड़ा गया कि समाज को शिक्षित नेतृत्व व नागरिक दोनों मिल सके। प्राचीन काल में शिक्षा का प्रबन्ध योजनाबद्ध और सुव्यवस्थित था। विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करता था। वेद, पुराण, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि सभी विषयों की शिक्षा को समुचित व्यवस्था थी।

माघ का युग यद्यपि राजनीतिक रुप से संघर्षों व अशान्ति का युग था परन्तु यह युग गुप्त काल से चली आ रही शिक्षा, साहित्य व कला की क्लासिकी परम्परा का सुयोग्य वाहक बना। ७वीं शती में यत्र तत्र ऐतिहासिक कारणों से परिवर्तन के बावजूद शिक्षा का प्राचीन गुरुकुल स्वरुप बना रहा। इस युग में शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। तत्कालीन प्रचलित धर्मों (यथा ब्राह्मण, बौद्ध व जैन धर्म) ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार में विशेष भूमिका निभाई। तत्कालीन संस्कृत साहित्य व चीनी लेखकों के वृत्तान्तों से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण, श्रमणों के अतिरिक्त अन्य वर्ग भी शिक्षित थे। इस काल में ऐसे राजाओं का भी उल्लेख मिलता है जो न सिर्फ विद्वानों को संरक्षण देते थे अपितु स्वयं भी विद्वान थे।

देश में बहुसंख्यक शिक्षण संस्थाएँ थी जिन्हें गुरुकुल कहते थे। इन शिक्षालयों में आचार्य तथा

उपाध्याय अपने शिष्यों को वेद तथा अन्य शास्त्र पढ़ाते थे। हर्षचरित के अनुसार ब्राह्मणों का समाज में गुरु रुप में पूजनीय स्थान था। ये लोग वेदों के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी अध्ययन करते थे।

बच्चे की शिक्षा उसके उपनयन संस्कार से प्रारम्भ हो जाती थी। मध्ययुगीन लेखक अपरार्क और स्मृतिचन्द्रिका कार देवणभट्ट ने मार्कण्डेय पुराण को उद्धृत करते हुए सन्तान के विद्यारम्भ की अवस्था पाँच वर्ष निर्धारित की है। संस्कार प्रकाश और संस्काररत्नमाला में भी विधा का आरम्भ उपनयन के पहले पाँच वर्ष की अवस्था से माना जाता है।

युआन-च्वाँग ने प्राथमिक शिक्षा पद्धति का अपने ग्रन्थ सी-यू की में उल्लेख किया है उसके अनुसार बच्चों की प्राथमिक शिक्षा 'सिद्धम्' से प्रारम्भ होती थी। पहले पाठ के ऊपर 'सिद्धम' लिखा होने के कारण इस पुस्तक का नाम 'सिद्धम' पड़ गया। सिद्धम् से तात्पर्य था कि पढ़ाई प्रारम्भ करने वाले का कार्य (अर्थात् पढ़ाई) सिद्ध (पूरी) हो। सिद्धम् की समाप्ति के पश्चात् सातवें वर्ष पाँच विधाओं का अध्ययन कराया जाता था।ये पॉच विधाएँ थीं (१) शब्द विद्या (व्याकरण) (२) शिल्प विद्या (३) चिकित्सा विद्या (४) हेतुविद्या (न्याय व तर्क) (५) अध्यात्मविद्या (दर्शन शास्त्र)। इत्सिंग ने भी बच्चों की प्राथमिक शिक्षा का प्रारम्भ 'सिद्धिरस्तु' नामक पुस्तक से माना है, जिसमें वर्णमाला, स्वर और व्यंजन का विनियोग था।

बाण अपने गुरु गृह से चौदह वर्ष की अवस्था में स्नातक होकर लौटा था। गुरुकुल में बाण ने अपनी शाखा के वेद में महारत हासिल कर ली थी। वहाँ से लौटने के बाद, विवाह के समय तक, उसके अध्ययन का क्रम अवाध गति से जारी था।गुरुकुल जीवन समावर्तन संस्कार के बाद पूरा हो जाता था। समावर्तन संस्कार तक बाण ने भी अपने कर्तव्य को पूरा किया। प्राचीन व्यवस्थाकारों ने विद्यार्थी जीवन को पच्चीस वर्ष माना है। युआन-च्वाँग से हमें ज्ञात होता है कि विद्यार्थी जीवन उन दिनों तीस वर्ष का था। परन्तु व्यवहारिक रुप में इसमें परिवर्तन होता रहता था। बाण ने चौदह वर्ष तथा राजकुमार चन्द्रापीड़ सोलह वर्ष की अवस्था में गुरुकुल से लौट आया था।

तत्कालीन साहित्यिक ग्रन्थों को देखने से पता चलता है उन दिनों शिक्षा का माध्यम संस्कृत था और लिपि नागरी थी। उस युग के विविध विषयों के ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही लिखे गये।

बाण ने हर्षचरित में अपने गाँव प्रीतिकूट का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसके गाँव में वात्स्यायन गोत्र के अनेक ब्राह्मण निवास करते थे, जिनके घर गुरुकुल स्वरुप थे। वहाँ वेदों तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों की शिक्षा दी जाती थी। ये घर छोटे-छोटे ब्रह्मचारियों से भरे रहते थे। बौद्ध ग्रन्थों में गुरु और ग्रंथों में शिष्य के संबंधों के नियम ब्राह्मण ग्रंथों में दिये गये नियमों से बहुत कुछ मिलते हैं। इत्सिंग ने गुरु की सेवारत शिष्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह प्रथम और अन्तिम पहर विद्याध्ययन हेतु गुरु के पास आता है, वह गुरु के शरीर को दबाता है, पानी पिलाता है, कपड़े ठीक करता है। इसी प्रकार गुरु शिष्य के बीमार पड़ने पर उसकी सेवा शुश्रूषा करता है।[१] गुरु के पास जो भी रहता था वह शिष्यों का होता था। शिष्य माँग-माँग कर जो लाते थे उसी में से गुरु अपना तथा शिष्यों का पोषण करते थे।[२] शिक्षा समाप्त होने पर गुरु दक्षिणा देना विद्यार्थी का पुनीत एवं आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था।[३]

प्राचीन काल में गुरुओं को अत्यधिक सम्मान था। वशिष्ठ एवं विश्वामित्र की कथाएँ तो लोकप्रिय है हो। इस युग में भी समाज में गुरु का विशिष्ट सम्मानजनक स्थान था। इस संदर्भ में एफ० ई० के० (Keay) का उद्धरण अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं, उनके अनुसार, "भारत में गुरु को प्राथमिकता दी जाती है न कि संस्था को और पश्चिमी देशो के छात्र जो सम्मान और प्रेम अपने अध्ययन केन्द्र को देते है भारत में विद्यार्थी वहीं अपने गुरु के प्रति आजीवन समर्पित रहता है। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ शिक्षक के ऊपर इतनी अधिक जिम्मेदारी व अवसर हों।"[४]

७वीं शती के भारत में शिक्षा का व्यापक महत्व था। शिक्षा के प्रसार में गुप्त राजाओं, वर्धन नरेशों एवं मैतृक राजवंश के राजाओं ने विशेष रुचि दिखायी। इसके अतिरिक्त भीनमाल का नाम भी विद्वानों के संरक्षण हेतु प्रसिद्ध था। महाकवि माघ ब्रह्मगुप्त माहुक और धाइल्ल तथा बाद में उपमितिभव प्रपंच कथा के लेखक सिद्धर्षि सूरी को भीनमाल नरेशों से ही राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ।[५] हर्ष ने शिक्षा के प्रसार में विशेष योग दिया। युआन च्वाँग के अनुसार राजकीय भूमि की आय का चतुर्थांश प्रसिद्ध विद्वानों के लिए सुरक्षित था।[६]

बाण ने अपने विवरण में गोष्ठियों एवं व्याकरण मण्डलों का वर्णन कई स्थानों पर किया है, इन गोष्ठियों की तुलना आधुनिक वाद-विवादों, सेमिनारों तथा व्याख्यानों आदि से कर सकते हैं। प्राचीन भारत

में आधुनिक भारत के समान व्याकरण मण्डलों, कवि गोष्ठियों, प्रमाण गोष्ठियों आदि का आयोजन बुद्धि विकास एवं पठन-पाठन के वातावरण को बनाये रखने के लिए था ।हर्षचरित के आलोचक शंकर ने गोष्ठी को व्यक्तियों की सभा का स्थान माना हैं जहाँ समान हितों न समान रुचि के लोग एकत्र होते थे ।[७] इस प्रकार की शैक्षणिक गोष्ठियाँ और बौद्धिक संस्थाएँ समाज को उच्चकोटि के प्रतिभावान व्यक्ति प्रदान करती थीं । साक्ष्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि उस समय लोगों का बौद्धिक स्तर ऊँचा था तथा ज्ञान और शिक्षा का समाज में सर्वोपरि स्थान था ।

तत्कालीन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि मठ व विहार ही शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे । विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में एकरुपता नहीं थी । ब्राह्मण विद्यार्थी और क्षत्रिय विद्यार्थी का पाठ्यक्रम भिन्न था । इसी प्रकार मठ एवं विहारों के पाठ्यक्रम भी अलग-अलग थे । आध्यात्मिक और लौकिक विधाओं के ज्ञान सम्बन्धी अध्ययन की सूची अत्यधिक विस्तृत थी । बाद में इन विधाओं की संख्या १८ मानी गयी । ज्ञान की अठारह शाखाओं में चार वेद, छह वेदांग, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद और अर्थशास्त्र शामिल थे ।[८] लक्ष्मीधर ने भी ब्रह्मचारी कांड में १८ विद्याओं की सूची प्रस्तुत की हो ।[९] गुप्त काल में बृहस्पति ने विद्यार्थी के लिए विद्याओं की लम्बी सूची दी है और यह भी बताया है कि किस बरस कौन सी विद्या शुरु करनी चाहिए । इस सूची में अभिनय, चित्रकला, भविष्य वाणी, कुक्कुट अम्व और हस्तिपालन, राजनीति, खगोल व्याकरण, गणित, ब्रह्मविद्या, इत्यादि शामिल थे ।[१०] क्षत्रिय राजकुमार को शिक्षा में अन्य अनेक विषय शामिल थे, इसमें भी सैनिक शिक्षा पर विशेष जोर था । सातवीं शती के चीनी बौद्ध यात्रियों के विवरणों ने बौद्ध तथा ब्राह्मण संस्थाओं के पाठ्यक्रम पर बहुमूल्य प्रकाश डाला है । युआन च्वाँग के अनुसार 'द्वादश अध्याय' नामक रचना समाप्त करने के उपरान्त छात्र को सातवें वर्ष में पाँच अन्य विद्याओं को पढ़ाया जाता था । ये (१) व्याकरण (२) कला और दस्तकारी (३) चिकित्सा विज्ञान (४) तक विज्ञान (५) और आत्म ज्ञान थी ।[११] इसके अतिरिक्त पाणिनि के ८००० श्लोकों वाले ग्रंथ का संक्षेपण भी प्रचलित था । इत्सिंग के अनुसार छह वर्ष की आयु में बच्चे सिद्धकृति[१२] प्रारम्भ करते हैं, आठवें वर्ष में पाणिनि के सूत्र प्रारम्भ करते हैं । दसवें वर्ष में तीन खिल अर्थात् (१) अष्ट धातु (२) मंड (३) उणादि आदि का अध्ययन करते थे । पन्द्रहवें वर्ष में वामन व जयादित्य की कशिकावृत्ति पढ़ता है । इत्सिंग के अनुसार कशिकावृत्ति समाप्त करने के उपरान्त विद्यार्थी तर्कशास्त्र, तथा धर्मशास्त्र का अध्ययन करते थे और भिक्षु इन कृतियों

के अतिरिक्त सम्पूर्ण विनय कृतियाँ सूत्र और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करते थे।[१३]

नारी शिक्षा :– प्राचीन काल में भारत में नारी शिक्षा का काफी प्रचलन था तथा उस युग में गार्गी मैत्रेयी आदि अनेक नारी विद्वानों का अविर्भाव हुआ। परन्तु परवर्ती काल में महिलाओं में उपनयन संस्कार समाप्त होने, बाल विवाह की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी तथा समान रुप से स्त्रियों की सामाजिक धार्मिक स्थिति में पतन के फलस्वरुप नारी शिक्षा को भी धक्का लगा। ७वीं -८वीं शती में बौद्ध धर्म के पतन, जिसने कि पूर्व में नारी शिक्षा को अत्यधिक बढ़ावा दिया था, से भी स्त्री शिक्षा में गिरावट आयी।[१४] ८वीं शती में नारद स्मृति के टीकाकार असहाय ने महिलाओं की परिवार के पुरुषों पर निर्भरता को यह कह कर उचित ठहराया हैं क्योंकि वे अशिक्षित होती है जिनकी वजह से उनकी समझ कम होती है।[१५]

परन्तु नारी शिक्षा की कुलीन व राज परिवारों में स्थिति ठीक थी। राज्यश्री ने विवाह के पहले नृत्य, गायन व अन्य ललित कलाओं की शिक्षा प्राप्त की थी।[१६] बाण ने लिखा है कि राज्यश्री को बौद्ध सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए दिवाकर मित से आग्रह किया गया था।[१७] माघ ने भी शिशुपालवध में गुरु द्वारा नृत्य-नाटक आदि की शिक्षा देने का उल्लेख किया है।[१८] हर्ष की रत्नावली में रानी का वर्तिका से रंगीन चित्र बनाने का वर्णन है।[१९] नैषधीयचरित में दमयन्ती द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख है।[२०] शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाली मंडन मिश्र की प्रकांड विदुषी पत्नी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उसने शंकराचार्य को भी निरुत्तर कर दिया था।[२१] राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी बहुत विदुषी थी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हमारे अध्ययन काल में राजघरानों व अन्य कुलीन वर्ग की नारियों की शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता था तथा वे चित्रकारी नृत्य, संगीत आदि सीखती थी। परन्तु सामान्य रुप से नारी शिक्षा को स्थिति ठीक नहीं थी जो कि उनकी सामाजिक-धार्मिक स्थित में पतन का परिणाम थी।

उच्च शिक्षा केन्द्र :– तत्कालीन बौद्ध शिक्षा प्रणाली की यह विशेषता थी कि मठ और विहार शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। इन केन्द्रों में उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी। जीवनी से पता चलता है कि युआन च्वाँग ने कश्मीर के मठ के प्रधान पुरोहित से कोषशास्त्र एवं हेतु विद्या का ज्ञान सीखा था।[२२]

जालंधर के नगरधर मठ में उसने चार मास तक सर्वस्तिवाद मत के दार्शनिक ग्रंथ, 'प्रकरण-पाद-विभाषा शास्त्र' का अध्ययन किया।[२३] मतिपुर में उसने एक मठ में चार महीने तक रह कर मित्रसेन से ज्ञान-प्रस्थान शास्त्र का अध्ययन किया।[२४] कान्यकुब्ज के भद्र नामक विहार में उसने तीन महीनों तक तीन पीटकों के आचार्य वीर्यसेन से शिक्षा प्राप्त की।[२५] केवल बनारस में ही तीस विहार थे जहाँ सर्वस्तिवादिन शाखा के लगभग दो हजार अनुयायी थे।[२६] बंगाल के पुण्डवर्धन तथा कर्ण-सुवर्ण नगरों में भी अनेक ऐसे मठ थे जिनका विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में विशेष स्थान था।

इस युग में उच्च शिक्षा का एक अन्य केन्द्र था जिसकी प्रसिद्धि न सिर्फ इस देश में बल्कि विदेशों तक व्याप्त थी।यह उच्च शिक्षा का केन्द्र नालन्दा का विश्वविद्यालय था।

आधुनिक बिहार प्रान्त की राजधानी पटना के दक्षिण में लगभग ४० मील की दूरी पर आधुनिक बड़गाँव नामक ग्राम के समीप यह स्थित था। इस विश्वविद्यालय की स्थापना को लेकर मतभेद हैं। युआन च्वॉग लिखता है कि इसका संस्थापक 'शक्रादित्य' था जिसने बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों के प्रति महती श्रद्धा के कारण इसकी स्थापना करवायी थी। 'शक्रादित्य' की पहचान कुमारगुप्त प्रथम (४१५-४५५ ई०) से की जाती है, जिसकी सुप्रसिद्ध उपाधि महेन्द्रादित्य की थी। 'महेन्द्र' तथा 'शक्र' एक दूसरे के पर्यायवाची है।[२७] शुक्रादित्य के पुत्र बुद्धगुप्त ने एक दूसरा मठ बनवाया। वह संभवत: कुमार गुप्त का सबसे छोटा पुत्र और फलत: स्कन्दगुप्त का सहोदर अथवा सौतेला भाई था।[२८] इसके बाद तथागत गुप्त ने पूरब में एक विहार बनवाया तथा फिर बालादित्य ने पूर्वोत्तर दिशा की ओर एक अन्य विहार बनवाया। नालन्दा में प्राप्त एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि बालादित्य ने नालन्दा में एक भव्य मन्दिर अथवा विहार बनवाया।[२९] जायसवाल के कथनानुसार इसे उसने हूणों पर विजय प्राप्ति के स्मारक के रुप में बनवाया था।[३०] तत्पश्चात् उसके पुत्र वज्र ने उस विहार के पश्चिम की ओर एक विहार बनवा दिया।इसके बाद मध्य भारत के एक शासक के यहाँ एक विहार बनवाया तथा सभी विहारों को चारो ओर से घेरते हुए एक चहरदीवारी बनवा दी। चीनी यात्री द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त राजाओं में प्रथम पाँच गुप्त वंश से सम्बन्धित हैं यद्यपि उनकी पहचान तथा क्रम सुनिश्चित नहीं है। मध्य भारत के शासक की पहचान सम्राट हर्ष से की जाती है जिसने नालन्दा में एक ताम्र विहार बनवाया था।[३१] ११वीं शती तक हिन्दू तथा बौद्ध दाताओं द्वारा नालन्दा में

मठ और विहार बनवाने का क्रम जारी रहा । यद्यपि हर्षकाल में ही नालन्दा विहार एक अंतर्राष्टीय ख्याति के विश्वविद्यालय के रुप में विकसित हो गया था।

नालन्दा में पुरातत्व विभाग द्वारा बृहत पैमाने पर उत्खनन करवाया गया जहाँ से मिले साक्ष्यों से साहित्यिक साक्ष्यों के वर्णन की पुष्टि होती है।[३२] खुदाइयों से पता चला है कि यहाँ का विश्वविद्यालय लगभग १ मील लम्बे तथा आधा मील चौड़े क्षेत्र में स्थित था। विश्वविद्यालय में आठ बड़े कमरे थे। तीन बड़े भवनों में स्थित 'धर्मगञ्ज' नामक विशाल पुस्तकालय था। जीवनी के अनुसार प्रचुर रुप से अलंकृत कमरे, मीनारें तथा परियों के समान गुम्बज पर्वत की नुकीली चोटियों की तरह परस्पर हिले मिले खड़े थे।...... खिड़की से कोई देख सकता है कि किस प्रकार हवा व बादल नया रुप धारण कर रहे हैं।"[३३] इस चीनी विवरण की पुष्टि न्यूनाधिक रुप में आठवीं शती के कन्नौज नरेश यशोवर्मन के नालन्दा से प्राप्त प्रस्तर अभिलेख से हो जाती है। जिसके अनुसार नालन्दा की गगनचुम्बी पर्वत शिखर के समान विहारावलियाँ पृथ्वी के ऊपर ब्रह्मा द्वारा सुन्दर माला के समान शोभायमान हो रही थी।[३४]

७वीं शती में नालन्दा की प्रसिद्धि अपनी चरमोत्कर्ष पर थी। इस युग में नालन्दा को सम्राट हर्ष से पूर्ण राजकीय संरक्षण मिला जिसके परिणामस्वरुप यह विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्याल बना। युआन-च्वाँग ने यहाँ रहकर पाँच वर्ष तक अध्ययन किया तदनन्तर वह यहाँ पर शिक्षक बन गया था।[३५] नालन्दा के लिए द्रव्य की वर्षा होती थी यहाँ के विद्यार्थियों को समस्त वस्तुएं इतनी प्रचुर मात्रा में मिलती थी कि उन्हें अन्य वस्तुएं मांगने कहीं नहीं जाना पड़ता था।[३६]

नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रवेश नियम अत्यन्त कठोर था। विश्वविद्यालय में प्रवेश के अभिलाषी सभी छात्रों को द्वार पण्डित से वाद विवाद करना पड़ता था। इस परीक्षा में दो-तीन विद्यार्थी ही सफल होते थे और सात या आठ विद्यार्थी असफल हो जाते थे।[३७] विश्वविद्यालय में ऐसे विद्वानों का वर्ग था जो अपने-अपने विषयों में अप्रतिम थे। विश्वविद्यालय में कुल १५१० शिक्षक थे। इनमें १००० शिक्षक ऐसे थे जो सूत्रों और शास्त्रों के बीच संग्रहों का अर्थ भली प्रकार समझा सकते थे तथा पाँच सौ व्यक्ति ऐसे थे जो तीस संग्रहों को और दस शिक्षक ऐसे थे जो पचास संग्रहों की व्याख्या भली भाँति कर सकते थे। इस विश्वविद्यालय का कुलपति शीलभद्र था जिनमें सभी विषयों को समझा सकने की अप्रतिम क्षमता

थी।[३८] नालन्दा के श्रेष्ठ आचार्यों का उल्लेख युआन च्वाँग ने किया है। धर्मपाल (शीलभद्र का गुरु और नालन्दा का पूर्व अध्यक्ष) शीलभद्र (नालन्दा का परवर्ती अध्यक्ष), चन्द्रपाल, गुणमति, स्थिरमति, प्रभामित्र जिनमित्र, आर्यदेव, दिग्नाथ और ज्ञान चन्द्र प्रमुख थे। जो अपने जान और व्याख्यान के लिए प्रसिद्ध थे। देश के ये आचार्य विभिन्न दूरस्थ स्थानों के रहने वाले थे, जैसे आर्य देव और दिग्नाग दक्षिण भारत के थे धर्मपाल कांची का था और शीलभद्र बंगाल का रहने वाला था।[३९]

इस युग में नालन्दा देश का ही नहीं बल्कि विश्व के प्रधान शिक्षा केन्द्रों में से था। नालन्दा में सुदूर देश चीन, मंगोलिया तिब्बत आदि से भी विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।[४०] नालन्दा विश्वविद्यालय का धर्मगंज नामक पुस्तकालय तीन भव्य भवनों—रत्नसागर, रत्नोदधि तथा रत्नरंजक में स्थित था। विश्वविद्यालय का प्रशासन चलाने के लिए दो परिषदें थी—बौद्धिक तथा प्रशासनिक इन दोनों के ऊपर कुलपति होता था। विश्वविद्यालय का खर्च शासकों तथा अन्य दाताओं द्वारा प्रदान किये गये ग्रामों के राजस्व से चलता था। इत्सिंग के समय इसके अधिकार में दो सौ गाँवों का राजस्व था। इस प्रकार नालन्दा अपने ढंग का अद्‌भुत एवं निराला विश्वविद्यालय था। हर्ष के बाद लगभग १२वीं शती तक इसकी ख्याति बनी रही। मन्दसोर प्रस्तर लेख से पता चलता है कि सभी नगरों में नालन्दा अपने विद्वानों के कारण, जो विभिन्न धर्मग्रंथों तथा दर्शन के क्षेत्र में निष्ठमत थे, सबसे अधिक ख्याति प्राप्ति किये हुए था।[४१]

विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में दूसरा बड़ा केन्द्र गुजरात में वल्लभी था। नालन्दा की तरह वल्लभी को भी राजकीय संरक्षण प्राप्त था। वल्लभी मैत्रक वंश के राजाओं की राजधानी थी।[४२]नालन्दा आने के पूर्व गुणमति तथा स्थिरमति इसी नगर के रहने वाले थे। यही उन्होंने अपने दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की तथा प्रसिद्धि प्राप्त की।[४३] इत्सिंग ने लिखा है कि प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके विद्यार्थी प्रायः दो या तीन वर्ष मध्य देश के नालन्दा मठ अथवा पश्चिमी भारत के वल्लभी देश में व्यतीत करते हैं। वहाँ गुणवान और विद्वान अधिक संख्या में रहते थे।[४४] भट्टि वल्लभी के राजा के ही आश्रित थे।[४५] विद्वानों का मत है कि माघ का भी किसी न किसी रुप में वल्लभी से संबंध अवश्य था। क्षिप्रा तट पर स्थित उज्जैन भी शिक्षा और विद्या का प्रमख केन्द्र था। वहाँ के निवासी विदेशी भाषाओं में कुशल, विभिन्न शास्त्रों में पारंगत

और सम्पूर्ण कलाओं में दक्ष होते थे।[४६] दक्षिण भारत में कांची नगर भी उच्च कोटि के कवियों और बौद्ध विद्वानों का केन्द्र स्थल था। प्रख्यात बौद्ध विद्वान धर्मपाल वहीं का रहने वाला था। कांची को पल्लव नरेशों कि ये उनकी राजधानी थी। काँची में संस्कृत महाविद्यालय (घटिका) था। महेन्द्र वर्मा I ने यत्तविलास प्रहसन नामक हास्य ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें कापालिकों एवं बौद्ध भिक्षुओं की हँसी उड़ाई गयी है।[४७] कुछ विद्वानों के मतानुसार किरातार्जुनीयम का रचयिता भारवि कांची में सिंह विष्णु की राजसभा में रहते थे।[४८] महेन्द्र वर्मा का उत्तराधिकारी नरसिंह वर्मन (६४०-६७४) भी कला एवं विद्वानों का महान संरक्षक था। उसकी राज सभा में दश कुमार चरित एवं काव्यादर्श के लेखक दण्डी निवास करते थे।[४९] पल्लव शासकों के अधिकांश लेख संस्कृत में ही लिखे गये हैं।

माघ युगीन शिक्षा एवं साहित्य के सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था उचित थी तथा साहित्य के क्षेत्र में मौलिक सृजनात्मक कार्य हुआ। साहित्य के क्षेत्र में माघ, भारवि, भट्टी, बाण, मयूर आदि विद्वान थे। दर्शन के क्षेत्र में धर्मपाल, धर्मकीर्ति, कुमारिल व शंकर का अविर्भाव हुआ तथा शिक्षा केन्द्र के रुप में नालन्दा जैसा विश्वविद्यालय था।

साहित्य

गुप्त युग भारत में राजनीतिक एकता एवं आर्थिक सम्पन्नता का युग था। इस वातावरण में गुप्त राजाओं ने कला एवं साहित्य को दृढ़ता से संरक्षण प्रदान किया।

इसके परिणामस्वरुप संस्कृत साहित्य की समस्त विधाओं में अत्यधिक उन्नति हुयी। यह विकास गुप्त युग के बाद की अनेक शताब्दियों तक बना रहा। ७वीं शती के आस-पास धार्मिक एवं लौकिक साहित्य दोनों का विकास हुआ। कला एवं साहित्य को वर्षों में बाँधना उचित नहीं होता इनका एक युग होता है। गुप्त युग की कला एवं साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ गुप्त राजनीतिक सत्ता के अवसान उपरान्त भी साहित्य सृजन की प्रेरणा देती रहीं। हमारे अध्ययन काल में संस्कृत साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में श्रेष्ठतम लेखक हुए, यहाँ तक कि खगोल विद्या और गणित आदि वैज्ञानिक क्षेत्रों में भी उत्कृष्ट साहित्य की रचना हुयी। विवेच्य काल के अभिलेखों में भी उत्कृष्ट कोटि की संस्कृत लेखन परम्परा दृष्टिगोचर होती है। हर्ष का बांसखेड़ा अभिलेख अलंकृत शैली में लिखा गया है।[५०]

इतिहास में ऐसे अनेक राजाओं के उदाहरण मिलते हैं जो कि कला एवं साहित्य के महान संरक्षक थे। परन्तु संरक्षक के साथ-साथ स्वयं भी उच्चकोटि के साहित्यकार हों ऐसे उदाहरण सीमित है। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में वर्णन है कि समुद्र गुप्त उच्च कोटि का कवि था और वह कविराज की उपाधि से विभूषित था।[५१] परन्तु दुर्भाग्यवश उसके द्वारा रचित एक भी कृति उपलब्ध नहीं है।" हमारे विवेच्य काल में सम्राट हर्ष उन राजाओं की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने न सिर्फ कला एवं साहित्य को संरक्षण प्रदान किया बल्कि उत्कृष्ट कोटि की साहित्य रचना भी की।

गुप्तों के बाद कला और साहित्य का केन्द्र पाटलिपुत्र न रहा। वर्धन साम्राज्य के उदय के साथ कन्नौज कवियों का आश्रय स्थल बना। बाण, मयूर मानतुंग, ईशान (भाषा कवि) हर्ष के राजकवि थे।हर्ष के बाद भी कन्नौज ने इस महत्व को बनाये रखा। यशोवर्मन ने भवभूति, वाक्पतिराज आदि कवियों को प्रश्रय दिया। इसी समय गुजरात में एक नया राज्य उदित हुआ, जिसका नाम वलभी था। हासोन्मुख काल के प्रारम्भ में वलभी पण्डितों व कवियों का केन्द्र था। भट्टि वलभी के ही राजा के आश्रित थे। ७वीं शती भी भीनमाल भी एक प्रमुख केन्द्र के रुप में उभरा। महाकवि माघ और वैज्ञानिक ब्रह्मगुप्त को इसी राज्य ने संरक्षण प्रदान किया। ११वीं व १२वीं शती में गुजरात के राजाओं की राजधानी पट्टण, बंगाल के सेनों की राजधानी लक्ष्मणावती तथा मालव की धारा नगरी साहित्य सृजन के प्रमुख केन्द्र थे।

बाण ने कादंबरी में उज्जयिनी नगर चित्रण के संदर्भ में वहाँ के नागरिकों के विषय में लिखा है कि वे महाभारत, रामायण पुराण आदि के अतिरिक्त वृहत्कथा से भी परिचित थे।[५२] इससे प्रतीत होता है कि जनसामान्य में रामायण महाभारत पुराण आदि का प्रचार था तथा इन ग्रंथों में वर्णित घटनाओं एवं कथाओं को पढ़कर वे लोग न सिर्फ अपनी जिज्ञासा शान्त करते थे बल्कि उनका नैतिक व अध्यात्मिक उत्थान भी होता था।गुणाढ्य रचित 'बृहत्कथा' एक लोकप्रिय ग्रंथ था। बाण ने हर्षचरित में लिखा है—"जैसे काम देव को जलाकर भष्म करना और पार्वती का श्रृंगार करना आदि परस्पर विरुद्ध बातों से शिव की लीला किसे नहीं विस्मित करती, इसी प्रकार वर्णनों द्वारा कन्दर्प को प्रकाशित करने वाली एवं पार्वती के प्रति आराधना से युक्त गुणाढ्य की बृहत्कथा किसे नहीं विस्मय विमुग्ध करती[५३], बाण ने कादम्बरी में भी इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। उज्जयिनी के लोगों को बाण ने 'बृहत्कथाकुशल' अर्थात् बृहत्कथा से

परिचित बताया है।[५४] दंडी ने अपने काव्यादर्श में इसका उल्लेख किया है।[५५] अत: इस युग के लोकप्रिय ग्रंथों में बृहत्कथा का विशिष्ट स्थान था।वृहत्कथा के अतिरिक्त दूसरी कथा कृति सुबंधु प्रणीत वासवदत्ता थी जिसकी प्रशंसा बाण ने हर्षचरित में की है।[५६] संभवत: वासवदत्ता से अधिक सुन्दर ग्रन्थ प्रस्तुत करने के निमित्त ही बाण के कादम्बरी की रचना की थी।

तत्कालीन समाज में स्त्री-पुरुष महाभारत व रामायण का पाठ धार्मिक निष्ठा के साथ करते थे जिससे कि उनकी आध्यात्मिक उन्नति हो सके। हर्षचरित के तृतीय उच्छ्वास में बाण ने अपने चचेरे भाइयों के लिए 'महाभारतभावितात्मान:' लिखा है जिससे तात्पर्य है कि उन्होंने महाभारत का अनुशीलन किया था।[५७] कादम्बरी में लेख है कि जिस समय चंद्रापीड़ कादम्बरी से भेंट करने गया था उस समय एक स्त्री मधुर स्वर में सर्वमंगलमूल महाभारत का गान कर रही थी और कादम्बरी उसे बड़े ध्यान से सुन रही थी।[५८] जाबालि के आश्रम में भी महाभारत का पाठ होता था।[५९] महाभारत की लोकप्रियता इसी बात से आँकी जा सकती है कि भारवि ने किरातार्जुनीयम तथा माघ ने शिशुपालवध जैसे कालजयी महाकाव्यों की रचना का आधार महाभारत से लिया है। महाभारत के सभापर्व के ३३वे से ४५वें तक कुल तेरह अध्यायों में शिशुपालवध की कथा प्राप्त होती है।[६०] महाकवि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य की रचना महाभारतीय कथा के आधार पर की है।इसी प्रकार महाकवि भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीयम की कथा का मूल स्रोत महाभारत है।[६०] इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए की गयी अर्जुन की तपस्या को आधार बनाकर कवि ने १८ सर्गों के महाकव्य की रचना की है। उपर्युक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि माघ के युग में महाभारत व रामायण महाकाव्य अत्यधिक लोकप्रिय थे।

माघ युगीन समाज में पुराणों का भी प्रमुख स्थान था। पुस्तकवाचक एवं कथावाचक प्राय: पुराण की सामग्री ही प्रयोग में लाते थे। महाकवि माघ अष्टादश महापुराण, उपपुराण आदि पुराणेतिहास ग्रन्थों के भी मर्मज्ञ थे, ऐसा उनके महाकाव्य के अवलोकन से स्पष्ट है। उनके महाकाव्य में पौराणिक कथाओं का पग-पग पर दर्शन होता है। महाकाव्य के २० सर्गों में लगभग छिहत्तर पौराणिक कथाओं का समावेश है। उनका नारद के लिए चिरन्तनों मुनि:, 'हिरण्यगर्भांगभू', बलराम के लिए सीरपाणि 'रेवती जानि', 'भूसलपाणि, राहु के लिए 'सैहिकेय' सूर्य के लिए 'अनूरुसारथि' श्रीकृष्ण के लिए युरद्विष आदि शब्दों का

प्रयोग पौराणिक आख्यानों की ओर संकेत करता है। ७वीं शती में पुराणों का अध्ययन जनमानस में लोकप्रिय था इसके प्रमाण अन्य साक्ष्यों से भी प्राप्त होते हैं। पुराणों का पाठ साधु-सन्यासी एवं गृहस्थ समान रुप से करते थे। हर्षचरित में उल्लेख है कि जब बाण महाराज हर्ष के दरबार से लौटकर सोन नदी के तट पर स्थिति अपने गॉव को पास गया तो उसने सुदृष्टि नामक कथावाचक को पवन प्रोक्त नामक एक पुराण की हस्तलिखित प्रति को गाकर पढ़ते हुए सुना।[६२] पवन प्रोक्त से तात्पर्य संभवतः वायु पुराण से है।

यद्यपि कालिदास का आविर्भाव दो शती पूर्व हुआ था[६३], लेकिन माघ युगीन साहित्यिक संसार में उनका नाम सर्वाधिक सम्मान से लिया जाता था। कालिदास की कविता का प्रभाव माघके कई वर्णनों पर स्पष्टतः परिलक्षित होता है। शिशुपालवध के ग्यारहवें व तेरहवें सर्ग पर कालिदास का प्रभाव दिखायी पड़ता है। माघ को प्रभात वर्णन की प्रेरणा कालिदास के रघुवंश से मिली है। कालिदास का प्रभात वर्णन संक्षिप्त (१० श्लोक) है किन्तु मार्मिक है, जब कि माघ का प्रभात वर्णन विस्तृत (६७ श्लोकों) परन्तु अलंकृत है। रघुवंश में घोड़े जागकर सामने पड़ी सैन्धव शिला को मुँह की भाप से मलिन बनाते हैं, तो शिशुपालवध में घोड़ा आधी आँखें बन्द कर, थोड़ी-थोड़ी नींद का अनुभव करता हुआ, नथना हिलाता हुआ चंचल ओठों से सामने पड़ी घास को खाने की इच्छा करता है।[६४] त्रयोदश सर्ग का पुर सुन्दरियों का वर्णन कुमार संभव और रघुवंश के सप्तम सर्ग में शिव तथा अज को देखने के लिए लालायित स्त्रियों के वर्णन से निश्चित रुप से प्रभावित है।[६५] माघ के अतिरिक्त ७वीं शती के ही वाण ने अपने हर्षचरित में कालिदास की काव्य प्रतिभा की प्रशंसा की है।[६६] माघ ने वात्स्यायन के कामसूत्र का भी उल्लेख किया है[६७], जिससे पता चलता है कि यह भी एक लोकप्रिय ग्रन्थ था। इस युग में नाटक के क्षेत्र में भास का अत्यधिक उच्च स्थान था। नाटक एक विधा के रुप में अत्यधिक प्रतिष्ठित था। बाण ने भास की हर्षचरित में अत्यधिक प्रशंसा की हैं। बाण के अनुसार भास ने देव मन्दिरों के समान अपने नाटकों से लोक में ख्याति प्राप्त की जिनका आरम्भ सुत्रधार करता है, जिनमें पात्रों की भूमिकाएँ और सहायक कथाएँ रहती है।[६८] माघ को नाट्य शास्त्र विधा में पर्याप्त प्रवीणता हासिल थी। शिशुपालवध में नाट्य शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उनके नाट्य शास्त्र संबंधी ज्ञान का परिचायक है।[६९] भास के समय के विषय में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कतिपय विद्वानों के अनुसार १९१२-१३ के लगभग त्रिवेंद्रम में गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्त' आदि जिन तेरह नाटकों को प्रकाशित कराया, वास्तव में वह भास के नाटकों के संक्षिप्त संस्करण है जो

काँची के राजा नरसिंह वर्मा द्वितीय उपनाम राज सिंह (६८०-७००) के दरबार में अभिनयार्थ तैयार कराये गये थे।[७०]

किरातार्जुनीयम के रचयिता महाकवि भारवि के जीवन वृत्त व काल के विषय में संस्कृत के अन्य कवियों के समान विवाद है। कुछ किंवदन्तियाँ भारवि को भोज के साथ जोड़ देती हैं तो कुछ के अनुसार भारवि दण्डी के पितामह या प्रपितामह थे। भारवि का उल्लेख ऐहोल शिलालेख में मिलता है जो ६३४ ई० में उत्कीर्ण हुआ था।[७१] इसके अतिरिक्त भारवि के किरातार्जुनीयम का उद्धरण वामन दतथा जयादित्य की कशिका वृत्ति में भी मिलता है। जिसका समय ६५० ई० के आस-पास माना जाता है।[७२]भारवि कालिदास से प्रभावित हैं तथा माघ भारवि से प्रभावित रहे हैं। अत: भारवि का काल छठी शती के मध्य या उत्तरार्द्ध में रख सकते हैं। किरातार्जुनीय के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि संभवत: भारवि किसी राजा के दरबार में रहे होंगे। अवन्ति सुन्दरी कथा के अनुसार वे पुलकेशी द्वितीय के छोटे भाई विष्णुवर्धन के सभा पण्डित थे।[७३] इस उल्लेख की प्रामाणिकता संदिग्ध है। बाणभट्ट ने भारवि का उल्लेख संभवत: इसलिए नहीं किया होगा क्योंकि उनके समय तक संभवत: भारवि की कवि के रुप में इतनी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि न हो पाई हो।

माघ काव्य और भारवि काव्य की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि माघ ने भारवि को आदर्श मानकर शिशुपालवध की रचना की है। दोनों महाकाव्यों का कथानक महाभारत से लिया गया है। भारवि शिव भक्त है इसलिए उन्होंने शिव महिमा का गुणगान किया है तो माघ विष्णु भक्त है इसलिए उन्होंने कृष्ण के कथानक को शिशुपालवध का आधार बनाया है। दोनों महाकाव्यों का प्रारम्भ 'श्री' से होता है। भारवि प्रत्येक सर्ग के अन्त में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग करते हैं अत: वह लक्ष्म्यन्त कहलाता है। माघ प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्री शब्द का प्रयोग करते हैं अत: व श्रयन्त कहलाता है।[७४] शिशुपालवध प्रथम सर्ग में नारद श्रीकृष्ण के पास इन्द्र का सन्देश लाते हैं, तो किरातार्जुनीय में वनेचर युधिष्ठिर को दुर्योधन का समाचार देता है।[७५] शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण बलराम व उद्धव के साथ मन्त्रणा करते हैं, तो किरातर्जुनीय में युधिष्ठिर भीम के साथ राजनीति विषयक मन्त्रणा करते है।दूसरे सर्ग की राजनीतिक चर्चा में माघ ने राजनीतिक सिद्धान्तों का अधिक प्रयोग किया है। माघ के राजनीतिक चिन्तन का आधार शुक्रनीति तथा

कामन्दकीय नीतिसार है जबकि भारवि ने राजनीतिक परिचर्चा में युक्तियों का अधिक सहारा लिया है। इसका कारण संभवतः यह रहा हो कि माघ अपने को भारवि से सैद्धान्तिक शास्त्रीय ज्ञान में श्रेष्ठ दिखाना चाहते रहे हों। माघ का राजनीतिक वाद विवाद शास्त्रीय है तो भारवि का व्यवहारिक।

इसके अतिरिक्त शिशुपालवध का रैवतक वर्णन, ऋतुवर्णन, तथा वन विहारादि वर्णन भारवि के किरातार्जुनीय के चौथे से लेकर नवें सर्ग तक के वर्णन से प्रभावित है। शिशुपालवध के उन्नीसवें सर्ग का युद्ध वर्णन चित्रकाव्य की दृष्टि से किरातार्जुनीय के पन्द्रहवें सर्ग से प्रभावित है। माघ के सेना प्रयाण तथा प्रभात वर्णन के सर्ग उसके अपने मौलिक है। माघ की कलात्मक सजावट, कल्पना तथा शब्दों का चुनाव भारवि से कहीं बढ़कर है।[७६]

बाण ने हर्षचरित में लोकप्रिय काव्य ग्रंथों में प्रवरसेन कृत प्राकृत भाषा के सेतुबन्ध नामक काव्य ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[७७] संस्कृत साहित्य के विकास काल के अन्तिम दिनों में संस्कृत साहित्य के केन्द्र वल्लभी तथा कान्यकुब्ज थे। कनिवर भट्टि वलभी के राजाओं के आश्रित थे।[७८] भट्टि काव्य (रावणवध) का आधार रामायण है। भट्टि ने अपने काव्य के अन्त में अपने आश्रयदाता राजा का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि भट्टि काव्य की रचना राजा श्रीधरसेन की राजधानी वलभी में की गयी थी। राजा श्रीधरसेन प्रजा का कल्याण करने वाले हैं, अतः उनकी कीर्ति प्रसारित हो। लेखों से पता चलता है कि वलभी में श्रीधरसेन नाम वाले चार राजा हों चुके हैं। श्री धरसेन प्रथम का काल ५०० ई० के लगभग है तो श्रीधरसेन चतुर्थ की मृत्यु ६४१ ई० के लगभग हुयी है।[७९] साधारणतः भट्टि का समय ७वीं शती का पूर्वाद्ध माना जाता है। बाण माघ से एक पीढ़ी पहले हुए तो भट्टि को बाण से एक पीढ़ी पूर्व का माना जा सकता है। भट्टि ने रामचन्द्र के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की रामायण की कथा को २२ सर्गों के काव्य में निबद्ध किया है। भट्टि प्रकाण्ड पण्डित हैं उनके काम में वैयाकरण तथा अलंकारों का विद्वतापूर्ण समन्वय है। भट्टि काव्य का भावपक्ष कुछ कमजोर व शुष्क है जब कि कला पक्ष अत्यधिक मजबूत। भट्टि जहाँ कहीं भी व्याकरण-पांडित्य का मोह छोड़ते हैं वहाँ उनका कवि हृदय मुखरित होता है। भट्टि काव्य के द्वितीय सर्ग का वन वर्णन तथा एकदश सर्ग का प्रभात वर्णन सहृदय पाठकों भी आकर्षित करते हैं। दण्डी का काव्यादर्श और भामह का काव्यालंकार ये दोनों ही काव्य शास्त्र के महानतम ग्रंथ हैं, परन्तु काव्यशास्त्र के क्षेत्र में

भट्टि ने ही सर्वप्रथम अपनी लेखनी चलाई। उसने अपने काव्य रावण-वध का एक पूरा सर्ग काव्यालंकारों की सोदाहरण व्याख्या में लगाया है।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध की रचना में भट्टि से भी प्रेरणा प्राप्त की है। भट्टि के वैयाकरण का प्रभाव माघ की रचना में देखा जा सकता है।[८०] अनेक स्थानों पर माघ ने भट्टि के भाव को भी लिया है।[८१]

माघ के समकालीन अन्य अनेक कवि व लेखक हुए जिनका उल्लेख रुचि वैपरीत्य के कारण शिशुपालवध या अन्य समकालीन साहित्य में न हो पाया हो यथा सबन्धु, दण्डी आदि। परन्तु माघ युगीन साहित्य की विशेषताएँ इन साहित्यकारों के उल्लेख के अभाव में अधूरी हैं।

संस्कृत गद्य काव्य की शैली में वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु का नाम अत्यधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु इनकी तिथि के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सामान्यतः सुबन्धु का समय छठी शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। बाण ने हर्षचरित में श्लेष के द्वारा सुबन्धु का संकेत किया है[८२], और कादम्बरी में भी 'अतिद्वयी कथा' पद से टीकाकार भानु चन्द्र-सिद्धचन्द्र ने 'गुणाढ्य की बृहत्कथा और सुबन्धु की वासवदत्ता से उत्कृष्ट कथा' यह अर्थ लिया है।[८३] पिटर्सन बाण के उपर्युक्त संकेतों में सुबन्धु का संकेत नहीं मानते हैं।[८४] ऐसा प्रतीत होता है कि बाण को सुबन्धु की कृति का पूरा पता था तथा बाण के बाद वाक्पतिराज ने सुबन्धु का स्पष्टतः नामोल्लेख किया है। संभव है सुबन्धु दण्डी और बाण एक ही काल में कुछ वर्षों के हेरफेर में उदित हुए हों। ये तीनों व्यक्ति ५५० ई० से ६५० ई० के बीच के माने जा सकते हैं। इनमें भी सुबन्धु क्रम की दृष्टि से सबसे बड़े जान पड़ते हैं, दण्डी मध्य में तथा बाण उनसे भी छोटे हैं। सुबन्धु की कृति वासवदत्ता का संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध उदयन-वासवदत्त कथा से कोई सारोकार नहीं है, केवल नाम साम्य के। सुबन्धु चमत्कारवादी कवि हैं, अलंकारों का प्रयोग केवल अलंकार के लिए ही करते हैं। सुबन्धु की कथा में विषय की अवहेलना करते हुए अभिव्यंजना पक्ष को आवश्यकता से अधिक बढ़ाना अखटता है। कृति का अधिकांश भाग कलात्मक वर्णनों से भरा है जिनके द्वारा वह अपने पाण्डित्य व 'प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्ध' लिखने की क्षमता का प्रदर्शन करता है। सुबन्धु ने प्रकृति वर्णन के उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किये हैं।

संस्कृत के गद्य लेखकों में दण्डी का नाम अत्यधिक सम्मान से लिया जाता है। दण्डी की लेखन शैली अत्यधिक अलंकृत कृत्रिम गद्य शैली तथा स्वाभाविक गद्य शैली के मध्य की शैली है। परम्परा अनुसार दण्डी ने तीन रचनाएँ लिखी थी।[८५] इन तीन रचनाओं में एक दशकुमार चरित हैं, दूसरी काव्यादर्श है परन्तु तीसरी कृति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। पिशेल के मतानुसार दण्डी की तीसरी कृति मृच्छकटिक है, जो शूद्रक की कृति के रुप में विख्यात हैं।[८६] पिशेल महोदय के मत का आधार मृच्छकटिक व दशकुमार चरित की कथावस्तु का विषय साम्य है। परन्तु यह साक्ष्य दण्डी को मृच्छकटिक का रचयिता घोषित करने हेतु पर्याप्त नहीं है। दण्डी की तीसरी कृति का संकेत मद्रास से मिले दो हस्त लेखों से मिलता है। एक लेख गद्य में है तथा दूसरू पद्य में। इन साक्ष्यों के आधार पर 'अवन्तिसुन्दरी कथा' दण्डी की तीसरी कृति मानी जाती है।[८७]

दण्डी की तिथि के विषय में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद हैं। डॉ० कीथ के मतानुसार दण्डी सुबन्धु से भी पुराने हैं। दशकुमारचरित में वर्णित सामाजिक स्थिति हर्षवर्धन के पूर्व की भारत की स्थिति का संकेत देती है।[८८] दण्डी निश्चित रुप से बाण से पुराने हैं पर २५-३० वर्षो से अधिक नहीं। सामान्यत: आधुनिक विद्वान सुबन्धु, दण्डी और बाण को ५५० ई० से लेकर ६५० ई० के मध्य रखते हैं जिसमें सुबन्धु सबसे पहले, बाण अन्त में तथा दण्डी मध्य में अवस्थित है।

दण्डी का दशकुमारचरित यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित है जो छठी-सातवीं शती के भारतीय समाज का चित्र रखने में पूर्णत: समर्थ है।

मध्य युगीन (७वीं शती) विद्वानों और साहित्यकारों में सम्राट हर्ष का नाम सम्मान से लिया जाता है। वह विद्वानों को उदारतापूर्वक आश्रय देने के अतिरिक्त स्वयं भी उच्च कोटि के विद्वान थे। सम्राट हर्ष के दरबार का सर्वाधिक प्रसिद्ध सदस्य महान ग्रंथों (कादम्बरी, हर्षचरित) का रचयिता बाणभट्ट था। महाकवि बाण संस्कृत साहित्य के उन विरले साहित्यकारों में है जिसके जीवन के विषय में हमारे पास निश्चित जानकारी है। बाण ने हर्षचरित के प्रथम तीन उच्छ्वासों तथा कादम्बरी की प्रस्तावना के पद्यों में अपना परिचय दिया हैं ये वत्स गोत्र के ब्राह्मण थे, तथा बाण के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था।[८९] माता-पिता के शीघ्र देहान्त के बाद बाण स्वतुंत्र प्रकृति के हो गये तथा आवारा जीवन बिताने लगे। बाण

के अच्छे-बुरे सभी प्रकार के मित्र थे, परन्तु कुछ वर्षों बाण ने घर लौटकर विद्याध्ययन किया[९०], प्रारम्भ में बाण को हर्ष की राजसभा में कोई विशेष आदर-सम्मान नहीं मिला परन्तु बाद में वे हर्ष के स्नेहभाजन व कृपापात्र बने।[९१]

अत: बाण का समय निश्चित रुप से ७वीं शती का पूर्वाध हैं। हर्ष के राजदरबार में बाण के अतिरिक्त मयूर[९२] और मातंग दिवाकर[९३] नामक दो अन्य कवियों का उल्लेख मिलता है। मयूर ने सूर्य शतक की रचना की तो 'भक्तामरस्तोत्र' का रचयिता मातंग दिवाकर को माना जाता है।

बाण की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं हर्षचरित नामक आख्यायिका, कादम्बरी कथा तथा चण्डी शतक ! चण्डी शतक में बाण ने दुर्गा की स्तुति में सौ छन्दों की रचना की हैं। बाण के उपलब्ध ग्रन्थों में बाण की ख्याति का आधार हर्षचरित तथा कादम्बरी है। हर्षचरित आठ उच्छवासों में विभक्त आख्यायिका है, जिसके द्वारा सम्राट हर्षवर्धन, जो कि बाण के आश्रयदाता भी थे, के जीवन व उपलब्धियों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें तथ्य व कल्पना दोनों के सम्मिश्रण की शैली अपनायी गयी है। हर्षचरित की वास्तविक कथा चतुर्थ उच्छवास से प्रारम्भ होती है। अनेक विद्वानों का मानना है कि बाण ने हर्षचरित को तार्किक परिणति ने देकर एक अनिश्चित स्थान पर अधूरा छोड़ दिया है[९४], परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं है।

कादम्बरी की कथा पूर्णत: कल्पित है। मृत्यु के कारण बाण इसे पूरा न कर पाये और उनके पुत्र भूषण भट्ट (अथवा पुलिंद) ने इसके शेष भाग को पूर्ण किया।[९५] कादम्बरी इसीलिए दो भागों में विभक्त है। पहला हिस्सा बाण भट्ट का है तथा उत्तरार्द्ध उनके पुत्र का जिसकी अलग से पद्यमय प्रस्तावना है।

गुप्तों के पतन के पश्चात वर्धन साम्राज्य ने उत्तरी भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया। ७वीं शती के प्रथम दशक में सम्राट हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) थानेश्वर की गद्‌दी पर विषम परिस्थितियों में बैठा, तदनन्तर वह कन्नौज का शासक बना। हर्ष जहाँ वीर था, वहीं स्वयं विद्वान था, कवि था और साहित्यकारों एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। इतिहास के पृष्ठों पर वह एक दानशील सहिष्णु सम्राट है जो सभी धर्म व सम्प्रदायों का सम्मान करता था। वह राजकीय भूमि से होने वाली आय का चौथा हिस्सा उत्कृष्ट साहित्य के संरक्षण हेतु खर्च करता था।[९६] बाण, मयूर, मातंग दिवाकर आदि उनके दरबार के प्रमुख लेखक थे। राजकीय संरक्षण प्राप्त विद्वानों के अतिरिक्त भी अनेक लेखक दार्शनिक एवं

कवि समय-समय पर अपनी सेवाएँ राज्य को अर्पित किया करते थे, और पुरस्कार में मुद्राएँ प्राप्त करते थे।

हर्ष की प्रसिद्धि का एक प्रमुख कारण उसके दरबारी कवि बाण भट्ट द्वारा रचित हर्षचरित तथा युआन च्वाँग द्वारा छोड़े गये यात्रा विवरण है। परन्तु हर्ष की प्रसिद्धि किसी दरबारी कवि की झूठी प्रशंसा की मोहताज नहीं है, वह स्वयं उच्चकोटि का साहित्यकार था। सामान्यत: यह स्वीकार किया जाता है कि हर्ष 'नागानन्द' 'रत्नावली' तथा 'प्रियदर्शिता' नामक तीन उच्च कोटि के नाटक ग्रन्थों के रचियता है। कुछ टीकाकारों ने हर्ष को एक लेखक के रूप में सन्देह की दृष्टि से देखा है। ११वीं शती के कश्मीरी लेखक मम्मट ने अपने ग्रंथ काव्य प्रकाश के प्रारंभिक श्लोक में उन लाभों की गणना करते हैं जो काव्य करने से प्राप्त हो सकते हैं।[९७] फिर इस श्लोक की व्याख्या करते हुए आगे कहते हैं कि काव्य रचना से जैसे कालिदास को प्रसिद्धि एवं धावक तथा अन्य लोगों को श्री हर्ष देव से प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त हुयी।[९८] उपरोक्त पंक्तियों के आधार पर कतिपय विद्वानों ने यह व्याख्या की है कि धावक ने उपरोक्त तीनों रचनाओं को लिखकर हर्ष का नाम दिया था तथा प्रत्युत्तर में अतुल सम्पत्ति प्राप्त की थी। इसी प्रकार श्री हर्ष द्वारा बाण को प्रचुर धन देने का संकेत तो 'उदयनसुन्दरी कथा' के रचयिता सोहढ़ल ने भी किया है।[९९] हाल और व्यूलर आदि विद्वान इन तीनों नाटकों का रचनाकार बाण को मानते हैं जब कि पिशेल उन्हें हर्ष के समकालीन धावक का मानते है इसके विपरीत कावेल इन नाटकों को एक ही लेखक का लिखा हुआ मानने से इन्कार करता है। उसके अनुसार रत्नावली का लेखक बाण है, नागानन्द का लेखक धावक और प्रियदर्शिका का रचयिता कोई अन्य अज्ञात लेखक।[१००]

उपरोक्त टिप्पणियों के विपरीत अन्य अनेक विद्वानों का निश्चित मत है कि ये तीनों रचनाएँ महाराज श्री हर्ष की ही है। हर्ष स्वयं एक कवि व विद्वान था इसमें कोई सन्देह नहीं है क्योंकि बाण ने अपने 'हर्षचरित' में कम से कम दो बार उनकी पद्य रचनाओं की ओर संकेत किया है।[१०१] इसके अतिरिक्त इत्सिंग नामक चीनी बौद्ध यात्री जो सातवीं शती के अंतिम चरण (६७१-६९५ ई०) में भारत आया था, साफ-साफ लिखता है कि राजा शिलादित्य साहित्य का प्रेमी था, उसने स्वयं बोधिसत्व जीमूतवाहन—जिन्होंने एक नाग को बचाने के लिए अपना बलिदान कर दिया था, की कथा को पद्यबद्ध किया था। उसने रंगमंच पर नृत्य

तथा नाटक कला के साथ उसका अभिनय कराया था।[१०२] यह कथन स्पष्टतः नागानन्द नाटक की ओर संकेत करता है। इस संदर्भ में 'कूट्टनीमत' का साक्ष्य भी महत्वपूर्ण है। 'कुट्टनीमत' का लेखक दामोदर गुप्त कश्मीर के राजा जयापीड (८०० ई०) के आश्रय में रहता था। उसने कुट्टनीमत में न सिर्फ रत्नावली का उल्लेख किया है, बल्कि यह भी संकेत दिया है कि इसका रचयिता कोई राजा था यद्यपि उसने इस राजा का नाम नहीं दिया है।[१०३] उपर्युक्त बाह्य साक्ष्यों से स्पष्ट है कि राजा श्री हर्ष एक विद्वान कवि था तथा उसी ने तीनों नाटिकाओं की रचना की थी।

तीनों रचनओं (रत्नावली, नागानन्द, प्रियदर्शिका) के आंतरिक साक्ष्य भी महत्वपूर्ण है। तीनों ग्रन्थों की प्रस्तावना में सूत्रधार राजा हर्ष को उनका रचयिता बताता है। इसके अतिरिक्त एक श्लोक तीनों नाटकों में पाया जाता है।[१०४] 'प्रियदर्शिका' के तीसरे अंक का तीसरा श्लोक 'नागानंद' के चौथे अंक का प्रथम श्लोक है। इसी प्रकार के श्लोकों के अनेक उदाहरण है। नाटकों की शैली, मुख्य विचार, तथा परिस्थितियों की समानता से भी यही आभास होता है कि इन तीनों ग्रन्थों का रचनाकार एक ही व्यक्ति है। इन परिस्थितियों में इन नाटिकाओं को तब तक श्री हर्ष को ही मानना उचित होगा जब तक कि कोई अन्य अकाट्य प्रमाण इन्हें किसी अन्य विद्वान या विद्वानों की रचना सिद्ध नहीं कर देता।

प्रियदर्शिका नाटिका चार अंकों की छोटी सी नाटिका है, जिसकी रचना श्रीहर्ष ने संभवतः उदयन की कथा को लेकर की है। उदयन की कथा कथा सरित्सागर[१०५] तथा वृहत्कथा मञ्जरी में मिलती है।[१०६] रत्नावली नाटिका भी चार अंङ्कों की नाटिका है जिसकी कथावस्तु अधिक चुस्त व गतिशील है। नागानंद की कथावस्तु थोड़ी अलग है तथा यह पाँच अंङ्कों की नाटिका है। इसमें पितृभक्त जीमूतवाहन के चरित्र का चित्रण बहुत सुन्दरता से किया गया है। इस नाटक में प्रारम्भ में महात्मा बुद्ध की स्तुति की गयी है[१०७], परन्तु नाटक में पौराणिक प्रभाव ही अधिक है। कीथ महोदय का विचार है कि माघ को हर्ष के नागानन्द नाटिका का ज्ञान था।[१०८] हर्ष के नाटकों से स्पष्ट है कि वह विद्वानों का मात्र संरक्षक ही नहीं अपितु उच्च कोटि का विद्वान भी है। उसकी शैली सरल तथा कोमल है तथा उसमें कृत्रिमता का अभाव है। दो अन्य संस्कृत काव्य जिनकी विषय वस्तु बौद्ध धर्म से प्रेरित है, हर्ष के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें से एक 'सुप्रभस्तोत्र' हैं, जिसमें २४ श्लोकों में बुद्धदेव की स्तुति की गयी हैं। दूसरे काव्य का नाम 'अष्ट महा श्री चैत्य संस्कृत

स्तोत्र' है। उसमें आठ महान चैत्यों का गुणगान पाँच श्लोकों में किया गया है।[१०९] किन्तु इस मत का समर्थन करने के लिए कोई निश्चित प्रमाण हमारे पास नहीं है।

इस युग का एक अन्य प्रमुख नाटककार भट्ट नारायण है। भट्ट नारायण की एक मात्र उपलब्ध कृति बेणीसंहार है। शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार बेणीसंहार का नाटकों में शीर्ष स्थान है। भट्ट नारायण के जीवन के सम्बन्ध में अन्य संस्कृत विद्वानों की तरह मतभेद है। भट्ट नारायण के विषय में इतना तो निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि उनका उदय ८वीं शती के पहले हुआ होगा क्यों ध्वन्यालोककार के रचयिता आनन्दवर्धन एवं सूत्र वृत्तिकार वामन ने इनके पद्यों को अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है।[११०] किंवदन्तियों के अनुसार भट्ट नारायण उन ब्राह्मणों में से एक थे जिन्हें बंगाल के राजा आदि सूर ने कान्यकुब्ज से बुलाया था। आदि सूर संभवतः माधव गुप्त का पुत्र था जिसने हर्ष की अधीनता से स्वतंत्र होकर आदि सूर आदित्य सेन के नाम से मगध में स्वतंत्र सत्ता स्थापित की थी। इस आधार पर भट्टनारायण का समय ७वीं शती का उत्तरार्ध माना जा सकता है, क्योंकि आदि सूर आदित्य सेन ६७२ ई० तक विद्यमान था।[१११] बेणीसंहार में कवि के जीवन के विषय में कोई विशिष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है, हाँ इतना, अवश्य पता चलता है कि वे 'मृगराजलक्ष्मा' की उपाधि से प्रसिद्ध थे।[११२]

बेणीसंहार की कथा वस्तु का आधार महाभारत है और जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है कि यह नाटक द्रौपदी की खुली बेणी के संवारे जाने की घटना से संबद्ध है। बेणीसंहार छः अंङ्कों में विभक्त वीर रस प्रधान नाटक हैं जिसमें भीम द्वारा द्रौपदी के अपमान करने वाले दुःशासन से बदला लेने की कहानी पर आधारित है।

'रामाभ्युदय' इस युग का अन्य एक नाटक है जिसकी रचना यशोवर्मन ने की थी।[११३]दुर्भाग्यवश अभी तक इसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुयी है परन्तु आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में इसका उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त पल्लव नरेश महेन्द्र वर्मन (६००-६३० ई०) ने मत्त विलास प्रहसन लिखा है।[११४] जिसमें शैव और बौद्ध सन्यासियों का मजाक उड़ाया गया है।

माघ के युग में हिन्दू दर्शन का प्रभाव बढ़ रहा था परन्तु इस युग में बौद्ध दर्शन का विशेष उत्कर्ष सम्राट हर्ष एवं पाल राजाओं के संरक्षण में हुआ। न्याय, सांख्य, लोकायत, वैशेषिक आदि दर्शन पद्धतियों

का लोग अध्ययन करते थे। शिशुपालवध के प्रथम सर्ग में माघ ने नारद द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करते समय इस दार्शनिक सिद्धान्त की बातें बतायी है।[११५] इसमें श्रीकृष्ण भगवान को क्रिया शून्य कहा गया है, सांख्यमत ईश्वर को क्रिया रहित मानते हैं। दूसरे सर्ग के उनसठवें श्लोक में भी सांख्य मत संबंधी वाले बतायी गयी हैं। इसी प्रकार शिशुपालवध के चौदहवें सर्ग में इस दर्शन के सिद्धान्त प्राप्त होते है।[११६] इस श्लोक में संकेत है कि पुरुष (आत्मा) कोई कार्य नहीं करता किन्तु कर्ती बुद्धि के साथ अभेद मानने से तथा उसकी वृत्तियों को अपनी वृत्तियाँ मानने से ही उसे (आत्मा) सुख : दुःखादि का अनुभव होता है। माघ के समकालीन बाण और युआन च्वाँग ने भी कपिल के सांख्य दर्शन का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है। महाराज प्रभाकर वर्द्धन की मृत्यु से उनके कुछ निजी सेवक, मित्र तथा मंत्री इतना अधिक दुःखी हुए कि संसार को त्यागकर पहाड़ों में चले गये जहाँ उन्होंने कषाय वस्त्र धारण कर कपिल के दर्शन का अध्ययन किया।[११७] बाण ने कादम्बरी में उल्लेख किया है कि उज्जयिनी में सांख्य दर्शन के श्रेष्ठ पुरुष रहते थे।[११८] इसी प्रकार वर्णन है कि युआन च्वाँग ने नालन्दा में लोकायत सम्प्रदाय के दार्शनिक से विवाद करते समय सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का सविस्तार खण्डन किया था।[११९] वैशेषिक मत के प्रधान ग्रन्थ सप्तपदार्थ का उसने चीनी भाषा में अनुवाद किया था। योग सिद्धान्तों का भी इस युग में अध्ययन किया जाता था। रैवतक पर्वत प्रसंग में महाकवि ने चतुर्थ सर्ग में योग शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रवीणता से उल्लेख किया है।[१२०] इस श्लोक में प्रयुक्त 'मैल्यादि', 'चित्त परिकर्म', सबीजयोत्र 'क्लेश' आदि योग शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली है। इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग के अन्य श्लोकों में भी योग शास्त्र के सिद्धान्तों से सम्बन्धित बातें मिलती है।[१२१] पूर्व मीमांसा की चर्चा भी राजसूय यज्ञ के प्रसंग में की गयी है। शिशुपालवध के चतुर्दश सर्ग के २० वें श्लोक में याज्या, अनुवाक्या और ऋक् द्वारा तथा होता और प्रशास्ता द्वारा यज्ञ की बात कही गयी है तथा पूर्व मीमांसा के पारिभाषिक शब्द द्रव्य, देवता आदि की चर्चा हुयी है।[१२२] इसी प्रकार उवन्त सर्ग के २२वें श्लोक में कुशमय करधनी पहनी हुई यजमान पत्नी द्वारा सम्पाद्य, आज्यावेक्षण आहवनीय आदि बातें कहीं गयी हैं।[१२३] यह विवेचन शिशुपालवध के रचयिता के पूर्व मीमांसा विषयक ज्ञान को स्पष्ट करती है। बाण के पिता, भाई और चाचा मीमांसा के पण्डित थे।[१२४]

शिशुपालवध में उत्तर मीमांसा (वेदान्त) का प्रतिपादन अनेक स्थलों पर हुआ है। महाकाव्य के प्रथम सर्ग के ३२वें श्लोक में ब्रह्म के रुप में श्री कृष्ण को बताया गया है।[१२५] इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग

के ६५वें श्लोक में श्री कृष्ण को सर्वलोक-व्यापि और सृष्टि का मूल कारण बताकर परंब्रह्म का संकेत किया है ।[१२६] महाकवि माघ ने आस्तिक दर्शनों के अतिरिक्त नास्तिक दर्शनों यथा बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायों का भी उल्लेख किया है । उन्होंने इन दार्शनिक सम्प्रदायों का भी पूर्ण अध्ययन किया था । शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग के अट्ठाइसवें श्लोक में माघ ने बौद्ध मत की स्थूल बातों के साथ राजनीति की सूक्ष्म बातों की चर्चा की है ।[१२७]

न्याय शास्त्र (हेतु विद्या) इस युग में गम्भीर अध्ययन के लिए अनिवार्य था । भारतीय बौद्धों की शिक्षा के लिए जो पंच विद्याएँ निर्धारित थी, इनमें से यह हेतु विद्या भी थी । इसी की सहायता से वे अपने ब्राह्मण मतावलम्बियों को पराजित कर सकते थे । हेतु विद्या पाठ्यक्रम में दिङ्नाग के आठ शास्त्र प्रचलित थे ।[१२८] न्याय शास्त्र पर ब्राह्मणों के भी अनेक ग्रन्थ थे । उद्योतकर पाशुपत सम्प्रदाय का अनुयायी था । उसने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्याय वार्तिक' लिखा, जिसमें उसने न्याय सूत्र तथा न्याय भाष्य की व्याख्या की है । उद्योतकर का काल ७वीं शती का पूर्वार्द्ध के आस-पास माना जाता है ।[१२९] उद्योतकर के तर्कों के विरुद्ध धर्मपाल के शिष्य धर्मकीर्ति ने अपना ग्रंथ न्याय बिन्दु लिखा । कीथ महोदय के अनुसार धर्मकीर्ति संभवत: उद्योतकर का समकालीन था ।[१३०]

७वीं शती का काल भारत में बौद्ध धर्म के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इस युग में बौद्ध धर्म को श्री हर्ष एवं पाल राजाओं का प्रश्रय मिला, इसी युग में नालन्दा जैसा बौद्ध धर्म एवं दर्शन की शिक्षा देने वाला महान विश्वविद्यालय था तथा शीलभद्र, धर्मपाल एवं युआन च्वाँग जैसे बौद्ध मत के विद्वान थे । परन्तु यह भी सत्य है कि यही वह काल है जब बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म से शंकर एवं कुमारिल के रुप में सबसे बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा था । बौद्ध दर्शन एवं साहित्य प्रबुद्ध जनों के अध्ययन हेतु अनिवार्य था । माघ के शिशुपालवध के अनुशीलन से स्पष्ट है कि माघ बौद्ध मत के सिद्धान्तों में प्रवीण था ।[१३१] बाण के हर्षचरित से पता चलता है कि बौद्ध ग्रंथ अभिधर्म कोष का अध्ययन दिवाकर मित्र के आश्रम में होता था ।[१३२] युआन च्वाँग ने तत्कालीन बौद्ध साहित्य की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है ।[१३३] इसी प्रकार इत्सिंग ने भी तत्कालीन बौद्ध साहित्य का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है ।[१३४]युआन च्वाँग के भारत भ्रमण के समय नालंदा के धर्माध्यक्ष शीलभद्र थे जो कि बौद्ध धर्म के व्याख्याता थे तथा उन्होंने

कई टीकाएँ लिखी । इसी प्रकार शीलभद्र के पूर्व इस पद पर धर्मपाल प्रतिष्ठित थे, जिन्होंने आर्यदेव के शतशास्त्र पर एक टीका लिखी । इनका काल ६०० ई० के आस-पास माना जाता है । इसके अतिरिक्त युआन च्वाँग ने 'प्रज्ञा-पारमिता', 'महाविभाषा', 'अभिधर्मकोष', 'न्यायानुसार तथा आसंग रचित योगाचार के ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया ।[१३५]

छठी-सातवीं शती में साहित्य के अन्य क्षेत्रों की तरह व्याकरण विधा में भी अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ की गयी है । व्याकरण की चान्द्र और जैनेन्द्र पद्धतियों का विकास इसी युग की देन है ।[१३६] चन्द्र गोभी, जो कि बौद्ध मतावलम्बी थे, ने ऐसी संस्कृत व्याकरण पद्धति का विकास किया जो कश्मीर, तिब्बत, नेपाल आदि में लोकप्रिय हुई । इस पद्धति का उल्लेख भर्तृहरि के वाक्य प्रदीप में, मल्लिनाथ के मेघदूतम की टीका में तथा कशिकावृत्ति में मिलता है ।[१३७] इनका काल ६०० ई० के आस-पास माना जाता है । जैनेन्द्र व्याकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी एवं काव्यायन के वर्तिक का अनुसरण करता है । इसका असली लेखक पूज्यपाद देवनन्दी था, जिसने इस ग्रन्थ की रचना संभवतः ६७८ ई० में की थी ।[१३८] भर्तृहरि ने, इत्सिंग के अनुसार पातंजलि के महाभाष्य पर टीका लिखी थी जो कि अब उपलब्ध नहीं है ।[१३९] जयादित्य तथा वामन की 'काशिकावृत्ति' इत्सिंग के भारत भ्रमण के पूर्व लिखी गयी थी । इस पुस्तक का उपयोग चीनी विद्वान संस्कृत का अध्ययन करने हेतु करते थे । इत्सिंग ने लिखा है कि १५ वर्ष की अवस्था हो जाने के बाद विद्यार्थी पाँच वर्ष तक नियमित रुप से उसे पढ़ते थे ।[१४०] इस पुस्तक के प्रथम चार खण्ड जयादित्य ने लिखे थे फिर उसकी मृत्यु के उपरान्त इस पुस्तक को वामन ने पूरा किया था ।[१४१]

संस्कृत लेखन के क्लासिकी युग ने मात्र नाटक या काव्य को ही प्रोत्साहन नहीं दिया बल्कि एक ऐसी चेतना जागृत की जिसका प्रभाव ज्ञान की अन्य विशिष्ट शाखाओं पर भी पड़ा । इस युग में विज्ञान, गणित, खगोल-शास्त्र तथा आयुर्वेद आदि के क्षेत्र में भी विद्वानों ने शोध के द्वारा न सिर्फ ज्ञान अर्जित किया बल्कि उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना भी की । वाराहमिहिर जिसका काल छठी शती माना जाता है ने अपने ग्रंथ 'पंचसिद्धान्तिका' में खगोल विज्ञान सम्बन्धी पाँच ग्रन्थों या सिद्धान्तों का विवरण सुरक्षित रख रखा है । उसकी मृत्यु शक संवत ५०९ (५८७ ई०) में हुई थी, जो कि एक पद में दी गयी उसकी सूचना पर आधारित है, उसने ज्योतिष शास्त्र को तीन शाखाओं यथा तंत्र, होरा, और संहिता में विभाजित किया

था। वाराहमिहिर के ग्रंथों पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट है। वाराहामिहिर के अतिरिक्त ७वीं शती में एक अन्य गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त हुआ जो कि लगभग शिशुपाल वध रचयिता माघ का समकालीन है।ब्रह्मगुप्त भीनमल निवासी जिष्णु का पुत्र था। उसने ब्रह्म सिद्धांत नामक ग्रंथ ६२८ में लिखा वह भिन्नमालाचार्य के नाम से भी विख्यात है।[१४२] उसके अन्य ग्रंथों के नाम खण्ड खाद्य और ध्यानगर्भ है।[१४३]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि माघ का युग संस्कृत साहित्य की दृष्टि से श्रेष्ठ युग था। इसमें साहित्य की सभी विधाओं में उत्कृष्ट सृजनात्मक कार्य हुआ। यद्यपि माघ के समय संस्कृत की अलंकृत शैली के कारण सृजनात्मक कार्य कुछ बोझिल एवं दुरुह हो गये थे तथा उनमें सरसता की कभी भी आ गयी थी। परन्तु इन कमियों के बावजूद इस युग में भारवि व माघ जैसे कवि बाण व श्री हर्ष जैसे रचयिता तथा ब्रह्मपुत्र जैसे महान गणितज्ञ व खगोलशास्त्री हुए। यदि हम यह कहे कि यह युग संस्कृत साहित्य की मौलिक सृजनात्मक प्रतिभा का युग था और उसके बाद के युग में पुनरावृत्ति ही देखने को मिलती है तो अतिश्योक्ति न होगी।

किसी भी राष्ट्र या कालखंड के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए आवश्यक है कि उस राष्ट.अथवा कालखंड के साहित्य एवं कला तथा इन दोनों के अर्न्तसबन्धों पर ध्यान दिया जाए। कला व साहित्य राष्ट. की भावनाओं को सहज अभिव्यक्ति होते हैं। अतीत की अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाने व उसको समझने में कला व साहित्य उस युग के दर्पण की तरह कार्य करते हैं, जिसमें युग की प्रमुख प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है।

माघ युग ७वीं शती का युग है। क्लासिकी युग का पतन हो रहा है परन्तु नवीन के प्रादुर्भाव में अभी थोड़ा विलम्ब है। इस युग की कला का इसलिए कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, अपितु वह गुप्त युग की कला का ही एक रुप है। डॉ० आनन्द कुमार स्वामी का कथन है कि गुप्तकालीन कला की शैली आदिम, उत्कृष्ट, अद्‌भुत रुचिपरक, अलंकार बहुल एवं स्वाभाविक विकास चक्र की चरमोन्नति को प्रकट करती है।[१४४] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कला की अभिव्यक्ति थी। वास्तु, चित्र, संगीत, नृत्य आदि विभिन्न कलाओं में गुप्त युग का सराहनीय प्रतिमान है। गुप्त युग और परवर्ती युग की शिल्पकला और चित्रकला आध्यात्मिकता से युक्त होते हुए भी जीवन के साथ सामंजस्य रखती है। कला का आधारभूत विषय धार्मिक तो अवश्य है, किन्तु विषय प्रतिपादन में आध्यात्मिक भावना, जीवनानुभव तथा तथ्य पूर्ण बातें समाविष्ट

है।[१४५]

गुप्त कला वास्तव में मथुरा कला का विकसित रुप है जिसमें लालित्य और प्रशान्ता है। सामान्यतः यह उस समय के सम्पन्न, विलासपूर्ण तथा सुसंस्कृत राजकीय जीवन को व्यक्त करती है।

स्थापत्य कला :—स्थापत्य कला को हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं (I) स्तूप (II) चैत्य भवन और विहार (III) चौरस छतदार मन्दिर (IV) शिखर युक्त मन्दिर (V) महल, नाट्य गृह तथा घरेलू इमारतें।

अजंता की सोलहवीं तथा सत्रहवीं गुफाओं का निर्माण काल लगभग ५५० ई० का है, जो वास्तव में विहार हैं, जबकि उन्नीसवीं गुफा एक चैत्य हाल है। एहोल का दुर्गा मन्दिर (६०० ई०) चैत्य भवन के खाके पर बना हुआ है।[१४६]

गुप्त काल के हिन्दू मन्दिर की विशेषता यह थी कि वे छोटे-छोटे और चौरस छत से युक्त होते थे। प्रत्येक मन्दिर में एक गर्भग्रह एवं एक छोटा मण्डप होता था। बहुधा वह स्तम्भों से युक्त कमरे या बरामदे से घिरा रहता था जिसका उपयोग एक छतयुक्त प्रदक्षिणापथ के रुप में होता था।[१४७] सांची, भूमरा, ललितपुर, तिगवा, नाचना कुठार में ऐसे मन्दिरों के उदाहरण पाये जाते है।[१४८] दक्षिण में चौरस छत वाला रोचक मन्दिर एहोल के लादखान का है। धीरे-धीरे चौरस छत वाले मन्दिर के स्थान पर शिखरयुक्त मन्दिर बनने लगे उत्तरी शिखर उत्तर गुप्तकाल में दिखायी पड़ने लगता है। भीतरीगाँव के ईंट का मन्दिर ऐसे शिखर का श्रेष्ठ उदाहरण है। शिखर युक्त मन्दिर का उत्कृष्ट उदाहरण लगभग ६०० ई० का ललितपुर के समीप, देवगढ़ का गुप्तकालीन दशावतार मन्दिर है।[१४९]

युआन-च्वाँग के यात्रा विवरण से स्पष्ट है कि बोधगया के महाबोधि मन्दिर का निर्माण छठी या सातवीं शती में हुआ होगा। युआन-च्वाँग के अनुसार ६३७ में जब वह बोधगया गया था उस समय वहाँ एक महाबोधि नामक विशाल बौद्ध मन्दिर विद्यमान था उसने इस मन्दिर का सविस्तार वर्णन किया है। यह मन्दिर १६० फीट से अधिक ऊँचा था और इसके सामने की नींव २० कदम से अधिक थी। मन्दिर ईटों का बना हुआ था, उसमें ताकों की कतारें थीं, जिसमें सोने की मूर्तियाँ बनी थी। उसकी चारों दीवारें मोती की डोरियों तथा अन्य सुन्दर साजों से अलंकृत थी। छत पर सोने की कलई से युक्त ताम्रआमलक

शोभित था ।[१५०]

बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र नालन्दा ७वीं शती में अपनी प्रसिद्धि एवं गरिमा के चरमोत्कर्ष पर था । युआन-च्वाँग की जीवनी लेखक हुई-ली ने सम्पूर्ण नालन्दा का अत्यन्त विशद वर्णन किया है ।[१५१] उत्खनन के फलस्वरुप नालन्दा में अनेक प्राचीन विहार अस्तित्व में आये हैं ।[१५२] इन भग्नावशेषों से स्पष्ट है कि नालन्दा एक समय शिक्षा का विश्वविख्यात केन्द्र रहा होगा तथा हुई-ली का वर्णन सही है ।हर्ष ने नालंदा में पीतल की चद्दरों से आच्छादित एक मठ स्थापित कराया था । वहीं पर मगध के राजा पूर्व वर्मा ने ७वीं शती के प्रारम्भ में बुद्ध की ८० फीट ऊँची भव्य और आकर्षक मूर्ति छः मंजिले मन्दिर में स्थापित करायी थी ।[१५३]

साहित्यिक साक्ष्यों, चितकारियों तथा परवर्ती काल के पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि भारतीय प्रसाद निर्माण कला अत्यन्त विकसित थी । महल एक या दो मंजिलों के खंभेदार कमरों से सम्बन्ध समुदाय होता था ।उसकी छत या तो चौरस या नोकदार होती थी । लकड़ी के खम्भे, उसके शीर्ष तथा कार्निस आदि चित्रकारी तथा उत्कीर्ण मूर्तियों से खूब अलंकृत होते थे ।[१५४] शिशुपालवध के तृतीय सर्ग के तैंतीस से उन्हत्तर श्लोक तक द्वारकापुरी का वर्णन है ।[१५५] इस वर्णन से स्पष्ट है कि मकान कई मंजिलें होते थे[१५६] तथा छत पर जाने हेतु सीढ़ियों की व्यवस्था होती थी ।[१५७] छत पर पानी निकालने के लिए नालियों (Drain Pipe)की भी व्यवस्था थी ।[१५८] मकान की भीतरी दीवारें रत्नजड़ित तथा अत्यधिक चिकनी होती थी ।[१५९] दीवारों पर चित्रकारी का भी उल्लेख मिलता है ।[१६०] अजन्ता की शानदार चित्रकला से स्पष्ट है कि चित्रकला भारत में ७वीं शती में अत्यन्त विकसित अवस्था में थी । ऐसे मकानों का भी उल्लेख है जिनकी सफेद चूने से पुताई की जाती थी ।[१६१]

उत्तर गुप्त कला तथा माघ युगीन ७वीं शती की कला के बीच स्पष्ट विभाजन कर पाना कि कला के कौन-कौन से कार्य उत्तर गुप्त कालीन है और कौन-कौन से कार्य ७वीं शती के हैं, कठिन है । कुमारस्वामी के अनुसार रायपुर जिले में सिरपुर नामक स्थान से प्राप्त ईंटों का बना हुआ मन्दिर ७वीं शती (हर्ष कालीन) का है ।[१६२] इसी प्रकार शाहाबाद जिले में मुंडेश्वरी का अष्टकोण मन्दिर हर्ष के शासन काल का है ।[१६३]

९वीं शती के साक्ष्यों से देखने से पता चलता है कि इस युग में महात्मा बुद्ध तथा हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ राजाओं, सामन्तों एवं भक्तों द्वारा मंदिरों में स्थापित की गयी होंगी, जो कि विदेशी आक्रमण के समय सीावत: नष्ट हो गयी हो ।ये मूर्तियाँ मृख्यत: पत्थर, धातु अथवा मिट्टी की बनी होती थी । मन्दिर मठों तथा अन्य इमारतों की दीवारों में भी मूर्तियाँ दक्षतापूर्वक उत्कीर्ण की जाती थी ।

७वीं शती में भारत के कन्नौज, उज्जैन, वल्लभी, काँची, वाराणसी, वातापीपुर आदि हर्ष के समय प्रधान नगर थे, जो प्राय: सुन्दर और अभिराम मन्दिरों, मठों तथा भवनों से युक्त थे । बाण ने उज्जयिनी नगर का जो वर्णन किया है उससे वहाँ की कलाकारिता का आभास मिलता है । उस नगर में देवताओं के बड़े-बड़े मंदिर थे । देव प्रासादों के ऊपरी भाग पर ऊँचे शिखर बनाये जाते थे जिनका कवि ने उल्लेख किया है (बहुभूमिकदेवकुल) । शिखरों के ऊपर सोने के कलश लगे हुए थे ।[१६४]

वादामी के चालुक्यों, काँची के पल्लवों एवं मन्याखेट के प्रारंभिक राष्ट्रक्रटों के युग की कला को भी हम इसी युग की कला में रख सकते हैं । चालुक्य मन्दिरों के उत्कृष्ट नमूने बादामी, ऐहोल तथा पत्तडकल से प्राप्त होते हैं । "बादामी में पाषाण को काटकर स्तम्भ युक्त मण्डप बनाये गये हैं । इनमें से एक वैष्णव गुफा है जिसके बरामदे में विष्णु की दो रिलीफ मूर्तियाँ—एक अनन्त पर बैठी हुयी तथा दूसरी नरसिंह रुप की प्राप्त होती है । इन गुफाओं की वास्तु तथा उकेरी अत्यन्त उच्चकोटि की है । प्रत्येक चबूतरे पर उड़ते हुए गणों के विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण चित्र अत्यन्त उल्लेखनीय है । गुफाओं की भीतरी दीवारों पर विभिन्न प्रकार की सुन्दर-सुन्दर चित्रकारियाँ प्राप्त होती हैं ।"[१६५]

ऐहोल को 'मन्दिरों का नगर' कहा जाता है और यहाँ कम से कम ७० मन्दिरों के अवशेष प्राप्त होते है । यहीं रविकीर्ति द्वारा बनाया गया मेगुती का जैन मन्दिर है ।[१६६] अधिकांश मन्दिर विष्णु तथ शिव के हैं । ऐहोल का विष्णु मन्दिर अभी तक सुरक्षित अवस्था में है । यहाँ के हिन्दू गुहा मन्दिरों में सबसे सुन्दर सूर्य का मन्दिर है जो लाढ़ खाँ के नाम से प्रसिद्ध हैं, वास्तव में यह ७वीं शती का निर्मित है ।[१६७]

बादामी तथा ऐहोल के मन्दिरों के अतिरिक्त पर्तडकल में चालुक्य मन्दिरों के सुन्दर नमूने मिलते हैं । यहाँ दस मन्दिर बने हैं जिनमे चार उत्तरी (नागर) तथा छः दक्षिणी (द्रविण) शैली के है ।[१६८]

राष्ट्रकूट शासक भी उत्साही निर्माता थे । महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद में स्थित एलोरा नामक पहाड़ी

पर हिन्दू गुहा मन्दिर प्राप्त होते हैं। इनमें से अधिकांश का निर्माण राष्टकूट राजाओं के शासन काल में हुआ है। माघ के जन्म के लगभग १०० वर्ष बाद कृष्ण प्रथम ने कैलाश मन्दिर का निर्माण करवाया जो कि अपनी आश्चर्यजनक शैली के लिए प्रसिद्ध है। यह प्राचीन भारतीय वास्तु एवं तक्षण कला का श्रेष्ठतम उदाहरण है। यह सम्पूर्ण मंदिर एक ही पाषाण को काटकर बनाया गया है। मन्दिर की वीथियों में अनेक देवी देवतओं की मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। यह अक्षरशः सत्य है कि यह एक अद्वितीय रचना है। पाषाण काटकर बनाये गये मन्दिरों में इस मन्दिर का स्थान सर्वप्रथम है।[१६९]

कांची के पल्लव नरेशों का शासनकाल कला की उन्नति का काल कहा जा सकता है। ये शासक कला के महान संरक्षक थे। उनका शासन काल कला एवं स्थापत्य की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है। वस्तुतः उनकी वास्तु एवं तक्षण कला दक्षिण भारतीय कला के इतिहास में सर्वाधिक गौरवशाली अध्याय है। हर्ष के समकालीन नरेश महेन्द्रवर्मन (६१०-६४० ई०) के काल में एक नयी कला शैली का जन्म हुआ जो महेन्द्र शैली के नाम से विख्यात है।[१७०] इस शैली के अन्तर्गत कठोर पाषाण को काटकर गुहा मन्दिरों का निर्माण हुआ जिन्हें मण्डप कहा जाता है। ये मण्डप साधारण स्तम्भ युक्त बरामदे हैं जिनकी पिछली दीवार में एक या अधिक कक्ष बनाये गये हैं। मण्डप के बाहर बने मुख्य द्वार पर द्वारपालों की मूर्तियाँ मिलती हैं। जो कलात्मक दृष्टि से उच्चकोटि की है। इस शैली के प्रारम्भिक मण्डप सादे तथा अलंकरण रहित है किन्तु बाद के मण्डपों को अलंकृत करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

महेन्द्र वर्मा के बाद नरसिंह वर्मा के काल (६४०-६७४ ई०) में भी कला का विकास हुआ। इस युग की कला शैली को मामल्ल शैली कहते हैं। इस शैली के अन्तर्गत मुख्यतः मण्डपों तथा रथों (एक प्रस्तरीय मन्दिर) का निर्माण हुआ। इस शैली में निर्मित सभी स्मारक महाबली पुरुष में विद्यमान है। मण्डपों की संख्या दस हैं। ये महेन्द्र शैली से अधिक विकसित है इनमें से वाराह मण्डप, महिष मण्डप और पंच पाण्डव उल्लेखनीय हैं। इनका स्थापत्य भी दर्शनीय है। पहाड़ की चट्टानों पर गंगावतरण, शेषशायी विष्णु महिषासुर वध, वाराह अवतार और गोवर्धन धारण के दृष्य बड़ी सजीवता और सुन्दरता के साथ उत्कीर्ण किये गये हैं।ग्राउसेट ने गंगावतरण के दृश्य को सराहा है।

मामल्ल शैली की दूसरी रचना रथ अथवा एकाश्म मन्दिर हैं, जिन्हें कठोर चट्टानों को काटकर बनाया गया है। इनकी संख्या ८ है। ये रथ हैं : द्रौपदी रथ, अर्जुन रथ, भीम रथ, धर्मराज रथ, सहदेव रथ, गणेश

रथ, पिड़ारि रथ तथा वलैयान कुट्टइ रथ। इनमे से पाँच रथ समुद्र तट पर स्थित हैं जिन्हें पाँच पाण्डवों के नाम से जाना जाता है। संभवत: ये समस्त रथ शिव मन्दिर थे। अपनी सुन्दरता के अतिरिक्त ये स्मारक बौद्ध गुफा मन्दिरों तथा विशाल द्रविण मन्दिरों के मध्य की रुचिपूर्ण इकाइंयाँ हैं। इन रथों के विभिन्न भागों में काष्ठ कला का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। इन रथों में कुछ की छतें पिरामिडाकार है तथा कुछ पर शिखर बना है। मामल्ल शैली के रथ अपनी मूर्तिकला के लिए भी प्रसिद्ध है: नकुल-सहदेव रथ के अतिरिक्त अन्य सभी रथों पर देवी-देवताओं जैसे दुर्गा, इन्द्र, शिव गंगा, पार्वती हरिहर, ब्रह्मा, स्कन्द आदि की मूर्तियाँ उत्कीर्ण मिलती है।

पल्लव राजाओं की अन्य परवर्ती शैलियों का अध्ययन इस युग की कला के कालखंड में करना ठीक नहीं है। जब ६४२ ई० में युआन-च्वाँग कांची गया था तब उसने वहाँ अनेक सुन्दर मन्दिर व विहार देखे थे।

हमारे अध्ययन काल में अनेकों ऐसे विकसित शिल्प थे जो अपनी कलात्मक गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। ये शिल्प इस युग की कोई विशिष्ट देन नहीं थे बल्कि उनका प्राचीनकाल से ही प्रचलन था। सोने, चाँदी एवं अन्य बहुमूल्य रत्नों की मदद से उत्कृष्ठ कोटि के आभूषण बनाये व पहने जाते थे। इनका उपयोग पूरे देश में सभी श्रेणी के लोग करते थे। इसलिए स्वाभाविक रुप में ही स्वर्णकार—मणिकार की कला का बहुत अधिक विकास हुआ था। हर्षचरित से पता चलता है कि राज्यश्री के विवाह के अवसर पर अनेक स्वर्णकार गहने बनाने में लगे थे।[१७१] सोने चाँदी पीतल तथा अन्य धातुओं के बने हुए अनेक प्रकार के बर्तन उच्च कारीगरी के उदाहरण थे। हर्ष द्वारा नालंदा पीतल की चादरों से आच्छादित एक मठ बनवाया गया था।[१७२] युआन च्वाँग ने बोधगया में महाबोधि नामक विशाल बौद्ध मन्दिर को देखा था, जिसमें सोने की मूर्ति थी तथा छत पर सोने की कलई से युक्त ताम्र आमलक शोभित था।[१७३]

७वीं शती में चित्रकला में भी उल्लेखनीय प्रगति हुयी। समकालीन पुरातात्विक साक्ष्य तो उतनी संख्या में उपलब्ध नहीं है परन्तु समकालीन साहित्य एवं परवर्ती तथा परवर्ती पुरातात्विक साक्ष्यों में विकसित चित्रकला के प्रमाण से स्पष्ट है कि इस युग में वित्रकला अत्यन्त विकसित थी। हर्षचरित, कादम्बरी तथा शिशुपालवध में अनेकों स्थलों पर स्थापत्य कला के अतिरिक्त चित्रकला का भी उल्लेख मिलता है। राज्य-श्री के विवाह के अवसर पर हम निपुण चित्रकारों के दल को मंगलकारक दृश्यों का चित्रांकन करते हुए पाते

हैं ।[१७४] महिलाएँ धवलित तथा बिना पकाए मिट्टी के बर्तनों को अलंकृत करने में अपने पत्र तथा लता के चित्रांकन संबंधी कौशल का उपयोग कर रही थी ।[१७५] शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग के सरसठवें श्लोक से पता चलता है कि दीवारों पर देवताओं के चित्र अंकित थे ।[१७६] इसी प्रकार द्वारिकापुरी में भवनों की कपोतपालियों पर पक्षी समूहों के चित्रण का उल्लेख मिलता है ।[१७७] बाण ने लिखा है कि हर्ष के जन्म के पूर्व गर्भावस्था में जब रानी यशोमती अपने कमरे में सोई रहती थी, उस समय दीवारों पर चित्रित चंबरधारी स्त्रियाँ भी उन पर चंबर हिलाती थी ।[१७८]

मृदभाण्ड निर्माण कला इस युग में विकसित अवस्था में थी । उत्खनन के फलस्वरुप अनेक स्थानों से मिट्टी के बर्तनों के अवशेष मिले हैं ।[१७९] इनमें प्रमुख रुप से तश्तरी, कटोरी, जार आदि है । युआन च्वाँग कहता है कि भारत में घरेलू उपयोग के बर्तन मुख्यत: मिट्टी के थे ।[१८०] बाण के हर्षचरित से पता चलता है कि हंसवेग हर्षवर्धन के लिए सुगंधित शराब मिट्टी के बर्तन में लाया था ।[१८१] माघ शिशुपालवध मे उष्ट्रिका नामक मिट्टी के मद्य पात्र का उल्लेख करता है ।[१८२] मिट्टी के बर्तनों पर चित्रों के अलंकरण के भी उल्लेख है । राज्यश्री के विवाह के समय मिट्टी के मूर्तिकार साँचे में ढली हुयी मछली, कछुआ, मगर, नारियल, केला तथा तमाल के वृक्षों की मूर्तियाँ वहाँ पर मौजूद थी ।[१८३]

मिट्टी के मनके भी प्राप्त हुए है जो कि गरीब वर्गों के आभूषणों के रुप में उपयोग में आते रहे होंगे ।[१८४] मिट्टी की सील भी प्राप्त हुई है जो कि प्रामाणीकरण के लिए संभवत: उपयोग में आती रही होंगी । ये सील पकाकर व धूप में सूखाकर दोनों तरह से बनायी जाती थी ।[१८५]

संगीत :- इस युग में संगीत (गायन और वादन) सूक्ष्य कलाओं की प्रमुख शाखा के रुप में था । राजसी व अन्य उच्च वर्गों की स्त्रियाँ इस कला में निपुण होती थी । महलों तथा प्रासादों में मन बहलाव और आनन्द का यह प्रमुख साधन था । कादम्बरी में उल्लिखित है कि राजकीय अतिथि गृह में चन्द्रापीड़ के मनोविनोद के लिए प्रतिष्ठालब्ध संगीतज्ञों का समूह भेजा गया था । उनमें वीणावादिनी, मुरलीवादक, गायक मृदुराग में निपुण अष्टपद के ज्ञाता, कविता पाठ करने वाले प्रमुख थे ।[१८६]

महाकवि माघ का संगीत ज्ञान आश्चर्यजनक था । शिशुपालवध में गायन वाद्य, ताल, लय, स्वर आदि संगीत के पारिभषिक शब्दों का प्रयोग[१८७] संगीत शास्त्र की विकसित अवस्था का परिचायक है ।

वीणा, बॉसुरी, ढोल, मृदंग आदि प्रमुख वाद्य यन्त्र थे (चित्र-१६)। शिशुपालवध में लोक संगीत का भी अत्यन्त अनुपम उल्लेख मिलता हैं। छठे सर्ग के उनचासवें श्लोक में गोप वधुओं द्वारा धान की रखवाली करते समय गाये जाने वाले गीत का उल्लेख है।[१८८]

प्रियदर्शिका से ज्ञात होता है कि राजा उदयन के राजमहल में एक बड़ा संगीत गृह (गान्धर्वशाला) था।[१८९] हर्षचरित से थानेश्वर के संगीत गृह का पता चलता है।[१९०] कुलीन वर्ग की स्त्रियाँ नृत्य, नाटक व संगीत की शिक्षा लेती थी। राज्य-श्री ने इन ललित कलाओं की शिक्षा ग्रहण की थी। शिशुपालवध में गुरु द्वारा शिष्य को नृत्य/नाट्य शास्त्र की शिक्षा देने का उल्लेख मिलता है।[१९१]

संदर्भ

१. इत्सिग, ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया, पृ० ११७-१२०

२ वाटर्स I, पृ० १६१

३. वाटर्स I, पृ० १६०

४ की, एफ, ई, : एन्शियन्ट इन्डियन एजेकेशन, पृ० १७८-१८९

५. शर्मा दशरथ : राजस्थान थ्रू दि एजेज, पृ० ५१७-१८

६. वाटर्स I, पृ० १७६

७ अग्रवाल वी० एस०, दि डीड्स ऑफ हर्ष, पृ० १४
(समानविद्या वित्तशील बुद्धि वय सामान रुपैशला पैटे कतासन बन्धो गोष्ठी।)

८. नैषधीयचरितम्, VII, ६३

९ ब्रह्मचारी काड, पृ० २२

१०. बृहस्पति, पृ० २६४

११. वाटर्स I, पृ० १५४-१५५

१२ इत्सिग द्वारा वर्णित 'सिद्धकृति' तथा युआन च्वाँग द्वारा वर्णित द्वादश परिच्छेद एक ही चीज है।

१३. इत्सिंग : ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया, पृ० १७०

१४. पण्डित आर० एस० : दि रिवर ऑफ किंग्स, पृ० XXXIII

१५ नारद पर असहाय की टीका, XIII, ३०

१६. हर्षचरित, IV, पृ० २३९

१७. हर्षचरित, VIII पृ० ४५९

१८. शिशुपालवध, IX, ७९

१९ रत्नावली, अंक २

२०. नैषधीयचरित, II, ४१

२१ पाण्डे गो० च० शकराचार्य विचार और संदर्भ, पृ० २८

२२. जीवनी, पृ० ७०-७१

२३. जीवनी, पृ० ७४-७६

२४ जीवनी, पृ० ८१

२५ जीवनी, पृ० ८४

२६. जीवनी, पृ० ९८

२७ जर्नल ऑफ दि बिहार-उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, १९२८ पृ० १ तथा आगे

२८. राय चौधरी एच० सी० : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट इंडिया, पृ० ३०९

२९. नालन्दा का लेख, श्लोक ६, एपिग्राफिक इंडिया, भाग २०, पृ० ३७

३०. जायसवाल के० पी०, 'इंपीरियल हिस्टी ऑफ इंडिया, पृ० ६१

३१. वाटर्स I, पृ० १६४-१६५

३२ आर्कयालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९२१-२२

३३. जीवनी, पृ० १११-११२

३४ यस्याम्बुधरुवलेहि शिखर श्रेणी विहरावली ।
[illegible]ध्वंनिराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञाभुवः ॥

(मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख)

(एपिग्राफिक इंडिका XX, पृ० ३७)

३५. जीवनी, पृ० १६५

३६. जीवनी, पृ० ११२-११३

३७. जीवनी, पृ० ११२-११३

३८. वाटर्स II, पृ० १६५

३९. वाटर्स II, पृ० १६५, बील, II, १७०,

संकालिया, एच० डी० : दि यूनिवर्सिटी ऑफ नालन्दा

४० वाटर्स II, पृ० १२५

इत्सिंग, रिकार्ड्स ऑपु दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया—तक कुसू, पृ० २६

४१ नालन्दा हसतीव सर्त्वनगरी शुभ्राभ्रगौर स्फरच्यैत्यांशु।
प्रकरोस्सदागम कला विख्यात विद्वज्जना॥
(मन्दसोर प्रस्तर लेख)
(एपिग्राफिक इंडिका XX, पृ० ३७)

४२ मजूमदार आर० सी०,: श्रेणी युग, पृ० १७

४३. वाटर्स IV, पृ० २४३

४४ इत्सिंग · रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया, तक कुसु, पृ० १७७

४५. कीथ . ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ११६

४६. कादम्बरी, पृ० ८७

४७ शास्त्री, नीलकट · ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ३४५

४८. शास्त्री नीलकंठ : ए हिस्स्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ३४४

४९. शास्त्री नीलकंठ : ए हिस्स्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ३४५

५० एपिग्राफिक इंडिका, IV, पृ० २११

५१. का० इ० उ०, III, सेले० इंस्क्रि०, २५४

५२. रिडिंग : कादम्बरी, पृ० २१२

५३. हर्पचरित, I, पृ० ९

५४. रिडिंग कादम्बरी, पृ० ८७

५५. काव्यादर्श I, ३८

५६. हर्पचरित I, पृ० ७

५७. हर्षचरित III, पृ० १४८

५८. कादम्बरी, पृ० ३१४

५९. कादम्बरी, पृ० ७३

६०. महाभारत, समापर्व अध्याय ३३-४५

६१. कीथ : ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० १०९

६२. हर्पचरित III, १४६

६३. कीथ, ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ८०

६४. दीर्घेष्वमी नियमिता पटमण्डपेषु, निद्रां विहाय वनज्ञाक्ष वनायुदेश्याः।

वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतावि लेहयानि सैंधव शिलाशकलानि वाहाः।

(रघु० V,७३)

परिशिथिलितकणग्रीव माभीलिताक्षः क्षणमय मनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेब।

रिरसयिषति भूयः शष्पभग्र ा विकीर्णं पटुतर चपलोष्ठः प्रस्फुरत्प्रोथमश्वः॥

(शिशुपालवध XI.११)

६५. प्रसाधिकालंबित मग्रयादमाक्षित्य काचिद् द्रवरागमेव।

उत्सृष्टलीलागतिरागवा सादलक्त काङ्कणं पदवीं ततान॥

(रघु० VII ७)

व्यतनोदपास्य चरणम्प्रसाधिका कर पल्लवाद्रसवशेन कायन।

द्रुतयावकैकपद चित्रितावनि पदवीं गतेव गिरिजा हरार्धताम्॥

(शिशुपालवध XIII, ३३)

६६. हर्षचरित I, पृ० ३

६७ शिशुपालवध X, पृ० ७६

६८. हर्षचरित I, पृ० ८

६९. शिशुपालवध XIV ५०, XX ४४

७० गोपालन आर०, हिस्टी ऑफ दि पल्लवाज ऑफ काँची, पृ० २२२

७१. एपिग्राफिक इंडिका इं०, VI, पृ० १०

७२. कीथ : ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० १०९

७३. शास्त्री नीलकंड : ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ३४५

७४. उपाध्याय डॉ० बल्देव प्रसाद : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २०१

७५ उपाध्याय डॉ० बल्देव प्रसाद : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २०२

७६. तावद भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।

७७. कीर्ति : प्रवरसेनस्य प्रमाता कुमुदोज्जवला।

सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥ (हर्षचरित, I, पृ० ८)

७८. कीथ : ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ११६

७९ कीथ : ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ११६

८०. शिशुपालवध I, १४-१६, III ७०, ३३, V, ५०

८१ सटाच्छटाभिन्नघनेन विभृता नृसिंह सैही मतनुं तनुं त्वया।
समुग्धकान्तास्तन संग भङ्गुरै सरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥
(शिशुपालवध I, ४७)

क्व स्त्रीविषध्याः करजाः क्व वक्षी दैत्यस्य शैलेद्र शिला विशालम्।
संपश्यतैतद् द्युसदां सुनीतं तैस्तन्नरसिंह मूर्तिः॥
(रावणवध XII, ५९)

८२. कवी नामंगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येन पाण्डुपुगाणां गतया कर्णगोचरम्॥
(हर्षचरित I, पृ० ७)

८३. अलब्धवैदग्ध्य विलासमुग्ध्या धिया निवद्धेय मतिद्वयी कथा (कादम्बरी, २०)

८४. पिटर्सन, कादम्बरी (भूमिका) पृ० ७१-७३

८५ त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिपु लोकेषु विश्रुताः।

८६. कीथ : ए हिस्टी ऑफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० २९६

८७. शास्त्री नीलंकठ, ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ३४५

८८. कीथ, ए हिरटी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २९६-९७

८९ अलभत च चित्रभानुस्तेषां मध्ये राजदेव्यभिधानायां वाह्मण्यां बाणमात्यजं।
(हर्षचरित I, पृ० ७२)

९०. हर्षचरित I, पृ० ७४-७६

९१. हर्षचरित II, पृ० १३९-१४०

९२. त्रिपाठी आर० एस० : हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० १७९
दृष्टव्य : दि संस्कृत पोएमस ऑफ मयूर (१९१७) (क्वेकनवास)

९३. कीथ : द हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २१४

९४. त्रिपाठी आर० एस० : हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० १७९

९५. वही, पृ० १७९

९६. वाटर्स I, पृ० १७६, बील I, पृ० ८७

९७ "काव्यं यशसेंऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवतेरक्षतमे।"
(काव्या प्रकाश, पृ० १-२)

९८. कालिदासादीनामिव यशः श्री हर्षादेर्धावका दीनामिव धनं।
(काव्य प्रकाश, पृ० १२)

९९. श्री हर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलम जायत वस्तुतस्तु।
श्रीहर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनक कोरिशतेन बाणः॥
(काव्य मीमांसा की भूमिका, पृ० X गायकवाड़सिटीज)

१००. मजुमदार आर० सी० : श्रेणी युग, पृ० ३५०

१०१. हर्षचरित II, पृ० १३३

१०२ इत्सिंग . 'ए रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया, पृ० १५-२८ (भूमिका)

१०३. कुट्टनीमत V, ८५६ दृष्टव्य त्रिपाठी आर० एस० हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, पृ० १८०

१०४. श्री हर्षो निपुण : कविम् परिषदप्येषा गुणग्राहिनी।
लोके हारिच वत्सराज चरितम नाट्ये च दक्षा वयम्॥

१०५ कथासरित्सागर II, १-६, III १-२

१०६. बृहकथामञ्जरी II, ३

१०७. नागानन्द I, १

१०८ कीथ : हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० १२४

१०९. नरिमन, जैक्सन तथा ओगुन संपादित 'प्रियदर्शिका, बाई हर्ष की भूमिका, पृ० ४४

११०. मजुमदार आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० ३५१

१११. का० इ० इं० III, पृ० २१०-२१५

११२ यदि दं कवे मृर्गराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं बेनीसंहार नामक-नाटकं प्रयोक्तु मुद्यता वयम्। (वेणीसंहार, I, पृ० ७)

११३. त्रिपाठी, आर० एस० : हिस्टी ऑफ कन्नौज, पृ० २०८

११४. शास्त्री नीलकंठ : ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ३४५

११५ उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृ हीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृते : पृथग्विदु : पुरुतनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥
(शिशुपालवध I, ३३)

११६. तस्य सांख्यापुरुपेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्ति भाजि करणे यथर्त्विजि॥
(शिशुपालवध XIV, १९)

११७ हर्षचरित V, पृ० ३०१

११८ 'गाख्यागमेनेव प्रधान पुरुषोपेतेन', कादम्बरी, पृ० ८८

११९. जीवनी, पृ० १६२

१२०. मैत्र्यादिचित्तपरि कर्म विदो विधाय क्लेश प्राहाणमिह लब्ध सवीज योगाः।

ख्याति च सत्त्व पुरुषा-यतयाऽधिगम्य वाञ्छन्ति तामपि समाधि भृतो निरोद्धुम्॥

(शिशुपालवध IV, ५४)

१२१ शिशुपालवध, XIV, ६०, ६२, ६४

१२२ शिशुपालवध, XIV, २०

१२३ शिशुपालवध, XIV, २२

१२४ हर्षचरित : प्रथम उच्छवास मे कवि वश वर्णन

१२५. उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्ण तथाऽतिदुर्गमम्।

उपेयुषो मोक्षपथ मनस्विनस्त्वमग्रभूमि निर्रपायसंश्रया॥

(शिशुपालवध : I, ३२)

१२६. ग्राम्यभावम पहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।

दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षव॥

(शिशुपालवध XIV, ६४)

१२७. सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्ध पृच्चकम्।

सौगताना मिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रों महीभृताम्॥

(शिशुपालवध, II, २८)

१२८. इत्सिंग : रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलीजन-तककुसू पृ० १८६

१२९. मजूमदार आर० सी०, : श्रेणी युग, पृ० ३४०

१३०. कीथ : हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३०८

१३१ शिशुपालवध II, २८

१३२. हर्षचरित VIII, पृ० ४२३

१३३. वाटर्स I, पृ० ३२६, II, पृ० २२१-२२४

१३४. इत्सिंग : रिकार्ड ऑफ दि बुद्स्ट रिलीजन-तककुसु, पृ० ५८

१३५. मुकर्जी, पी० के० : इंडियन लिटरेचर इन चाइना, पृ० २१९-२३४

१३६ मजुमूदार आर० सी० : श्रेणी युग पृ० ३६१

१३७ कीथ, ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४३१

१३८. कीथ, ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४३२

१३९. कीथ : ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४२९

१४० कीलहार्न, आई० ए०, XVI, पृ० १७८

१४१. कीथ, ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४३०

१४२. कीथ, ए हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ५२२

१४३ मजुमदार, आर० सी०, श्रेणी युग, पृ० ३६६

१४४. कुमार स्वामी : इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, पृ० ७१

१४५ वही, पृ० ९१

१४६. कुमार स्वामी : इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, पृ० ७८

१४७. अग्रवाल वी० एस० : गुप्त आर्ट, पृ० ६६-७०

१४८. वही, पृ० ६७

१४९. अग्रवाली वी० एस० : गुप्ता आर्ट, पृ० ७३

१५०. वाटर्स II, पृ० ११६

१५१. जीवनी, पृ० १११-११२

१५२. अख्तर एन०, नालन्दा ए सीट फार एजुकेशन एण्ड कल्चर, पृ० ४३

१५३ वाटर्स II, पृ० १६४-१६५

१५४. कुमार स्वामी : इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, पृ० ८४

१५५ शिशुपालवध III, ३३-६९ द्वारिकापुरी वर्णन

१५६ शिशुपालवध III, ५३

१५७. शिशुपालवध III, ४३

१५८. शिशुपालवध III, ४४

१५९. शिशुपालवध III, ४६

१६०. शिशुपालवध III, ५१

१६१. शिशुपालवध III, ६०

१६२ कुमार स्वामी : इडियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट, पृ० ९३-९४

१६३. वही, पृ० ९४

१६४. कादम्बरी : उज्जयिनी वर्णन

१६५ शास्त्री नीलकंठ : ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ४५०

१६६. शास्त्री नीलकंठ : ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ४५१

१६७ शास्त्री नीलकंठ : ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ४५०

१६८. वही, पृ० ४५२

१६९. ब्राउन पर्सी : इंडियन आकिटेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू) पृ० ८७

१७० शास्त्री नीलकठ . ए हिस्टी ऑफ साउथ इंडिया, पृ० ४५७

१७१. हर्षचरित IV, पृ० २४३

१७२ वाटर्स II, पृ० १६४-१६५

१७३. वाटर्स II, पृ० ११६

१७४. हर्षचरित IV, पृ० २४३

१७५. हर्पचरित IV, पृ० २४४

१७६. शिशुपालवध II, ६७

१७७. शिशुपालवध III, ५१

१७८. हर्पचरित IV, पृ० २१६

१७९. आर्केयोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९११-१२, पृ० ८४

१८०. वाटर्स I, पृ० १७८

१८१. हर्पचरित IV, ३८८

१८२. शिशुपालवध XII. २७

१८३ हर्पचरित IV, पृ० २४३

१८४. मैती एस० के० : दि इकानामिक लाइफ ऑफ नार्दन इंडिया, पृ० ११

१८५. एपिग्राफिक इंडिका, XXI, पृ० ७६

१८६. रिडिंग : कादम्बरी, पृ० १५१

१८७. शिशुपालवध I, १०

१८८. शिशुपालवध VI, ४९

१८९ प्रियदर्शिका, पृ० ५०

१९०. हर्पचरित : III, पृ० १६५

१९१ शिशुपालवध IX, ७९

उपसंहार

साहित्य सृजन और इतिहास लेखन में अत्यधिक घनिष्ठ संबंध है। प्रत्येक कवि या साहित्यकार एक विशिष्ट युग में जीता है और उसकी रचना उस युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। वास्तव में रचना का काव्य तो कवि का कर्म है परन्तु प्रेरक तत्व युग सापेक्ष होने के कारण सामाजिक सांस्कृतिक प्रवाह के हिस्से है।

भारतीय इतिहास लेखन की यह विडंबना है कि समृद्ध संस्कृत साहित्य इतिहास के अनुशीलन व प्रणयन में उपेक्षित ही रहा है। इसका प्रमुख कारण २०वीं शती के इतिहास दर्शन की एकांगी दृष्टि ही रही है। अश्वघोष से श्री हर्ष तक का संस्कृत साहित्य सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास का प्रतिबिम्ब स्वरुप है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय चयन किया गया है।

संस्कृत साहित्य में तीन महाकाव्य (किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधीय चरित) बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात है। माघ कृत शिशुपालवध सर्वांगीड़ता की दृष्टि से इनमें सर्वोत्कृष्ट है। माघ के शिशुपालवध में वर्णित सामाजिक सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रथम अध्याय में कवि का काल निर्धारण करने का प्रयास किया गया है।महाकवि के जीवन और समय को लेकर विद्वानों में अत्यधिक विवाद है।महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के अंत में कवि वंश वर्णन सम्बन्धित पाँच श्लोक दिये है। इनसे पता चलता है कि माघ के पितामह का नाम सुप्रभदेव था जो भीनमाल के राजा वर्मलात के महामंत्री थे। इनका अत्यधिक सम्मान था। माघ के पिता का नाम दत्तक था जो बड़े ही उदारमना व्यक्ति थे और इसीलिए उपनाम सर्वाश्रय से प्रसिद्ध थे। यही दत्तक माघ के पिताश्री थे। राजस्थान के सिरोही राज्य में वसन्तगढ़ से प्राप्त अभिलेख से पता चलता है कि वर्मलात

नामक राजा भीनमाल पर ६२५ ई० में शासन कर रहा था। इसी आधार पर माघ का काल ईसा की ७वीं शती के उत्तरार्द्ध में माना गया है। प्रथम अध्याय में आंतरिक व बाह्य साक्ष्यों के परीक्षण से यही निष्कर्ष निकलता है। माघ को ८वीं, ९वीं तथा अन्य किसी शती में रखने का कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। भीनमाल में उस समय चाप वंशीय गुर्जर शासकों का शासन था। इस अध्याय में गुर्जर को भौगोलिक नाम के रुप में स्वीकार किया गया है न कि किसी जाति विषयक रुप में। इस संदर्भ में 'प्रबन्ध चिन्तामणि', 'भोज प्रबन्ध' और 'प्रभावकचरित' में वर्णित साक्ष्य विश्वसनीय नही हैं। माघ के आदर्श भारवि थे जिनका समय ६३४ से पूर्व का है क्योंकि पुलकेशिन II के ६३४ ई० के एहोल अभिलेख में भारवि का उल्लेख है। अत: माघ के भारवि से परवर्ती होने के कारण इनका समय ७वीं शती के उत्तरार्द्ध में माना जा सकता है। कन्नड़ ग्रन्थ कविराज मार्ग (८१४ ई०) के माघ का उल्लेख है। अत: किसी भी अवस्था में माघ को इस तिथि के बाद नहीं रखा जा सकता है। शिशुपालवध के एक प्रसिद्ध पद्य में माघ ने व्याकरण के दो ग्रन्थों कशिका वृत्ति और न्यास का उल्लेख किया है। कशिका वृत्ति की रचना जयादित्य और वामन ने की थी। इस ग्रन्थ की रचना ६५० के आसपास हुयी होगी क्योंकि इत्सिंग के अनुसार जयादित्य का देहान्त ६६१ ई० में हुआ था। अत: माघ का उदय ६५० ई० के बाद ही हुआ होगा। दूसरे ग्रन्थ न्यास को कुछ विद्वानों ने जिनेन्द्रबुद्धि रचित कशिकावृत्ति की टीका माना है जिसका काल ७०० ई० है। अगर यह सही माने तो यह मानना पड़ेगा कि माघ का अविर्भाव ७०० ई० के बाद हुआ होगा। परन्तु अनेक विद्वानों का मत है कि माघ ने किसी पूर्व रचित न्यास का उल्लेख किया है क्योंकि अनेक न्यास ग्रंथों की रचना पूर्व में ही हो गयी थी बाण ने अपने हर्षचरित में न्यास का उल्लेख किया है।

माघ कविवंश वर्णन, वसंतगढ़ अभिलेख तथा अन्य साक्ष्यों से यह स्पष्ट है कि माघ का जन्म ७वीं शती के उत्तरार्द्ध में रखना ही उचित होगा।

माघ का युग ७वीं शती का उत्तरार्द्ध है। देश छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभक्त था जिनमें आपस में सतत् संघर्ष होता रहता था। राजनीतिक रुप से देश में अराजकता, अस्थिरता, संघर्ष व अशान्ति व्याप्त थी।

हिन्दू समाज सैद्धान्तिक रुप से चार वर्ण में पर यथार्थ रुप में अनगिनत जातियों में विभक्त था।

वास्तव में विभिन्न व्यवसायों ने ही कालान्तर में जाति का रुप धारण कर लिया था। समाज में नारियों की स्थिति में गिरावट आने लगी थी। बहु विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा एवं वेश्यावृत्ति का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया था। नारी मात्र भोग की वस्तु ही रह गयी थी।

माघ के शिशुपालवध से स्पष्ट है कि समाज में पौराणिक हिन्दू धर्म लोकप्रिय था यद्यपि बौद्ध धर्म व जैन धर्म के अनुयायी काफी संख्या में थे। इसकी पुष्टि युआन-च्वाँग व इत्सिंग के लेखों से भी होती है। परन्तु पौराणिक धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था तथा अपने आन्तरिक कारणों से नास्तिक धर्मों का प्रभाव घटने लगा था। दर्शन के क्षेत्र में शंकर तथा कुमारिल का आविर्भाव हुआ जिन्होंने वैदिक धर्म को ठोस दार्शनिक आधार प्रदान किया।

इस युग के साहित्याकाश में अनेक यशस्वी साहित्यकार हुए जिन्होंने अपनी प्रतिभा से मौलिक साहित्य का सृजन किया। भारवि, माघ, बाण, हर्ष, मयूर तथा दिवाकर ने अपने कृत्रित्व से युग को आलोकित किया। अनेक राजाओं ने विद्वानों व साहित्यकारों को राज्याश्रय भी प्रदान किये।

उपर्युक्त निष्कर्षों का प्रतिपादन साक्ष्य सहित प्रथम अध्याय में किया गया है।

द्वितीय अध्याय में शिशुपालवध का एक साहित्यिक कृति के रुप में मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। शिशुपालवध की कथा का मूल आधार महाभारत में सभापर्व से लिया गया है। महाभारत में कृष्ण द्वारा चेदि नरेश शिशुपाल का वध करने का उल्लेख है। इस छोटी सी कथा का माघ ने अपनी प्रतिभा के द्वारा २० सर्गों तथा १६५० श्लोकों में विस्तार किया है। महाकाव्य का प्रारम्भ नारद द्वारा स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आकर श्रीकृष्ण को इन्द्र का संदेश देने से होती है। इन्द्र तथा अन्य देवता गण नारद के द्वारा दुष्ट राजा शिशुपाल के वध का आग्रह करते हैं क्योंकि यही शिशुपाल पूर्व जन्म में हिरण्यकशिपु व रावण था। दुष्टों का वध करना और सज्जनों की रक्षा करना आपका परम पवित्र कर्तव्य है।शिशुपाल के वध के उपरान्त ही देवता लोग सुख पूर्वक रह सकेंगे। श्रीकृष्ण द्वारा 'ऐसा ही होगा' यह कहे जाने पर नारद जी आकाश की ओर प्रस्थान कर गये। द्वितीय सर्ग में श्रीकृष्ण भगवान का उद्धव जी तथा बलराम से मंत्रणा करते है कि पहले धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाना चाहिए अथवा देव कार्य सम्पादनार्थ चेदि नरेश पर आक्रमण करना चाहिए। गम्भीर राजनीतिक मंत्रणा तथा उद्धव जी व

बलराम जी के विचारों को सुनकर श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के यज्ञ में शामिल होने का निश्चय करते हैं। तृतीय सर्ग में 'द्वारिकापुरी से श्रीकृष्ण भगवान के प्रस्थान का तथा द्वारिकापुरी और समुद्र का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में रैवतक (गिरनार पर्वत) पर्वत का वर्णन है। पञ्चम सर्ग में रैवतक पर्वत पर विहार करने के लिए सेना के प्रस्थान तथा ठहरने का वर्णन है।छठें सर्ग में छः ऋतुओं का माघ ने कुशलता पूर्वक चित्रण किया है। सप्तम सर्ग में वन विहार अष्टम् में जल विहार तथा नवम सर्ग में सूर्यास्त वर्णन है। दशम सर्ग में यादव सेना में शामिल नर व नारियों द्वारा मद्यपान व शुरु का वर्णन है जो कि अत्यधिक वासनामय है। एकादश सर्ग में प्रभात वर्णन द्वादश सर्ग में सेना प्रयाण का वर्णन है। त्रयोदय सर्ग में श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर पहुँचने तथा युधिष्ठिर आदि के द्वारा उनकी अगवानी का वर्णन है। चतुर्दश सर्ग में युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ में आद्य पूजा स्वरुप श्रीकृष्ण को प्रथमार्ध्य देते है। पञ्चदश सर्ग में शिशुपाल के क्रोध व उसके द्वारा श्रीकृष्ण की निन्दा, उक्त निन्दा से क्षुब्ध भीष्म पितामह द्वारा विरोधियों को फटकारने तथा शिशुपाल व उसके सहयोगियों द्वारा यज्ञ सभा का बहिस्कार करने का युद्ध की तैयारी का वर्णन है। षोठस सर्ग में शिशुपाल के दूत द्वारा स्तुति तथा निन्दा से युक्त शिलष्ट वचन कहने का वर्णन तथा श्रीकृष्ण के दूत सात्यकि द्वारा शिशुपाल के दूत को उचित उत्तर देने का वर्णन है।सप्तदर्श सर्ग में श्रीकृष्ण पक्षीय राजाओं की युद्ध तैयारियों का वर्णन है। अठारहवें तथा उन्नीसवें सर्ग में घनघोर युद्ध का वर्णन है। बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से शिशुपाल के वध का वर्णन है।

इस प्रकार बीस सर्गों में विभक्त कथावस्तु द्वारा महाकवि ने उन सभी बातों को प्रस्तुत किया है जो महाकाव्य के स्वीकृति लक्षणों के अनुसार उस रचना को महाकाव्य का रुप दे सकती थी। शिशुपालवध अपने सृजन काल से ही लोकप्रिय महाकाव्य रहा है जो उसकी उपलब्ध २८ टीकाओं से पता चलता है। इसी सर्ग में महाकवि माघ की विद्वता भी स्थापित की गयी है।

तृतीय अध्याय में माघ युगीन सामाजिक दशा को समझने का प्रयास किया गया है। सैद्धान्तिक रुप में वर्ण विभाजित समाज, व्यवसायों की वृद्धि व स्थानीयकरण, विदेशियों का आगमन, आर्य सभ्यता के विस्तार आदि कारणों के फलस्वरुप अनगिनत जातियों में विभक्त हो गया था। उत्तर वैदिक कालीन आश्रम व्यवस्था का उल्लेख मिलता है परन्तु अब इसमें अनेकों परिवर्तन हो गये थे जैसे बढ़ती बाल विवाह प्रथा के कारण ब्रह्मचर्य आश्रम की अवधि का घटना। इसकी शायद व्यावहारिक उपयोगिता कम

हो गयी थी परन्तु एक आदर्श व्यवस्था के रुप में यह प्राचीन काल से ही व्यक्तिगत जीवन को सुव्यवस्थित बनाने की प्रेरणा देती रही है। स्त्रियों की दशा इस युग में अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। यही वह युग है जब नारी का कला और साहित्य में सबसे अधिक श्रृंगारिक चित्रण हुआ। सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह ने नारी के अपमान और शोषण को नया आयाम दिया।

चतुर्थ अध्याय में माघ युगीन अर्थव्यवस्था की विवेचना की गयी है। कृषि अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी। परती भूमि पर खेती करने वाले को प्रोत्साहन मिलता था। गेहूँ चावल अनेक प्रकार के दलहन व तिलहन आदि का उत्पादन होता था। अनाज के अतिरिक्त फल, फूल की भी अच्छी पैदावार थी। सिंचाई के साधनों में विस्तार हुआ था। भूस्वामित्व भारतीय इतिहास में विवादास्पद प्रश्न रहा है राजा की भूमि पर सामान्य प्रभुसत्ता थी परन्तु ७वीं शती तक आते-आते व्यक्तिगत स्वामित्व की धारणा में विकास हो रहा था। ब्राह्मणों को दान आदि देने का अत्यधिक महत्व था। भूमिदानों का भी उल्लेख मिलता है। युधिष्ठिर द्वारा ब्राह्मणों को हस्ताक्षर युक्त भूमिदान देने का उल्लेख है जो कि सम्राट हर्षवर्धन द्वारा अपने हस्ताक्षर युक्त दान देने की पुष्टि करता है।

कृषि के अतिरिक्त अनेक उद्योग धन्धों का भी इस युग की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान था। शिक्षा के पाठ्यक्रम में शिल्प विद्या का महत्वपूर्ण स्थान था। वस्त्र, काष्ठ, चमड़ा, धातु, नमक आदि महत्वपूर्ण उद्योग थे। आभूषण निर्माण कला एक प्रतिष्ठित व्यवसाय थी। हाँथी दात का काम भी एक विकसित था। हाथी दाँत से आभूषण तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनायी जाती थी। वस्त्र उद्योग द्वारा सूती, रेशमी, लाइनेन, मतमल, ऊनी आदि वस्त्रों का उत्पादन किया जाता था। साँप की केंचुली के समान हल्के, केले के खम्भे के भीतरी परत के समान कोमल, साँस की हवा से भी उड़ जाने वाले एवं केवल छूकर ही अनुमान करने योग्य वस्त्रों के उत्पादन से इस उद्योग की उन्नत अवस्था को समझा जा सकता है।

अराजकता तथा युद्धरत राज्यों से उत्पन्न अराजकता व अशान्ति से व्यापार को थोड़ा धक्का जरुर लगा होगा परन्तु ७वीं शती के साक्ष्यों में आन्तरिक व वाह्य व्यापार के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। नमक, मदिरा, रत्न, आभूषण वस्त्र आदि का आन्तरिक व्यापार विकसित अवस्था में था। घोड़ों का आयात किया जाता था इसी प्रकार विलास की अन्य वस्तुओं भी विदेशी व्यापार में शामिल थी। जल स्थल दोनों मार्ग से व्यापार होता था। मुद्राएँ कम संख्या में प्राप्त होती हैं जो सामान्यतः गुप्त मुद्राओं की नकल थी।

पंचम अध्याय में गुप्तोत्तर कालीन परन्तु ८वीं शती के पूर्व के प्रमुख राजवंशों के इतिहास के अध्ययन के द्वारा तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का आकलन करने का प्रयास किया गया है। गुप्त साम्राज्य के पतनोपरान्त भारत में विकेन्द्रीकरण और विभाजन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला तथा अनेक स्थानीय सामन्तों व शासकों ने अपने को स्वतंत्र राज्य के रुप में घोषित कर दिया था। इस युग में वलभी का मैतृक वंश, कलचुरी, गुर्जर, मौखरि परवर्ती गुप्त तथा वर्धन राजवंश सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त आसाम, बंगाल, उड़ीसा व काश्मीर के राजवंश भी प्रमुख थे। माघ युगीन राजनीतिक परिदृश्य में छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त देश तथाआपसी संघर्ष से उत्पन्न अराजकता व आशान्ति, शक्तिशाली राजा के अधीन अनेकों छोटे-छोटे राजा तथा सामन्त शामिल थे। शूरवीरता की परम्परा, सेना में घुड़सवार सेना का बढ़ता प्रभुत्व तथा रथों की घटती उपयोगिता के उदाहरण तत्कालीन साक्ष्यों में मिलते है।

७वीं शती की शासन प्रणाली जो उत्तरी भारत में प्रचलित थी वह पूर्व काल से चली आ रही गुप्त शासन प्रणाली का ही परिवर्तित व परिवर्धित रुप थी जिसमें आवश्यकता तथा परिस्थितियों के अनुरुप परिवर्तन कर लिये गये थे। अध्ययन काल में राजत्व संबंधी आदर्श अत्यन्त ऊँचे थे। शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग के राजनीतिक विमर्श में प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया गया है। राजा की शक्ति सिद्धान्ततः निरंकुश थी परन्तु सामन्तों की बढ़ती शक्ति तथा राजा की सैन्य मामलों में उन पर बढ़ती निर्भरता ने राजा की शक्ति को नियंत्रित किया था।

सामन्ती व्यवस्था का विकास हो गया था। इस युग के साक्ष्यों में अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है जो सर्वोच्च राजा के अधीन कार्य करते थे। इन राजाओं द्वारा सर्वोच्च राजा को धन व रत्न आदि भेंट करने का उल्लेख शिशुपालवध में मिलता। सम्राट की शक्ति क्षीण होने सामन्त महाराज उपाधि धारी बन गये और उनके पद भी आनुवंशिक हो गये। भूमिदान ने इस प्रकार की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया यद्यपि हमारे अध्ययन काल में अधिकांश भूमिदान धार्मिक प्रकृति के थे। ७वीं शती में अभी भी सम्राटों का सामन्तों पर नियंत्रण था तथा वे उनसे कर वसूल करते थे।

राजा की सहायता के लिए अनेक अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। मंत्रियों की प्रशासन चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। शिशुपालवध के रचयिता महाकवि माघ के पितामह भीनमाल नरेश राजा वर्मलात के मंत्री थे। राज्यों के प्रशासन में मंत्री, संधि विग्रहिक तथा सेनापति प्रमुख भूमिका निभाते थे।

संधि विग्रहिक युद्ध व शान्ति मंत्री होता था। राज्य में कूटनीति हेतु दूतों की भूमिका प्रमुख होती थी। भाष्करवर्मा ने हर्ष के साथ मित्रता हेतु हंसवेग को दूत रुप में भेजा था। इसी प्रकार शिशुपाल व कृष्ण के दूत सात्यकि के मध्य सोलहवें सर्ग में हुए वार्तालाप से स्पष्ट है कि यह पद किसी अत्यन्त योग्य व विश्वासपात्र व्यक्ति को ही दिया जाता था। उसका उद्देश्य अपने सम्राट के हितों को ध्यान में रखते हुए अन्य राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देना होता था।

गुप्तचर प्रणाली को महत्व दिया जाता था। गुप्तचर का कार्य शत्रु के विषय में मात्र जानकारी एकत्र करना नहीं था अपितु शत्रु राजा व उसके सहयोगियों के बीच वैमनस्व पैदा करना भी था।

युद्ध और संघर्ष के युग में बड़ी सेनायें समय की आवश्यकता थी। इस सेनाओं में सर्वोच्च राजा व अधीनस्थ सामन्त राजाओं की सेना मिली रहती थी। हस्ति व घुड़सवार सेना की युद्ध में प्रमुख भूमिका होती थी तथा रथ सेना का महत्व कम हो रहा था। अच्छी नस्ल के घोड़े अरब देशों से मँगाये जाते थे।

इस युग की सेना में सैनिकों के अतिरिक्त दास, दासियाँ, नौकर, गणिकाएँ, व्यापारी आदि इतने अधिक लोग होते थे कि सेना एक भीड़ का समूह दिखती थी न कि अनुशासित सैनिकों की सेना। सेना में भोग विलास की प्रवृत्तियों ने प्रमुख स्थान ले लिया था। आमने सामने के युद्ध में रणनीति व कौशल के साथ-साथ व्यक्तिगत साहस व शौर्य प्रमुख तत्व होते थे। शूरवीरता इस युग का आदर्श थी, जिसमें वीर सैनिक बंदी बनाये जाने की अपेक्षा प्राण न्यौछावर करना अधिक उचित समझते थे।

माघ युगीन धार्मिक दशा छठे अध्याय का विवेच्य विषय है। भारत में वैयक्तिक व सामाजिक जीवन में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका प्राचीनकाल से ही रही है। धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म का पतनोन्नमुख होना, जैन धर्म का सीमित क्षेत्र में फैलाव तथा हिन्दू धर्म में शैव, वैष्णव व शाक्त सम्प्रदायों का उदय इस युग की विशेषता कही जा सकती है।

बौद्ध धर्म, जो वैदिक धर्म की कमियों का फायदा उठाकर तेजी से आगे बढ़ा था, का इस युग में विकास कुण्ठित हो गया। युआन-च्वांग के यात्रा वृत्तान्तों से ७वीं शती के बौद्ध धर्म की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। वह ६३०-६४४ ई० तक भारत में रहा। कश्मीर, स्यालकोट, कन्नौज, नालन्दा, आदि स्थल बौद्ध धर्म के केन्द्र थे। उसने बौद्ध धर्म के प्रति सम्राट हर्षवर्धन की प्रतिबद्धता का भी उल्लेख किया

है। हर्षवर्धन की आस्था संभवत: हीनयान में थी, उसकी बहन राज्य-श्री के साम्मितीय सम्प्रदाय में शामिल होने का उल्लेख है जो कि हीनयान का ही एक सम्प्रदाय था। युआन-च्वाँग ने इस सम्प्रदाय का विस्तार अहिच्छत्र, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वाराणसी, वैशाली तथा वलभी आदि स्थानों में देखा था। हीनयान और महायान चार दार्शनिक सम्प्रदायों में बँटे हुए थे। इनमें से दो वैशेषिक और सौत्रान्तिक, हीनयानी थे तो दो, माध्यमिक और योगाचार, महायानी थे।

बौर्द्ध धर्म की स्थिति की युआन-च्वाँग ने जो तस्वीर प्रस्तुत की है उसे देखने पर ज्ञात होता है कि बौर्द्ध धर्म का विकास कुछ रुक सा गया था। पश्चिमोत्तर भारत में नगरकोट, गान्धार, और तक्षशिला में उसने देखा की अधिकतर चैत्य और विहार वीरान पड़े थे। युआन-च्वाँग ने जिन राजाओं का उल्लेख किया है उनमें केवल हर्षवर्धन और ध्रुवभट्ट ही गृहस्थ बौद्ध थे तथा बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए प्रयास कर रहे थे, बाकी अधिकांश राजा ब्राह्मण धर्म मानने वाले थे। अर्थात् ७वीं शती में इसका प्रभाव घट रहा था तथा ब्राह्मण धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था।

बौद्ध धर्म का विभिन्न विरोधी सम्प्रदायों में विभाजन, बाह्य आडंबर, अधिकार लिप्सा, धन लिप्सा, मठों का विलास मय व कर्मकांडी जीवन आदि बातों ने जनता को इस धर्म से विमुख कर दिया।

जैन धर्म का आविर्भाव भारत में लगभग बौद्धधर्म के साथ-साथ ही हुआ था। जैन धर्म का प्रचार बहुत शनै-शनै हुआ परन्तु जहाँ बौद्ध धर्म का देश से पलायन हो गया जैन धर्म पश्चिमी व उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत में लोकप्रिय बना रहा। ७वीं शती में राजस्थान तथा गुजरात में जैन सूरियों और साधुओं के प्रयास से जैन धर्म का अत्यधिक प्रचार-प्रसार रहा। हरिभद्र सूरीर के प्रयासों से चित्तौड़ में विधि चैत्य आंदोलन की सूत्रपात हुआ जिसका उद्देश्य जैन संघ तथा जैन साधुओं के जीवन में व्याप्त बुरुइयों को दूर करना था और जैन धर्म में नवचेतना का संचार करना था। युआन-च्वाँग ने श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के जैन मुनि पश्चिम में तक्षशिला से लेकर पूरब में समतट तक देखे थे। ब्राह्मण लेखक उस समय जैन धर्म का उपहास उड़ाते थे।

सातवीं शती के दो गुर्जर राजाओं जयभट्ट प्रथम और दद्द द्वितीय को उनके अनुदान पत्रों में 'वीतराग' और प्रशान्त राग की उपाधियाँ दी गयी हैं, जिनसे सूचित होता है कि वे जैन धर्म के समर्थक थे,

चाहे उन्होंने व्यक्तिगत रुप से यह धर्म न अपनाया है। जैन धर्म के प्रचार का अधिकतर कार्य उनके मुनियों ने ही किया और उन्होंने काफी साहित्य सृजन भी किया जो आगे चलकर उनके धर्म-संघ के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण साबित हुआ। व्यापारी वर्ग ने इस धर्म को प्रश्रय व बढ़ावा दिया।

७वीं शती में भारत का प्रमुख धर्म पौराणिक धर्म ही था। इस काल में त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु और शिव की भक्ति व पूजा का प्रमुख स्थान था। इनके अतिरिक्त गणेश, स्कन्द, सूर्य इत्यादि अनेक पौराणिक देवताओं तथा शाक्त के विधि रुपों की पूजा अर्चना भी लोकप्रिय थी।

वैष्णव धर्म इस युग में अत्यन्त लोकप्रिय था। माघ ने शिशुपालवध की रचना द्वारा अपने अराध्य के प्रति गहन श्रद्धा व्यक्त की है। इस सम्प्रदाय में अवतारवाद एक प्रमुख अवधारणा थी।विष्णु के दसावतारों का उल्लेख मिलता है। समसामयिक साहित्यिक व आभिलेखिक साक्ष्यों से वैष्णव देवालयों तथा विष्णु की विविध रुपी प्रतिमाओं का निर्माण व पूजा अर्चना होती थी।

गुप्तोत्तर काल में वैष्णव धर्म के समान शैव धर्म भी अत्यन्त लोकप्रिय था। मौखरी नरेश, अधिकांश वल्लभी नरेश, वर्द्धन वंश का संस्थापक पुस्यभूति आदि सभी शैव भक्त थे। समकालीन आभिलेखिक व साहित्यिक साक्ष्यों में शिव के अनेक नामों का उल्लेख मिलता है यथा—जियम्बक, महाकाल, पशुपति शंकर, त्रिलोचन, शम्भू, परम माहेश्वर, हर, रुद्र, ईश, उमापति आदि। शैव मत के अनेक सम्प्रदाय यथा लुकलेश पाशुपत, कापालिक और कालमुख विद्यमान थे।

इस युग में मात्र देवताओं की उपासना ही प्रचलित नहीं थी अपितु विभिन्न शक्तियों एवं देवताओं की पत्नियों की कल्पना की जाकर उनकी पृथक-पृथक पूजा की जाने लगी। शिशुपालवध में लक्ष्मी, सीता, पार्वती के अतिरिक्त काली तथा चामुण्डा का उल्लेख भी मिलता है। इस युग में शाक्त पूजा का प्रमाण अभिलेखों, मंदिरों तथा मूर्तियों के रुप में प्राप्त होता है।

अन्य देवगणों में गणेश, हनुमान, स्कन्द, सूर्य, कार्तिकेय आदि का भी उल्लेख मिलता है। यक्ष, किन्नर, दिक्पाल, विद्याधर आदि देवताओं की भी उपासना प्रचलित थी। दार्शनिक दृष्टिकोण से यह युग अपनी प्रगति की पराकाष्ठा पर था। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वी मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा के अतिरिक्त बौद्ध एवं जैन दर्शन भी लोकप्रिय थे।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में माघ युगीन शिक्षा, साहित्य व कला कि स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। शिक्षा का प्रबन्ध योजनाबद्ध और सुव्यवस्थित था। विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। वेद, पुरुण, धर्म दर्शन तथा विज्ञान आदि विषयों को शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। प्राथमिक शिक्षा 'सिद्धम' से प्रारम्भ होती थी। सिद्धम् के पश्चात (१) व्याकरण (२) शिल्प विद्या (३) चिकित्सा विद्या (४) हेतु विद्या व (५) दर्शन विद्या का अध्ययन करना होता था। नालन्दा, वल्लभी, काशी, जालन्धर काँची, भीनमाल आदि नगर शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नालन्दा विश्वविद्यालय इतिहास में अपने उत्कृष्ट शिक्षकों व शिष्यों के लिए प्रसिद्ध है।

समाज में गुरु का सम्मान था। बाल विवाह तथा महिलाओं की गिरती सामाजिक-धार्मिक स्थिति से नारी शिक्षा को भी धक्का लगा। यद्यपि कुलीन वर्गों की महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी। वे चित्रकारी, नृत्य संगीत आदि सीखती थी।

गुप्तोत्तर काल में साहित्य के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। साहित्यकारों, विद्वानों, दार्शनिको ने संस्कृत साहित्य की अनेक विधाओं में उत्कृष्ट रचनाएँ की। भारवि (किरातार्जुनीय) माघ (शिशुपालवध) भट्टी (रावणवध) बाण (हर्षचरित, कादम्बरी) हर्षवर्धन (रत्नावली, प्रियदर्शिका, नागानन्द) तथा महेन्द्र वर्मा (मर्तविलास प्रहसन) ने साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया। इसी प्रकार दर्शन के क्षेत्र में धर्मपाल, धर्मकीर्ति, कुमारिल व शंकर ने अपनी रचनाओं व सिद्धान्तों से धार्मिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

७वीं शती की कला गुप्त कला का ही एक रूप है। इस युग में स्थापत्य कला, वास्तु कला, चित्रकारी, मूर्तिकला आदि के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुयी। इस युग की सर्वोत्कृष्ट कलाकृति राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण I द्वारा एलोरा में निर्मित कैलाश मन्दिर है जो कि भारतीय वास्तु एवं तक्षण कला का श्रेष्ठतम उदाहरण है। पल्लव नरेशों द्वारा मामल्लपुरम में मंडप व रथों का निर्माण इसी युग में कराया गया था।

इस प्रकार सात अध्यायों में बाँटकर माघ कृत शिशुपालवध में वर्णित सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन के द्वारा माघ के युग को समझने का प्रयत्न किया गया है।

संदर्भ-सूची

मूल ग्रंथ

ऐतरेय ब्राह्मण	:	(सं) के० एस० आगाशे, पूना, १८९६
अर्थशास्त्र	:	(सं) आर० शामशास्त्री, मैसूर १९२४
अष्टांग संग्रह	:	(सं) अत्रिदेवगुप्त, बम्बई, १९५१
बृहत्संहिता	:	(सं) एच कर्न, कलकत्ता
बृहस्पति स्मृति	:	(सं) जे जोली, आक्सफोर्ड, १८८९
हर्षचरित	:	(सं) जगन्नाथ पाठक, वाराणसी १९६४
किरातार्जुनीय	:	(सं) जे० विद्यासागर, कलकत्ता, १८७५
नीतिशतक, शृंगारशतक		
वैराग्य शतक	:	ए० वी० गोपालचरियार, मद्रास, १९५४
कादम्बरी	:	रीडिंग
मालती माधव	:	(सं) आर० जी० भण्डारकर
महावीर चरित	:	(सं) मैक्डोनल, लाहौर, १९२८
विक्रमोकदेव चरित	:	(सं) जी० व्यूलर बम्बई, १८७६,
दशकुमार चरित	:	(सं) डी० सी० विल्सन, शिकागो, १९२७
का० इं० इ०	:	जे० एफ० फ्लीट, लन्दन, I, II, III
नागानंद	:	(सं) आशा तोरासकर और एन० देशपांडे, बम्बई-१९५२
प्रियदर्शिका	:	(सं) वी० डी० गोदरे, बम्बई, १८८४
रत्नावला	:	(सं) के० पी० परब, बम्बई, १८९५

कामसूत्र	:	(सं) डी० एल० गोस्वामी, बनारस, १९२९
कामन्दकीय नीतिशार	:	(सं) जे० पी० विद्या सागर, कलकत्ता, १८७५
मनुस्मृति	:	कुल्लुक टीका सहित, बम्बई, १९२९
शिशुपालवध	:	(१) राम प्रताप त्रिपाठी, हि० सा० स०, इलाहाबाद
		(२) पं० हरगोविन्द शास्त्री, बनारस
नीलमत पुराण	:	(सं) देवरिषि, लीडेन, १९३६
काव्य मीमांसा	:	(सं) सी० डी० दयाल और आर० ए० शास्त्री बड़ौदा, १९२४
वासवदत्ता	:	(सं) एफ० ई० हाल, कलकत्ता, १८५९
मृच्छकटिक	:	(सं) नारायण राम आचार्य, बम्बई, १९५०
राजतरंगिणी	:	(अनु) सर आरेल स्टीन, लन्दन, १९००
उदय सुन्दरी कथा	:	सी० डी० दयाल और कृष्णामाचार्य, बड़ौदा, १९२०
काव्य प्रकाश	:	झलकीकार बम्बई, १९२१
भोज प्रबन्ध	:	वेलेवेडियर प्रेस संस्कृत सीरीज न० ५
बू-स्टोन	:	हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म, I, II, ओबरमिलर
गीत-गोविन्द	:	जयदेव, नि० सा० प्रे०, १९२९
हम्मीर मद मर्दन	:	जी० ओ० एस० न० १०
कर्पूर मंजरी	:	(सं) स्टेन कोनो, हारवर्ड, १९०१
लाटक मेलक	:	नि० सा० प्रे० बम्बई १९०९
नैपधीयचरित	:	नि० सा० प्रे० १९३३
प्रभावक चरित	:	नि० सा० प्रे० १९०९
सिद्धांत शिरोमणि	:	नबल किशोर प्रेस, लखनऊ, १९११
शुक्रनीति	:	(स) वी० के० सरकार, पाणिनी आफिस, इलाहाबाद, १९१४
उपमितिभव प्रपंच कथा	:	(सं) पेटरसन कलकत्ता, १८९९

विदेशी ग्रन्थ

गाइल्स एच० ए०	:	दि टैवल्स ऑफ फाह्यान ओर रिकार्ड ऑफ बुद्धिस्ट रिलीजन,

		कैम्बिन, १९२३
तकाकुसु जे० ए०	:	रिकार्ड ऑफ दि बुद्दिस्ट रिलीजन एज प्रैक्टिस्ड इन इंडिया एण्ड दि मलय आर्किपिलागों, इत्सिंग, आक्सफोर्ड, १८९६
वाटर टी०	:	ऑन युआन-च्वाँगस टैवल्स इन इंडिया I, II

जर्नल, रिपोर्ट व पत्र पत्रिकाएँ

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, वार्षिक रिपोर्ट
एनल्स ऑफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट
एपिग्राफिक इंडिया
इंडियन एंटिक्वेरी
इंडियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली
जर्नल ऑफ ओरियन्टल रिसर्च मद्रास
जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसायटी
जर्नल ऑपु दि रायल एशियाटिक सोसायटी

संदर्भ ग्रन्थ

अग्रवाल, वी० एस०	:	दि डीड्स ऑफ हर्ष पटना १९५३, कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन वाराणसी १९५८, गुप्ता आर्ट वाराणसी १९७७
अयंगर, के० वी० आर०	:	सम आस्पेक्ट्स ऑफ एन्शियन्ट इंडियन पालिटी, मद्रास, १९३५
आल्टेकर, ए० एस०	:	दि राष्ट्रकूटास एण्ड देयर टाइम्स, पूना १९३४, एजूकेशन इन एन्शियेन्ट इंडिया बनारस १९४८, दि पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन
एशर, एफ० एम०	:	दि आर्ट आफ ईस्टर्न इंडिया
बनर्जी, आर० डी०	:	दि एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज, बनारस १९३३
भण्डारकर, आर० वी०	:	दि इन्डियन बुद्धिस्ट आयकोनोग्राफी, कलकत्ता, १९५८
बाऊन, पर्सी	:	इन्डियन आर्किटेक्चर बाम्बे

चक्रवर्ती, पी० सी०	:	दि आर्ट आफ वार इन एन्शियन्ट इंडिया, ढाका १९४२
चट्टोपाध्याय, एस०	:	अर्ली हिस्टी ऑफ नार्थ इंडिया, कलकत्ता १९५८
चक्लधर, एच० सी०	:	सोशल लाइफ इन एन्श्येन्ट इंडिया, कलकत्ता १९२९
चटर्जी, जी० एस०	:	हर्षवर्धन
कुमार स्वामी, ए० के०	:	हिस्टी ऑफ इन्डियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट, लन्दन १९२७
दास, एस० के०	:	दि एजूकेशनल सिस्टम ऑफ एन्शियेन्ट इंडिया, कलकत्ता १९३०
दास गुप्ता, एस० एन०		
और डे, एस० के० (संपा)	:	हिस्टी ऑफ संस्कृत लिटरेचर कलकत्ता १९४७
देवाहुति डी	:	हर्ष ए पोलिटकल स्टडी, आक्सफोर्ड १९७०
डुबाय, जे० ए०	:	हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमोनिज, १९५३
दत्त, एन० के०	:	दि ओरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इंडिया, I व II, कलकत्ता १९३१
गांगुली, डी० सी०	:	हिस्टी ऑफ दि परमार डाइनेस्टी, ढाका १९३३
घोषाल, यू० एन०	:	दि एग्रेरियन सिस्टम इन एन्शियेन्ट इडिया, कलकत्ता १९३०, कन्ट्रीव्यूशन्स टू दि हिस्टी ऑफ हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, कलकत्ता, १९२९
घुर्ये, जी० एस०	:	कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया, बम्बई १९५९
गोयल, एस० आर०	:	
गोपाल, एल०	:	दि इकानामिक लाइफ ऑफ नार्दन इंडिया, वाराणसी १९६५
हजरा, आर० सी०	:	स्टडीज इन दि पुराणिक रिकार्ड्स ऑन दि हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स, ढाका १९३६
हटन, जे० एच०	:	कास्ट इन इंडिया आक्सफोर्ड, १९५१
जौली, जे०	:	हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम्स, कलकत्ता १९२८
जायसवाल, के० पी०	:	हिन्दू पालिटी
काणे, पी० वी०	:	हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, ५ खंड पूना १९३०

कीथ, ए० वी०	:	ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड, १९५३
क्रेमरिस, स्टेला	:	दि आर्ट ऑफ इंडिया, लन्दन १९५४
लाल, बी० बी०	:	दि अर्लिएस्ट सिविलाइजेशन ऑफ साउथ एशिया, १९९७
मजूमदार, आर० सी०	:	कारपोरेट लाइफ इन एन्शियेन्ट इंडिया, कलकत्ता १९२२, श्रेणी युग बम्बई १९५४
मजूमदार, बी० पी०	:	दि सोशियो इकानामिक हिस्टी ऑफ नार्दन इंडिया (११वीं व १२वीं शती) कलकत्ता १९६०
मुकर्जी, आर० के०	:	एन्शियेन्ट इन्डियन एजूकेशन, लन्दन १९५१
मुकर्जी, राधा कमल	:	लैन्ड प्रोब्लम ऑफ इंडिया, लन्दन १९३३
मुन्शी, के० एम०	:	ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश, खंड I व II, बम्बई १९५३
मायरस, एडवर्ड डी०	:	एजूकेशन इन दि पर्सपेक्टिव ऑफ हिस्टी, लन्दन १९६३
नियोगी, पुष्पा	:	कन्टीब्यूशनस टू दि एकानामिक हिस्टी ऑफ नार्दन इंडिया, कलकत्ता, १९६२
ओझा, गौरी शंकर	:	राजपूताना का इतिहास I, अजमेर १९३७
पांडे, गोविन्द चन्द्र	:	स्टडीज इन दि ओरिजिन ऑफ बुद्धिज्म, इलाहाबाद १९५७ बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ १९७६ शंकराचार्य विचार और संदर्भ, दिल्ली १९९२
पांडे, आर० बी०	:	हिस्ट्री ऑफ हिन्दू संस्कार, बनारस १९४९
पेटरसन, पी०	:	दि सुभाषितावली ऑफ वल्लभदेव, बम्बई १८८६
पानिक्कर, के० एम०	:	श्री हर्ष ऑफ कन्नौज
पियर्स, ई० ए०	:	दि मौखरीज, मद्रास १९३४
पावेल, बेडेन	:	दि इण्डियन विलेज कम्युनिटी, लन्दन १८९६
प्राण नाथ	:	ए स्टडी इन दि इकानामिक कन्डीशन ऑफ एन्शियेन्ट इंडिया
पुरी, बी० एन०	:	दि हिस्टी ऑफ गुर्जर प्रतिहार, बम्बई १९५७
शुक्ल, देवेन्द्र नाथ	:	उत्तर भारत की राजस्व व्यवस्था, इलाहाबाद १९८४

सात्टोर, आर० एन० : लाइफ इन गुप्ता एज, बम्बई १९४३

संकालिया, एच० डी० : आर्कियोलॉजी ऑफ गुजरात

शास्त्री, के० ए० नीलकंठ : ए हिस्ट्री ऑफ साउथ इंडिया

शर्मा, वी० एन० : सोशल लाइफ इन नार्दन इंडिया, दिल्ली १९६६

शर्मा, डी० : अर्ली चौहान डाइनेश्टीज, दिल्ली १९५९
राजस्थान थ्रू दि एजेज I, II, बीकानेर १९६६

शर्मा, आर० एस० : आस्पेक्ट्स ऑफ पोलिटिकल आइडियाज एण्ड इंस्टीट्यूशन्स इन एन्शियेन्ट इंडिया १९६८ भारतीय सामन्तवाद कलकत्ता १९६५

सरकार, डी० सी० : लैन्ड सिस्टम एण्ड फ्यूडलिज्म इन एशिन्येन्ट इंडिया, कलकत्ता

स्मिथ, वी० ए० : दि आर्ट ऑफ इंडिया एण्ड सीलोन, आक्सफोर्ड १९११

सिंह, एस० के० : कल्चरल हिस्टी ऑफ नार्दन इंडिया, नई दिल्ली १९८६

टाड, जेम्स : एनल्स एण्ड एण्टिक्विलीज ऑफ राजस्थान, आक्सफोर्ड, १९२०

त्रिपाठी, आर० एस० : हिस्टी ऑफ कन्नौज

त्रिपाठी आर० पी० : पोलिटिकल एण्ड सोशियो इकानामिक हिस्टी ऑफ इंडिया, इलाहाबाद १९८१

तारानाथ : हिस्ट्री ऑफ बुद्ज्मि

उपाध्याय, वी० : दि सोशियो रिलीजियस कन्डीशनस ऑफ नार्दन इंडिया (७००-१२०० ई०) दिल्ली

वैद्य, सी० वी० : हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिन्दू इंडिया, II, पूना १९२४

चित्र–सूची

पायल पहनती नायिका, जमसोत (इलाहाबाद) १२वीं शती

आवक्ष पार्वती, खजुराहो (छतरपुर) ११वीं शती

वृक्षिका, रीवा ११वीं शती

श्रृंगार नायिका, खजुराहो (छतरपुर) ११वीं शती
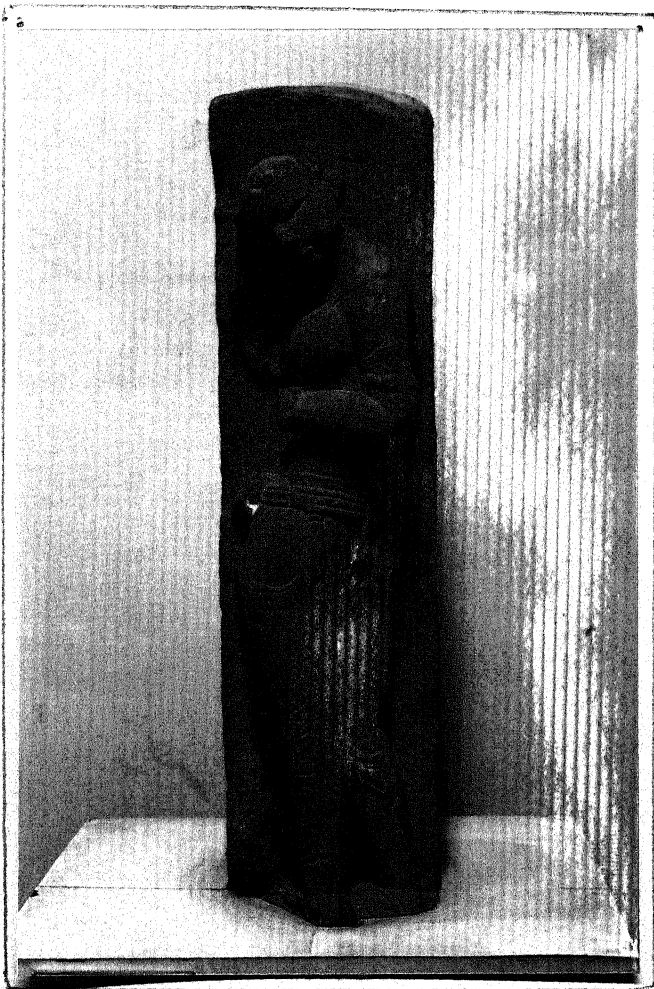
शिव पार्वती खजुराहो (छतरपुर) १२वीं शती
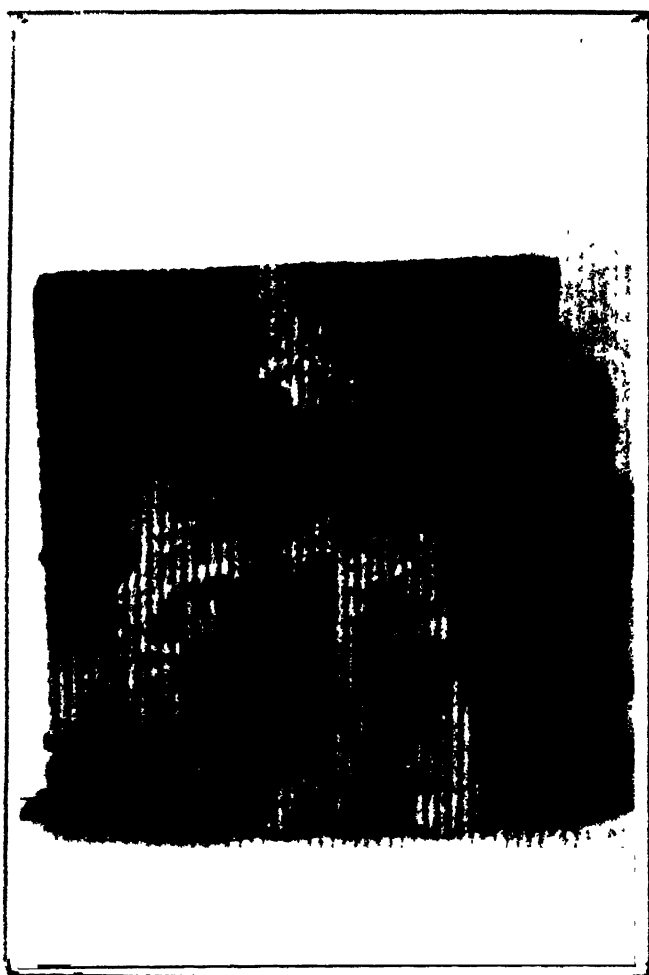
शिव पार्वती विवाह, इलाहाबाद, ११वीं शती
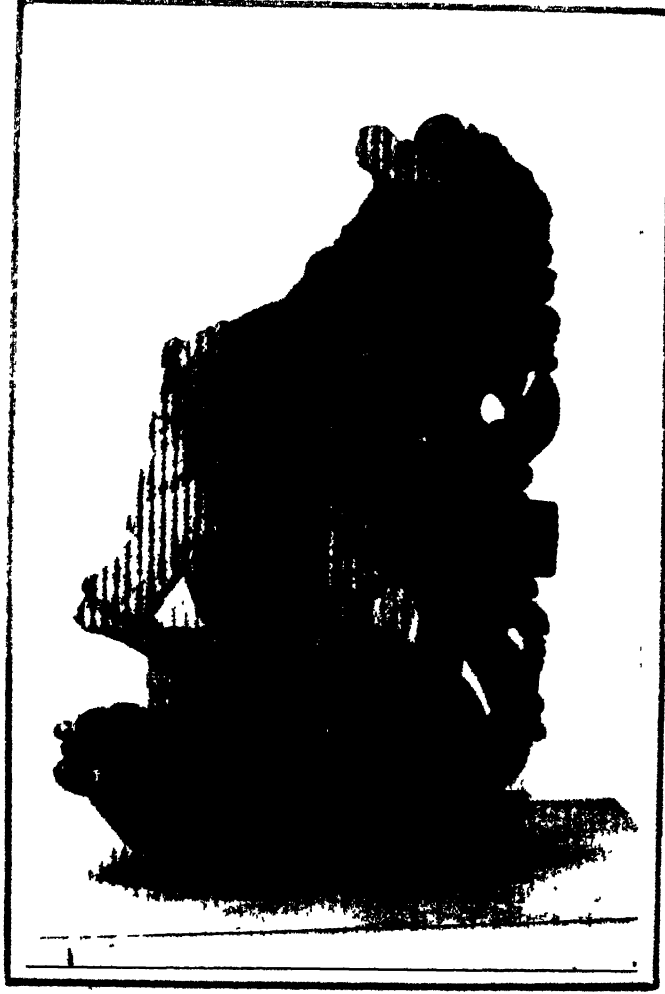
नृसिंह, ऊँचडीह, (इलाहाबाद) ६वीं शती

महावाराह, खजुराहो (छतरपुर) ११वीं शती

गोवर्धनधारी कृष्ण, कड़ा (इलाहाबाद), ६ठीं शती

चामुण्डा, गुर्गी (रीवा) ११वीं शती

द्वारपाल, कौशाम्बी (इलाहाबाद), ७वीं शती

गणेश, रामनाथपुर (इलाहाबाद), ८वीं शती

कुवेर, भीटा (इलाहाबाद) १२वीं शती
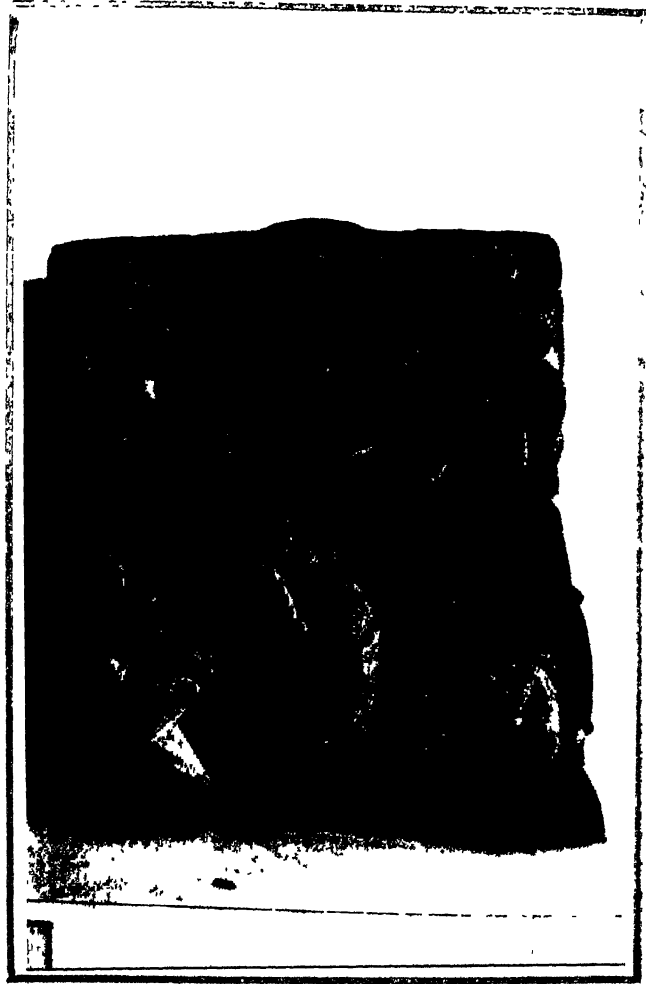
सूर्य, भीटा (इलाहाबाद) ८वां शती
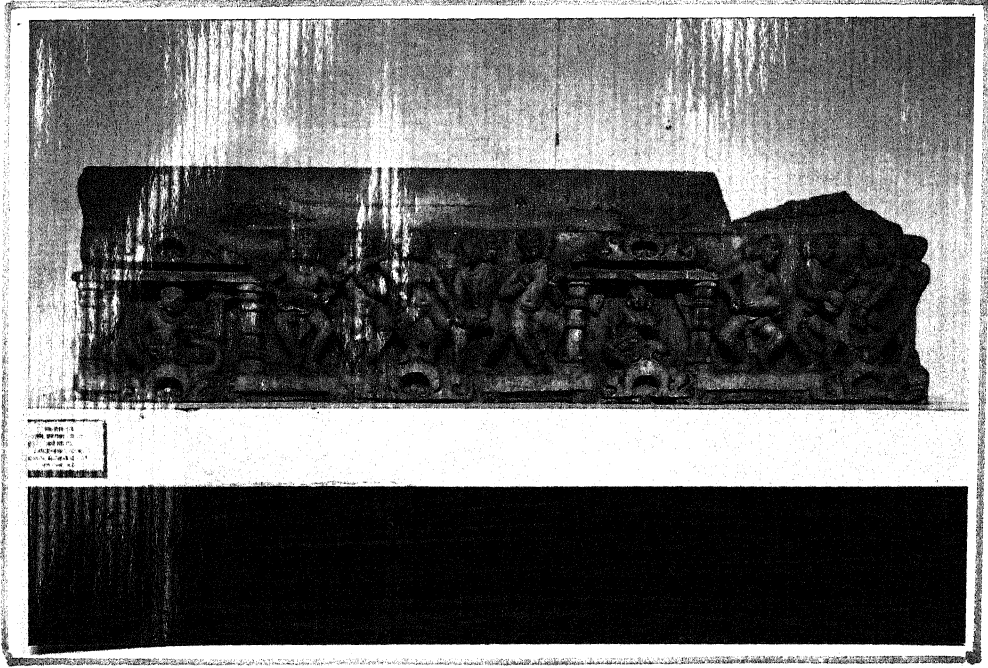
नृत्यवादन दृश्य, सोरांव (इलाहाबाद) ११वीं शती

रेवंत, भीटा (इलाहाबाद) १२वीं शती